मध्यकालीन भारत

कक्षा 11 के लिए पाठ्यपुस्तक

मीनाक्षी जैन

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
अप्रैल 2003
चैत्र 1925

PD 150T NSY

ISBN 81-7450-174-6

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्लू.सी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	निकट : धनकल बस स्टॉप
नई दिल्ली 110 016	बैंगलूर 560 085	अहमदाबाद 380 014	पनिहटी, कोलकाता 700 114

प्रकाशन सहयोग

संपादन : नरेश यादव
उत्पादन : अतुल सक्सेना

सज्जा और आवरण
कल्याण बनर्जी

रु. 50.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा नवटैक कंप्यूटर 1982, गंज मीर खां, दरियागंज, दिल्ली 110 002 में लेज़र टाईपसैट होकर जे.के. ऑफसैट प्रिंटर्स, 315, गली गढ़ैया, जामा मस्जिद, दिल्ली 110 006 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

शिक्षा में उच्चतर माध्यमिक स्तर अनेक मायनों में महत्त्वपूर्ण है। इस स्तर पर बच्चे अपनी रुचि, विचार, रुख और क्षमता को ध्यान में रखकर बेहतर तरीके से अपनी पसंद के विषय चुन सकते हैं या वे कोई एक विशिष्ट अकादमिक पाठ्यक्रम अथवा नौकरी अभिमुख व्यावसायिक पाठ्यक्रम चुन सकते हैं। यह अधिकतम चुनौती की स्थिति है। छात्र स्वयं अपने जीवन की एक महत्त्वपूर्ण अवस्था से गुज़र रहे होते हैं; यथा—किशोरावस्था से युवावस्था, साधारण जिज्ञासा से वैज्ञानिक पूछताछ तक।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा तैयार *विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा - 2000* (एन.सी.एफ.एस.ई.-2000) इन सभी बातों को ध्यान में रखकर तैयार किया गया। देशभर में विचार-विमर्श के बाद एन.सी.ई.आर.टी. ने प्रत्येक क्षेत्र में नई पाठ्यपुस्तकें तैयार करने का निश्चय किया। परिवर्तन की रफ़्तार को देखते हुए, विशेषकर बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में यह आवश्यक हो गया था। इन परिवर्तनों से मानवीय प्रयास और गतिविधि के प्रत्येक क्षेत्र में स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। एन.सी.ई.आर.टी. देश के भावी नागरिकों की शैक्षिक आवश्यकताओं को समझने का निरंतर प्रयास करती है जो कि अपने-अपने कार्यक्षेत्रों में सक्रिय रूप से योगदान देंगे।

इतिहास में नई पाठ्यपुस्तकों की तैयारी और पढ़ाई इनका एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। नई तकनीकें और प्रौद्योगिकी, नए उत्खनन और खोज से इतिहास में अनेक स्थितियों की पुन: व्याख्या की गई है जो कि उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययन के प्रमुख विकल्पों में से एक है। एन. सी.ई.आर.टी. की 1988 पाठ्यक्रम रूपरेखा के प्रस्तावों के अनुसार इतिहास को एक अलग विषय के रूप में उच्चतर माध्यमिक स्तर पर पहली बार पढ़ाया जाएगा। इससे पहले इसे सामाजिक विज्ञान के एक अभिन्न अंग के रूप में पढ़ा जाता है। इसके कारण उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के लिए इतिहास की नई पाठ्यपुस्तकें तैयार की गईं। विश्वभर में इतिहास पाठ्यपुस्तकों का लेखन अनेक कारणों से अपनी ओर ध्यान खींचता है। एन.सी.ई.आर.टी. की इतिहास की नई पाठ्यपुस्तकें ऐतिहासिक घटनाओं का यथार्थ विवरण देने के उद्देश्य से तैयार की गई हैं। इस क्षेत्र में नवीनतम अनुसंधान और व्याख्या को समाविष्ट किया गया है।

वर्तमान पुस्तक को तैयार करने के लिए एन.सी.ई.आर.टी. दिल्ली विश्वविद्यालय की डॉ मीनाक्षी जैन की, जो नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय की फैलो भी हैं, आभारी है।

हम उन सबके प्रति भी आभार प्रकट करते हैं जिन्होंने इस पुस्तक को तैयार करने और इसे अंतिम रूप देने में सहायता की है।

एन.सी.ई.आर.टी. शिक्षाविदों, शिक्षकों तथा माता-पिता और छात्रों के सुझावों का स्वागत करती है जिससे इस पुस्तक में सुधार करने में सहायता मिल सके।

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली
अक्तूबर 2002

आमुख

आधुनिक युग को अक्सर सूचना का युग कहा जाता है। वास्तव में ज्ञान का निरंतर और अनवरत विस्तार ही इस युग को इसकी विलक्षण ऊर्जा और तेजस्विता प्रदान करता है। इतिहास का क्षेत्र इन आम प्रभावों से अछूता नहीं रहा है। विश्लेषण के नए तरीके और तकनीकें इतिहास की हमारी समझ को और गहरा बनाती हैं, वहीं इतिहास की सीमाओं का अद्‌भुत विस्तार हुआ है।

विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों ने इतिहास लेखन के निरंतर बढ़ते आयामों में अपना योगदान दिया है लेकिन विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में विकास के विपरीत, जिससे छात्र आमतौर पर अवगत होते हैं, इतिहास के क्षेत्र में अनुसंधान छात्रों की दृष्टि से बाहर होता है। छात्रों को इतिहास के पुनर्निर्माण की जटिल प्रक्रिया से जिसमें इतिहासकार लगे हैं, अवगत कराना आवश्यक है क्योंकि बेहतर भविष्य के निर्माण के लिए इतिहास की जानकारी आवश्यक है। लेकिन इस बात पर भी ध्यान देना ज़रूरी है कि जहाँ कहानी को उसकी पूरी जटिलताओं के साथ प्रस्तुत किया जाए वहीं वह इतनी संक्षिप्त भी हो कि छात्रों पर ज़्यादा बोझ न पड़े क्योंकि उन्हें एक ही समय पर अनेक विषय पढ़ने पड़ते हैं। आशा की जाती है कि यह पुस्तक कुछ हद तक इन आवश्यकताओं की पूर्ति करेगी।

भारतीय इतिहास का मध्यकालीन युग जो इस पुस्तक की विषयवस्तु है, असाधारण घटनाओं का समय था। इसकी शुरुआत उपमहाद्‌वीप के पुराने और नए बसे क्षेत्रों में अनेक नए राज्यों के निर्माण से होती है और आगे जाकर इसमें साहित्यिक, आध्यात्मिक और कलात्मक क्षेत्रों का विकास होता है। इस काल में उपमहाद्‌वीप में इस्लाम का राजनीतिक उदय भी हुआ, जिसका चरमोत्कर्ष आगे जाकर भारत के पहले इस्लामिक राज्य की स्थापना, दिल्ली सल्तनत के रूप में हुआ। आगे चलकर मुगल साम्राज्य इस काल के ऐतिहासिक परिदृश्य पर छा जाता है। प्रस्तुत पुस्तक इस काल की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को परखती है और छात्रों को इसकी प्रमुख धाराओं से अवगत कराने का प्रयास करती है।

यह पुस्तक पूरी तरह से भारत और विदेशों में इतिहासकारों के अनुसंधान और काल विशेष के समसामयिक इतिहास पर आधारित है। जिन प्रमुख स्रोत ग्रंथों पर यह पुस्तक आधारित है उनकी सूची पुस्तक के अंत में दी गई है।

–मीनाक्षी जैन

पाठ्यपुस्तक समीक्षा कार्यगोष्ठी के सदस्य

ज्ञानेश्वर खुराना
प्रोफ़ेसर एवं *अध्यक्ष*
इतिहास विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
कुरुक्षेत्र, हरियाणा

के. एस. लाल
प्रोफ़ेसर एवं *अध्यक्ष* (सेवानिवृत्त)
इतिहास विभाग
केंद्रीय विश्वविद्यालय
हैदराबाद, आंध्र प्रदेश

वी. एस. भटनागर
प्रोफ़ेसर (सेवानिवृत्त)
इतिहास विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर, राजस्थान

मीनाक्षी जैन
रीडर (इतिहास)
गार्गी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
फैलो, नेहरू स्मारक संग्रहालय
और पुस्तकालय, नई दिल्ली

एम. एम. दूबे
प्रधानाचार्य (सेवानिवृत्त)
मल्हाराश्रम
उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
इंदौर

जगदीश भारतीय
पी.जी.टी. (सेवानिवृत्त)
कॉमर्शियल उच्चतर माध्यमिक
विद्यालय, दरियागंज
दिल्ली

वीना व्यास
पी.जी.टी. (इतिहास)
डी.एम. स्कूल
क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान
भोपाल (म.प्र.)

अनीता देवराज
प्रधानाचार्या
डी.ए.वी. स्कूल
बहादुरगढ़, हरियाणा

अनुवादक
महिमा जोशी
वाई-81, हौजखास
नई दिल्ली

एन.सी.ई.आर.टी. संकाय
सामाजिक विज्ञान एवं
मानविकी शिक्षा विभाग
प्रत्यूष मंडल, रीडर
सीमा शुक्ला, लेक्चरर
रितू सिंह, लेक्चरर

आवरण

1. माउंट आबू, विमल वसही मंदिर, सभा मंडप की छत, 1031 ई., सोलंकी काल

2. फतेहपुर सीकरी, दीवान-ए-ख़ास

3. सूर्य, सूर्य मंदिर, कोणार्क, उड़ीसा

4. स्वर्ण मंदिर, अमृतसर

गांधी जी का जंतर

तुम्हें एक जंतर देता हूँ। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आज़माओ :

जो सबसे गरीब और कमज़ोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुँचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानी क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा, जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

मो. क. गांधी

विषयसूची

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उंच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू सके।

प्रस्तावना
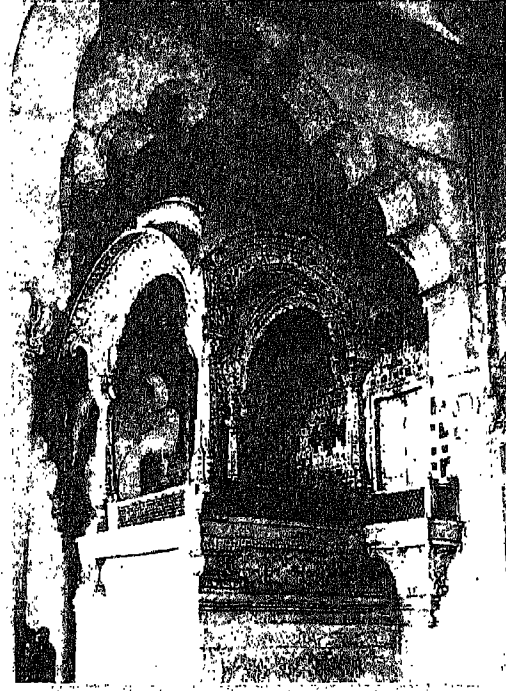
हर्ष के बाद का भारत : एक विहंगावलोकन

भारतीय इतिहास में ईसा की सातवीं शताब्दी के मध्य भाग में हर्ष की मृत्यु और उसके लगभग छ: सौ साल बाद दिल्ली सल्तनत के उदय के बीच एक ठहराव वाला युग आया। इस युग में कोई उल्लेखनीय घटनाएँ नहीं घटीं। इस युग में राजवंशों की संख्या बहुत बढ़ गई, जिससे अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हो गई। फिर भी, राज्य व्यवस्था गतिशील बनी रही और मुख्य धारा में नए-नए समूहों का समावेश हो गया। संस्कृति तथा धर्म के क्षेत्रों में प्रचुर सृजनशीलता के कारण संपन्नता एवं समृद्धि आई। कुल मिलाकर देखें तो यह काल भाषा, सौंदर्य-साधना और आध्यात्मिकता के क्षेत्रों में उल्लेखनीय उपलब्धियों का युग कहा जा सकता है।

नए राज्यों का उदय

यद्यपि यह बड़े साम्राज्यों का युग नहीं था, फिर भी इसकी विशेषता यह रही कि इस दौरान क्षेत्रीय तथा स्थानीय शासक सम्राट का दर्जा प्राप्त करने के लिए बराबर प्रयास करते रहे। छठी-सातवीं शताब्दी के

मोड़ पर, दूरस्थ कामरूप प्रदेश में भास्करवर्मन ने अल्प समय में ही अपने आपको पूर्वी भागों का स्वामी बना लिया। आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में कन्नौज में यशोवर्मन का उत्कर्ष हुआ। वह एक महान योद्धा था और उसके बारे में यहाँ तक कहा जाता है कि उसने अरबों की बढ़ती ताकत का मुकाबला करने के लिए चीन के साथ मैत्री संबंध स्थापित कर लिए थे। यह भी कहा जाता है कि यशोवर्मन संस्कृत के महान साहित्यकार भवभूति और प्राकृत काव्य 'गौड़वहो' (गौड़वध) के रचयिता वाक्पति का आश्रयदाता था। आठवीं शताब्दी में ही, कश्मीर के ललितादित्य ने कार्कोट राजवंश को, गुप्त राजाओं के बाद, भारत का सबसे शक्तिशाली राजवंश बना दिया था। उसने सिंध से अरबों को खदेड़ दिया और कन्नौज पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। उसने ही वहाँ के भव्य मार्तंड मंदिर का निर्माण कराया था।

उसके बाद जब कश्मीर का राजनीतिक वर्चस्व कम हो गया तब दो नई शक्तियों अर्थात् गुर्जर प्रतिहार और बंगाल के पाल वंशीय शासकों ने उत्तर भारत के राजनीतिक मंच को संभाल लिया। प्रतिहार वंश के शासकों ने राजपूताना में लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक राज किया और वे हमलावर अरबों को रोकने के लिए एक सुदृढ़ प्राचीर की तरह डटे रहे। आठवीं शताब्दी के दूसरे चतुर्थांश में उनका अरबों के साथ एक घमासान युद्ध हुआ जब अरब फौजें कच्छ, काठियावाड़ प्रायद्वीप, उत्तरी गुजरात, दक्षिणी राजपूताना को रौंदती हुई शायद मालवा तक पहुँचने में कामयाब हो गईं। तब उत्तर भारत को अवंति के शासक और गुर्जर प्रतिहार वंश के प्रधान नागभट्ट ने अरबों से बचाया और दक्षिण में बादामी के चालुक्य राजा के राज्यपाल ने अरबों के बढ़ाव को रोक दिया। उसके इस पराक्रम से प्रसन्न होकर चालुक्यराज ने उसे 'दक्षिणापथ का सुदृढ़ स्तंभ' और 'अप्रतिवारणीय का प्रतिवारक, जैसी उपाधियों से विभूषित किया।

इसी दौरान बंगाल में कई वर्षों तक रही अराजकता की स्थिति के बाद, प्रमुख सामंतों ने आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गोपाल को उस प्रदेश का राजा चुना। नए राजा ने वहाँ विद्यमान 'मत्स्यन्याय' (बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है) की स्थिति को समाप्त कर दिया और बंगाल को साम्राज्यीय महानता के पथ पर आगे बढ़ाया। उसके उत्तराधिकारी एवं पुत्र धर्मपाल को भी बंगाल के महान शासकों में ऊँचा स्थान दिया जाता है। धर्मपाल ने पाल वंश के शासन को उत्तर भारत के अनेक भागों पर फैलाया। वह एक पक्का बौद्ध था और उसने अनेक मठों का निर्माण कराया। उसने विख्यात विक्रमशिला विश्वविद्यालय की भी स्थापना की।

दक्कन में भी एक नए राजवंश ने राजसत्ता ग्रहण की। आठवीं शताब्दी के मध्य भाग में विख्यात राष्ट्रकूटों ने बादामी के पतनोन्मुख चालुक्यों को उखाड़ फेंका। दक्षिण के प्राचीन अभिलेखों में 'राष्ट्रकूट' पदनाम का प्रयोग एक ऐसे अधिकारी के लिए किया गया है जो संभवतः 'राष्ट्र' का अथवा प्रांत का प्रधान होता था। इसलिए यह संभव है कि राष्ट्रकूट वंश का संस्थापक ऐसा ही कोई अधिकारी रहा होगा। इस राजवंश के महान राजाओं में इंद्र, दंतिदुर्ग, और कृष्ण का नाम लिया जाता है। कृष्ण ने एलोरा का प्रसिद्ध शैल-कृत कैलाश मंदिर बनवाया था। ध्रुव के राज्यारोहण के साथ ही इस राजवंश ने एक नई अवस्था में प्रवेश किया, ध्रुव ने उत्तर की ओर अपने राज्य की सीमाएँ बढ़ाने का अभियान प्रारंभ किया।

आठवीं शताब्दी की समाप्ति के साथ भारत में तीन महान शक्तियाँ – पाल, गुर्जर-प्रतिहार और राष्ट्रकूट – सर्वोपरि दिखाई देती हैं। अगले सौ वर्षों के दौरान, ये तीनों शक्तियाँ साम्राज्य की होड़ में, राजधानी कन्नौज पर प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए परस्पर संघर्षशील रहीं।

अन्य घटनाक्रम

प्रतिद्वंद्वी राज्यों के बीच साम्राज्य स्थापित करने की होड़ ही इस युग की विशिष्टता नहीं थी। इस काल में नए-नए जनसमुदायों को देश की मुख्य धारा में शामिल किया गया। अनेक जनजातीय समूह अपनी पशुचारी (ग्वाल) अर्थव्यवस्था को छोड़कर, एक स्थान पर बसकर खेती करने लगे। इसके फलस्वरूप कृषक समाज का काफी विस्तार हुआ। स्थानीय और जनजातीय ताकतें भी राज्य निर्माण में अपना योगदान देने लगीं। उड़ीसा में उदाहरण के लिए, शैलोद्भव लोग महेंद्रगिरी पर्वतमाला को छोड़कर नीचे उतर आए और ऋषिकुल्या नदी के आस-पास बस गए। उन्होंने मध्यवर्ती क्षेत्र में अपना राज्य स्थापित किया। पुराने अखिल भारतीय साम्राज्यों की सांस्कृतिक पद्धतियाँ भीतरी प्रदेशों में अपनाई जाने लगीं क्योंकि अनेक स्थानीय तथा क्षेत्रीय दरबारों ने उन रूपों का अनुकरण किया।

सांस्कृतिक और धार्मिक प्रवृत्तियाँ

स्थानीय तथा जनजातीय समूहों की बढ़ती हुई भागीदारी के साथ-साथ उनके देवी-देवताओं का दर्जा भी बढ़ता गया और उन्हें क्षेत्रीय तथा अखिल भारतीय देवकुल में स्थान प्राप्त होता गया। अब तक छोटे-छोटे समुदायों द्वारा पूजे जाने वाले देवी-देवताओं के देवालयों तथा विग्रहों को बड़े-बड़े समुदायों द्वारा पूजा जाने लगा। इस तथ्य का एक प्रमुख उदाहरण है – पुरी का जगन्नाथ मंदिर। भगवान जगन्नाथ जो मूल रूप में एक जनजातीय देव थे, अब उड़िया लोगों और उड़ीसा प्रदेश के प्रमुख देव बन गए।

ऐसे और भी अनेक उदाहरण इस काल के आस-पास देश के भिन्न-भिन्न भागों में खोजे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, चिदंबरम के स्थानीय संप्रदाय का दर्जा छठी शताब्दी से बराबर बढ़ता गया और अंततः दसवीं शताब्दी में आकर चोल राजाओं ने उसे राजपरिवार का इष्टदेव मान लिया। मदुरै की मीनाक्षी देवी को एक अग्रणी देवी की प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई। इस प्रकार समाज और राज्य व्यवस्था के निम्नतम तथा दूरवर्ती स्तरों और उच्चवर्ती स्तरों के बीच काफी आदान-प्रदान हुआ।

इसी समय बौद्ध धर्म, जैन धर्म और हिंदू धर्म के बीच भी परस्पर सक्रिय रूप से आदान-प्रदान हुआ। बौद्ध धर्म तो व्यावहारिक रूप से हिंदू धर्म में ही मिल गया और फिर देश में उसका अलग, स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहा। उपनिषदों और बौद्ध धर्म की महायान शाखा के बीच विद्यमान विचार – साम्य ने निस्संदेह, इस प्रक्रिया को आसान बना दिया, क्योंकि बौद्ध धर्म ने अपनी जातक कथाओं, धार्मिक अनुष्ठानों तथा देवी-देवताओं के रूप में हिंदू धर्म से बहुत कुछ ग्रहण कर लिया था।

महान दार्शनिक आदि शंकराचार्य ने वेदांत दर्शन को नया रूप दिया और बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म के अनेक या सैद्धांतिक तथा संगठनात्मक लक्षणों को उसमें शामिल कर लिया। शंकराचार्य ने संन्यासियों को दस वर्गों में बाँटा और बदरीनाथ, पुरी, द्वारका तथा श्रृंगेरी में चार धर्मपीठों की स्थापना की। आगे चलकर बुद्ध को ही विष्णु के अवतारों में शामिल कर लिया गया, और इसी प्रकार जैन तीर्थंकर ऋषभ को भी विष्णु का अवतार मान लिया गया। बौद्ध

धर्म और जैन धर्म के अनेक सिद्धांत, विशेष रूप से अहिंसा और शाकाहारवाद, हिंदू धर्म के अभिन्न अंग बन गए। बौद्धों की सिद्ध परंपरा ने नाथपंथियों के नए शैव संप्रदाय, जिसका शुभारंभ गोरखनाथ ने किया था, को भी बहुत प्रभावित किया।

ईश्वरवादी या आस्तिक हिंदू धर्म जो आज वैष्णव, शैव और शाक्त संप्रदायों के रूप में प्रचलित है, इसी काल में अपने इन रूपों में विभाजित हुआ। वैसे तो अवतारवाद पहले से ही प्रचलित था, लेकिन अब उसने विशेष प्रधानता प्राप्त कर ली थी। विष्णु, शिव, शक्ति, जिन और बुद्ध अपने भिन्न-भिन्न रूपों एवं अवतारों के रूप में पूजे जाने लगे। इससे नाना प्रकार के मंदिरों की वृद्धि हुई और पुराणों, वैष्णव संहिताओं, शैव आगमों, शाक्त तंत्रों और माहात्म्य ग्रंथों का विकास हुआ। देश के भिन्न-भिन्न राज्यों तथा प्रदेशों में स्थित तीर्थस्थानों को जोड़ने के लिए तीर्थयात्रा-मार्गों का सारे देश में जाल-सा बिछ गया, जिससे बढ़ते हुए राज्यों तथा रजवाड़ों के बीच देश की सांस्कृतिक एकता को बढ़ावा मिला।

अलवार तथा नयनार संतों द्वारा विकसित सशक्त भक्ति आंदोलन तमिल प्रदेश में छठी शताब्दी के आसपास प्रारंभ हुआ और बाद में वह कर्नाटक तथा महाराष्ट्र के रास्ते उत्तर भारत और बंगाल में फैल गया। इस आंदोलन के महान संतों में अप्पर, संबंदर और मणिक्कवसागर शामिल हैं जिनकी रचनाएँ 'तिरूमुराई' में संगृहीत हैं, जिसे तमिल वेद कहा जाता है। बारहवीं पुस्तक 'पेरीय पुराणम्' की रचना कवि शेक्किलर ने चोलराज कुलोत्तुंग-प्रथम के कहने पर की थी।

1100 ई. के आसपास, श्रीरंगम के सुप्रसिद्ध विष्णु मंदिर के प्रधान पुजारी रामानुज ने गूढ़ आध्यात्मिक चिंतन के साथ लोकप्रिय भक्ति का मेल बैठाकर इस आंदोलन को नया बल प्रदान किया। रामानुज को वैष्णवों के श्रीसंप्रदाय का संस्थापक माना जाता है। दक्षिण में भक्ति संप्रदाय के एक अन्य महान प्रतिपादक माधव (1199-1278) का अविर्भाव हुआ।

मीमांसात्मक एवं परिकल्पनात्मक दर्शन भी इस दौड़ में पीछे नहीं रहा। शंकर द्वारा वेदांत के प्रतिपादन के अतिरिक्त, नाथमुनि, यमुनाचार्य, रामानुज और माधव द्वारा प्रणीत धर्म ग्रंथों एवं भाष्यों की रचना भी इसी काल में हुई।

कला एवं साहित्य

कला, भाषा और साहित्य के क्षेत्रों में भी इसी प्रकार की गत्यात्मकता दृष्टिगोचर हुई। कलाओं के प्रति भारतीय संवेदनशीलता एलोरा के शैलकृत मंदिर, चोल स्थापत्य कला के अद्भुत स्मारकों, श्रवणबेलगोला की विशाल जैन प्रतिमा और खजुराहो, उड़ीसा, मथुरा तथा बनारस के कलापूर्ण एवं भव्य मंदिरों के साथ अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई।

संस्कृत और प्राकृत साहित्य खूब फला-फूला और अपभ्रंशों का साहित्य भी पीछे न रहा – ये अपभ्रंश भाषाएँ आधुनिक क्षेत्रीय भाषाओं की जननी हैं। इस काल की सृजन-प्रतिभाओं में कवि कंबन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने तमिल रामायण की रचना की थी। पंप, पोन और रन की रचनाओं और महाभारत से कन्नड़ साहित्य की महान श्रीवृद्धि हुई। इन साहित्यकारों ने जैन तीर्थंकरों के जीवन को अपने काव्य का विषय बनाया। तेलुगू साहित्य के नए युग का समारंभ महाभारत के आदि और सभा पर्वों के नन्नैया द्वारा किए गए अनुवाद से हुआ। यह अनुवाद कार्य आगे तिकन्ना द्वारा चालू रखा गया, जिसने विराट पर्व से अंत तक

महाभारत का अनुवाद किया। अलवार तथा नयनार कवियों (तमिल तथा अन्य भाषाएँ) और जैन हेमचंद्र (संस्कृत और अपभ्रंश) ने इस युग के साहित्य की अभूतपूर्व श्रीवृद्धि की।

भौतिक समृद्धि

भारत ने भौतिक क्षेत्र में भी प्रचुरता एवं संपन्नता की स्थिति बनाए रखी। चीनी तीर्थयात्री ह्वेनसांग, जो सातवीं शताब्दी में भारत आया था, ने यहाँ आंतरिक और विदेशी व्यापार की फलती-फूलती स्थिति को देखा था। उसने सौराष्ट्र के बारे में लिखा था, ''सभी लोग अपनी आजीविका समुद्र से चलाते हैं और व्यापार तथा पण्य-विनिमय के कार्य में संलग्न हैं,'' नवीं और दसवीं शताब्दियों के अरब लेखकों ने भी एक धनाढ्य देश के रूप में भारत का चित्रण किया है। उन्होंने पश्चिमी दक्कन के राष्ट्रकूट शासक को संसार के महान राजाओं में तीसरा या चौथा स्थान दिया था। गुर्जर प्रतिहारों का चित्रण भी ऐसे शक्तिशाली सम्राटों के रूप में किया गया था, जिनके पास सोने और चाँदी के विशाल भंडार मौजूद थे।

असंख्य शिलालेखों तथा अभिलेखों से वणिक् वर्ग, व्यापारियों और साहूकारों तथा उनके निगमित संगठनों के कार्यकलापों का प्रमाण मिलता है। दक्षिण भारत में 505 वणिक्जनों के संगठन और 99 जिलों के 18 उपमंडलों के वणिक्जनों के सम्मेलन का वर्णन भी मिलता है।

ऐसे अनेक शहरी केंद्रों का वर्णन मिलता है जो स्थानीय लेन-देन की आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ सुदूरस्थ देशों-प्रदेशों के साथ होने वाले व्यापार की जरूरतों को भी पूरा किया करते थे। इनका एक बकायदा नक्शा तैयार करने का काम तो अभी हाथ में नहीं लिया गया है मगर परमार काल में मालवा पठार के बीस नगरों, ग्यारहवीं और परवर्ती शताब्दियों के दौरान आंध्र के सत्तर से भी अधिक व्यापारिक केंद्रों और चाहमान राज्य के इकत्तीस व्यापारिक नगरों का पता लगाया जा चुका है। गुर्जर प्रतिहार राज्य के अनगिनत नए नगरों के बारे में यह पता लगाया जा चुका है कि वे कृषि तथा व्यापार के विस्तार की दृष्टि से किन-किन व्यापारिक मार्गों से जुड़े रहे हैं।

इस काल के अभिलेखों में अनेक मंडियों और हाटों का उल्लेख है जो तत्कालीन राजाओं तथा उनके अधिकारियों द्वारा स्थापित की गई थीं। ये स्थान व्यापारिक केंद्रों के साथ-साथ धार्मिक स्थल भी होते थे। व्यापार की वस्तुओं में अनेक किस्म की खेती की पैदावार तथा कृषि-भिन्न उत्पादन तथा घोड़े भी शामिल थे। इसके अलावा, कांसे तथा कपड़े के व्यापारियों, बुनकरों, कलालों, वणिक् संघों तथा सीमाशुल्क कार्यालयों का भी उल्लेख मिलता है। सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत की यात्रा पर आए चीनी यात्री इत्सिंग ने लिखा है कि ताम्रलिप्ति (बंगाल) से सैकड़ों व्यापारी मध्य एशिया जाते थे। अभिलेखों में चांदी के 'रूप्यक' के अलावा अनेक प्रकार के सिक्कों का उल्लेख मिलता है; जैसे – तांबे का 'पण', चाँदी का 'द्रम्म,' सोने का 'सुवर्ण,' दीनार और 'निष्क'।

कुल मिलाकर देखें तो ये शताब्दियाँ गत्यात्मकता से परिपूर्ण और विभिन्न प्रकार के कार्यकलापों से गुंजायमान थीं, भले ही उन्हें परंपरागत इतिहास की श्रेणी में रखना संभव न हो।

प्राचीन से मध्य काल तक

हालांकि इसके कारण विवादास्पद हैं लेकिन इस बात पर आम सहमति है कि 647 ई. में हर्ष की मृत्यु भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। एक लंबे और घटनापूर्ण युग का अंत हुआ और एक नए युग की शुरुआत हुई। हालांकि इसके शुरुआत की असली तारीख विवादास्पद है, लेकिन इस बात पर सहमति है कि एक ऐसा काल आया जिसमें एक काल दूसरे में मिलता दिखाई देता है। इस अंतरिम काल को अब "प्रारंभिक मध्य काल" कहा जाता है जबकि मध्य काल की शुरुआत 1206 ई. में दिल्ली में तुर्कों के शासन की स्थापना से मानी जाती है।

'मध्य काल' शब्द के प्रयोग पर शैक्षिक समुदाय ने कई सवाल किए हैं। क्या इसका प्रयोग इसलिए किया गया कि जिस काल का यह सूचक है वह प्राचीन और आधुनिक कालों के बीच पड़ा? या इसे मुस्लिम शासन का समानार्थी माना गया जो लगभग इसके समानांतर चला? या फिर मध्य काल शब्द का प्रयोग कहीं ऐसे समय का सूचक तो नहीं है जो देश के इतिहास में उतना उज्ज्वल नहीं था? यद्यपि विद्वान लोग इस शब्द के निहितार्थ पर विवाद करते रहे हैं, किंतु फिर भी इस युग के अध्ययन के लिए इसी शब्द का प्रयोग सर्वाधिक रूप में किया गया है।

अध्ययन के स्रोत

पूर्व युग से भिन्न जिसका अनुमान पुरातात्विक खोजों से लगाया गया, मध्यकालीन भारत के इतिहास का पुनर्निर्माण बड़ी संख्या में पाए गए दस्तावेजों की मदद से किया गया है। *पृथ्वीराज-विजय काव्य* और *हम्मीर महाकाव्य* जैसी साहित्यिक कृतियाँ प्रारंभिक मध्य काल की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का लोमहर्षक विवरण देती हैं, हालांकि इनकी शैली देखते हुए इनके प्रयोग में सावधानी की आवश्यकता है। इसके अलावा टिप्परह, के शासक परिवार का आधिकारिक दस्तावेज *राजमाला* और कल्हण की *राजतरंगिणी* जैसे ऐतिहासिक दस्तावेज़ भी हैं। तेरहवीं व चौदहवीं शताब्दी के जैन साहित्य से हमें राजनीतिक व सांस्कृतिक घटनाओं की झलक मिलती है जबकि तिब्बती भिक्षु, धर्मस्वामी ने बिहार में तुर्कों के हमले के बाद बौद्ध मंदिरों की दशा का मर्मस्पर्शी विवरण दिया है।

सल्तनत व मुगल काल के लिए बड़ी संख्या में शासकीय दस्तावेज, प्रशासनिक नियमावली, गजेटियर, विदेशी यात्रियों के विवरण, दरबारी इतिहास, राजकीय आत्मकथाएँ, जीवनियाँ और यहाँ तक कि निजी पत्र व्यवहार उपलब्ध हैं। इसके अलावा पुरातात्विक, शिलालेखीय व मुद्रा-विषयक प्रमाण और बाद में बड़ी संख्या में प्राप्त यूरोपीय कारखानों के दस्तावेज भी इस काल के बारे में जानकारी प्राप्त करने के अच्छे स्रोत हैं। साथ ही विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त विवरण इस काल के बारे में काफी जानकारी देते हैं। मराठाओं के प्रशासनिक दस्तावेज विशेषकर पेशवा दफ्तर, इस काल के बारे में जानकारी प्राप्त करने का

खज़ाना है। राजस्थानी में *तक्सीम* और *अढ़सट्ठा* जैसे दस्तावेजों का इतिहासकारों ने इतिहास का पुनर्निर्माण करने में प्रयोग किया है।

समसामयिक ऐतिहासिक विवरण दिल्ली सल्तनत के बारे में जानकारी प्राप्त करने के प्राथमिक स्रोत हैं। इनमें प्रमुख हैं-हसन निज़ामी का *ताज-उल-मासिर*, मिनहाज सिराज का *तबकात-ए-नासिरी*, ज़ियाउद्दीन बरनी का *तारीख़-ए-फ़िरोज़शाही* और *फ़तवा-ए-जहाँदरी*, अफ़ीफ़ का *तारीख़-ए-फ़िरोज़शाही* और इसामी का *फ़ुतूह-उस-सलातीन।*

मुगलों के अंतर्गत भी राज्य के विभिन्न पक्षों के बारे में बारीक जानकारियाँ देते हुए इतिहास का प्रलेखन जारी रखा गया। इस काल के प्रमुख इतिहासकार थे – अबुल फ़ज़ल (*अकबरनामा*), निज़ामुद्दीन अहमद (*तबकात-ए-अकबरी*), बदायुँनी (*मुंतखाब-अल-तवारीख़*), अब्दुल हमीद लाहौरी (*पादशाहनामा*) और ख़फ़ी ख़ान (*मुंतखाब-उल-लुबाब*)। बाबर और जहांगीर जैसे शासकों और गुलबदन बेगम जैसी शाही परिवार की स्त्रियों ने अपने समय का रोचक वर्णन किया है।

सूफ़ी साहित्य जानकारी प्राप्त करने का एक अन्य बहुमूल्य स्रोत है। सूफ़ी संतों की अनेक जीवनियाँ (*तज़कीराह*) और उनकी उक्तियों के संग्रह (*मलफ़ूज़त*) उपलब्ध हैं। सूफ़ी संतों की उक्तियों के संग्रहों में प्रमुख है *फ़वादुल फ़वैद*।

इतिहास लेखन का विकास

समसामयिक व परवर्ती इतिहासकारों द्वारा किसी भी काल के इतिहास को दर्ज करने की प्रक्रिया को इतिहास लेखन कहते हैं। मध्यकालीन इतिहास लेखन को तीन चरणों में बाँटा जा सकता है, जिसमें पहले चरण के अंतर्गत मध्यकालीन इतिहासकार आते हैं, जो अधिकांशतः दरबारी इतिहासकार होते थे।

औपनिवेशिक काल में जब देश पर शासन करने की जटिलताओं के चलते ब्रिटिश प्रशासक पुराने रीति-रिवाज़ों के बारे में जानकारी ढूंढ़ने लगे, तब मध्यकालीन इतिहास एक बार फिर से अध्ययन का विषय बन गया। अंततः आधुनिक इतिहासकारों के कार्य आते हैं, जो अब भी इस काल के बारे में हमारे ज्ञान में वृद्धि कर रहे हैं।

प्रारंभिक मध्यकालीन इतिहासकारों के विवरण मुख्यतः लिपिकीय प्रकृति के हैं, क्योंकि उन्होंने बिना किसी स्रोत की जाँच किए केवल शासकों के कार्यों का ही विवरण (हालांकि उन्होंने कभी-कभी अपनी टिप्पणी भी दी है) दिया है। उनका इतिहास केवल दरबार से संबंधित था जिसमें अधिकांशतः शाही दरबार के अलावा बाहर की दुनिया पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया था।

मध्यकालीन इतिहासकारों की प्रक्रिया का निरूपण करते हुए बरनी पाठकों को इतिहासकारों में पूरी श्रद्धा रखने की सलाह देते हैं लेकिन वे यह भी कहते हैं कि इतिहासकारों को अपने विवरण में ईमानदारी बरतनी चाहिए। मध्यकालीन लेखकों ने अधिकांशतः इसका पालन किया, क्योंकि उनका मानना था कि इतिहास विश्वसनीय कथाकारों द्वारा लिखा गया विवरण है।

मुगलकाल में भी इतिहास लेखन की अधिकांशतः यही प्रक्रिया रही और ऐतिहासिक वृत्तों में वृद्धि हुई, हालांकि इतिहास लेखन में संभवतः बेहतर प्रक्रियाओं का विकास नहीं हुआ। लेकिन इसके कुछ अपवाद थे अबुल फ़ज़ल (सम्राट अकबर के दरबारी इतिहासकार) और गुजरात के दीवान और *मिरात-ए-अहमदी* (1748) के लेखक अली मुहम्मद ख़ाँ। दोनों लेखकों की राज्य के दस्तावेज़ों तक अभूतपूर्व पहुँच थी, जिस पर उनका कार्य आधारित

था, उन्होंने केवल पुराने वर्णनों को ही आधार नहीं बनाया।

औपनिवेशिक प्रवृत्तियाँ

उपनिवेशवाद के आगमन के साथ ही मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन में एक नए अध्याय की शुरुआत हुई। इस काल के बारे में ब्रिटिश इतिहास लेखन भारत में उनके शासन के विस्तार से गहरे तक जुड़ा हुआ था और साथ ही इंग्लैंड में सामयिक प्रमुख बुद्धिजीवी विचारधारा विशेषत: ज्ञानोदय, उपयोगितावाद और रोमांसवाद से भी।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में बंगाल की एशियाटिक सोसायटी ने *बिब्लिओथिका इंडिका* शृंखला के अंतर्गत मध्यकालीन इतिहासकारों के कार्य को प्रकाशित किया। 1867-1877 के बीच इलियट व डॉसन द्वारा आठ खंडों में प्रकाशित प्रसिद्ध *हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया एज़ टोल्ड बाई इट्ज़ ऑन हिस्टोरियंज़* में एक सौ साठ से भी अधिक मध्यकालीन विवरणों से लिए गए उद्धरणों का संग्रह था। लेखन की यह शैली 'इतिहासकारों का इतिहास' कहलाई और मध्यकालीन युग के प्रारंभिक ब्रिटिश पुनर्निर्माण का आधार बनी।

प्रारंभिक बीसवीं शताब्दी के ब्रिटिश इतिहासकारों ने इसी वर्गीकरण का प्रयोग किया। लेन-पूल *(मेडिवल इंडिया अंडर मुहम्मडन रूल, 1903)*, विंसेंट स्मिथ *(ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, 1919)*, और *कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* के लेखकों ने लगभग समान स्रोतों को आधार बनाकर लगभग एक जैसे राजनीतिक शोध निबंध लिखे। इनके संदर्शों में सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र में होने वाले बदलाव को शामिल नहीं किया गया।

डब्ल्यू. एच. मोरलैंड ने आर्थिक विकास के पृष्ठपट में राजनीतिक इतिहास का परीक्षण कर एक नई शुरुआत की। उनके द्वारा लिखे गए दि *एग्रीकल्चर ऑफ़ द युनाइटेड प्रॉविंसेज़ (1904)*, द. *रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दि युनाइटेड प्रॉविंसेज़ (1911)*, *इंडिया एट दि डेथ ऑफ़ अकबर* और *इंडिया फ्रॉम अकबर टू औरंगज़ेब* जैसे विनिबंधों की प्रामाणिक प्रकृति के बावजूद उनके कार्य में पूर्व शासकों की निंदा करते हुए ब्रिटिश आर्थिक नीतियों की प्रशंसा दिखाई देती है। निष्कर्ष रूप में वे लिखते हैं कि, सोलहवीं शताब्दी के अंत में "अपर्याप्त उत्पादन और दोषपूर्ण वितरण प्रणाली" भारत की आर्थिक स्थिति की विशेषता थी।

लेन-पूल, सर वूलस्ले हेग और विलियम इरविन जैसे ब्रिटिश इतिहासकारों ने भी इलियट और डॉसन के कार्यों को आधार बनाकर जो राजनीतिक इतिहास लिखे उनमें मुगलों की अपेक्षा ब्रिटिश शासन को श्रेष्ठ बताया गया। इसके बावजूद प्रारंभिक ब्रिटिश इतिहासकारों का फ़ारसी स्रोतों के अध्ययन में योगदान बहुमूल्य है।

आधुनिक विकास

मध्यकाल पर आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन की शुरुआत उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सर सैयद अहमद खाँ और अलीगढ़ स्कूल से हुई। इस समय की राजनीतिक स्थिति ने निश्चित रूप से उनके नज़रिए को प्रभावित किया। सैयद अहमद खाँ इस्लाम की व्याख्या 19 वीं शताब्दी की मान्यताओं और मूल्यों के अनुसार करना चाहते थे। सैयद अहमद और ख़ुदा बख़्श ने अपने नज़रिए को राजनीतिक मसलों से आगे बढ़ाते हुए कला, साहित्य, विज्ञान और धर्म के क्षेत्र में इस्लामिक उपलब्धियों पर बल दिया।

सन् 1920 के बाद मध्यकालीन भारत पर लेखन में अत्यधिक वृद्धि हुई। मोहम्मद हबीब ने *महमूद*

ऑफ़ गज़नी (1927) नाम से एक छोटी लेकिन प्रभावशाली किताब लिखी, जिसमें सुल्तान के भारत पर हमलों के आर्थिक उद्देश्यों पर बल दिया गया। *लाइफ़ एंड कंडीशंस ऑफ़ दि पीपुल ऑफ़ हिंदुस्तान* में के. एम. अशरफ़ ने लिखा है कि मध्यकाल में भारत में कोई सांस्कृतिक संघर्ष नहीं था, जबकि *दि एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ़ दि सल्तनत ऑफ़ डेल्ही* (1942) में आई.एच. कुरैशी ने लिखा है कि सल्तनत प्रशासन सामयिक देशी राज्यों के मुकाबले ज़्यादा कार्यकुशल था। *औरंगज़ेब एंड हिज़ टाइम्स* (1935) में फ़ारूकी ने औरंगज़ेब को एक उत्कृष्ट शासक बताया है। *फ़ाउंडेशन ऑफ़ मुस्लिम रूल इन इंडिया* (1945) में ए.बी.एम. हबीबुल्लाह ने इस काल की धार्मिक व सांस्कृतिक गतिविधियों को केंद्र बनाया है।

मध्यकालीन भारत के आधुनिक इतिहासकारों के एक प्रमुख समूह का प्रतिनिधित्व करने वालों में शामिल हैं सर जदुनाथ सरकार, जी.एस. सरदेसाई, ईश्वरी प्रसाद, ए.एल. श्रीवास्तव, पी.सरन; आर.पी. त्रिपाठी, के. एस. लाल इत्यादि। सर जदुनाथ सरकार को मूल दस्तावेज़ों, स्रोतों की भाषा के अध्ययन, ब्योरों और प्रमाणों की अत्यंत सावधानी से जाँच पड़ताल के प्रति ईमानदार रहने के कारण आधुनिक ऐतिहासिक शोध का जनक माना जाता है। उन्होंने कहा कि यह इतिहासकार का कर्तव्य है कि इतिहास के पुनर्निर्माण में अतीत को विस्मृत न करके विभिन्न प्रभावों को, "उनके स्रोतों तक पहुँचाना, काल-निर्माण में उन्हें यथास्थान देना और यह दर्शाना कि उन्होंने भविष्य को किस प्रकार प्रभावित किया और वर्तमान भारतीय-चिंतन और चिंतन में इस देश में रहने वाली विभिन्न जातियों और संप्रदायों का क्या योगदान रहा" इन बातों की पुष्टि करे। उनके योगदानों में शामिल हैं पाँच खंडों में उपलब्ध *हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब* और चार खंडों में उपलब्ध *दि फ़ॉल ऑफ़ दि मुग़ल एंपायर।*

जहाँ ईश्वरी प्रसाद ने प्रशासनिक विकास व सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों को शामिल कर इतिहास के कार्यक्षेत्र का विस्तार करने का प्रयास किया, वहीं के.एस. लाल ने ख़िलजी युग पर बड़ी मेहनत से शोध कर इस काल का वर्णन तैयार किया जो आज भी एक प्रामाणिक संदर्भ कार्य है।

सन् 1952 में मोहम्मद हबीब ने इलियट और डॉसन की *हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* के द्वितीय खंड के संशोधित संस्करण की एक लंबी प्रस्तावना लिखी, जिसमें उन्होंने मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अध्ययन में मार्क्सवादी प्रक्रिया का इस्तेमाल किया। इस प्रक्रिया को उनके बेटे इरफ़ान हबीब ने आगे बढ़ाया, जिनकी 1963 में पहली बार प्रकाशित *अग्रेरियन सिस्टम ऑफ़ मुग़ल इंडिया* ने मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अध्ययन में नए परिदृश्य खोले। स्रोतों के व्यापक प्रयोग, बारीकियों पर ध्यान और विषय पर पहुँच को देखते हुए यह मुग़लकालीन भारत में भू-संपदा विषयक संबंधों पर सबसे प्रामाणिक अध्ययन है। इस पुस्तक में कृषि उत्पादन, भूमि अधिकार, भूमि राजस्व प्रशासन, कराधान, किसान आंदोलन, ग्रामीण समुदायों तथा अन्य कई विषयों से लेकर समूचे भू-संपदा विषयक क्षितिज पर लिखा गया है।

मुग़ल शासक वर्ग की जातिगत व धार्मिक संरचना पर अथर अली का शोध कार्य (1970) इस काल के सत्ता संबंधों को समझने के लिए अत्यावश्यक है। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में इस्लामिक पुनर्जागरण आंदोलनों पर एस.ए.ए. रिज़वी के कार्य, सूफ़ियों पर किए गए उनके व्यापक शोध के साथ-साथ अकबर के शासनकाल के उनके धार्मिक

व बौद्धिक इतिहास ने विषय को आर्थिक व राजनीतिक पक्षों के अलावा और भी व्यापकता प्रदान की है। इतिहासकारों का अतीत से मेल-मिलाप जारी है।

अभ्यास

1. मध्यकालीन भारत के अध्ययन के प्रमुख स्रोतों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. मध्यकालीन इतिहास पर आधुनिक भारतीय लेखकों के शोध के मुख्य क्षेत्र क्या थे?
3. सही मिलान कीजिए:

(क) हसन निज़ामी	फ़तवा-ए-जहाँदरी
(ख) मिनहाज सिराज	फुतूह-उस-सलातिन
(ग) ज़ियाउद्दीन बरनी	ताज-उल-मासिर
(घ) अफ़ीफ़	तबक़ात-ए-नासिरी
(ङ.) इसामी	तारीख़-ए-फ़िरोज़शाही
(च) डब्ल्यू.एच.मोरलैंड	अग्रेरियन सिस्टम ऑफ़ मुग़ल इंडिया
(छ) इरफ़ान हबीब	इंडिया एट दि डेथ ऑफ़ अकबर
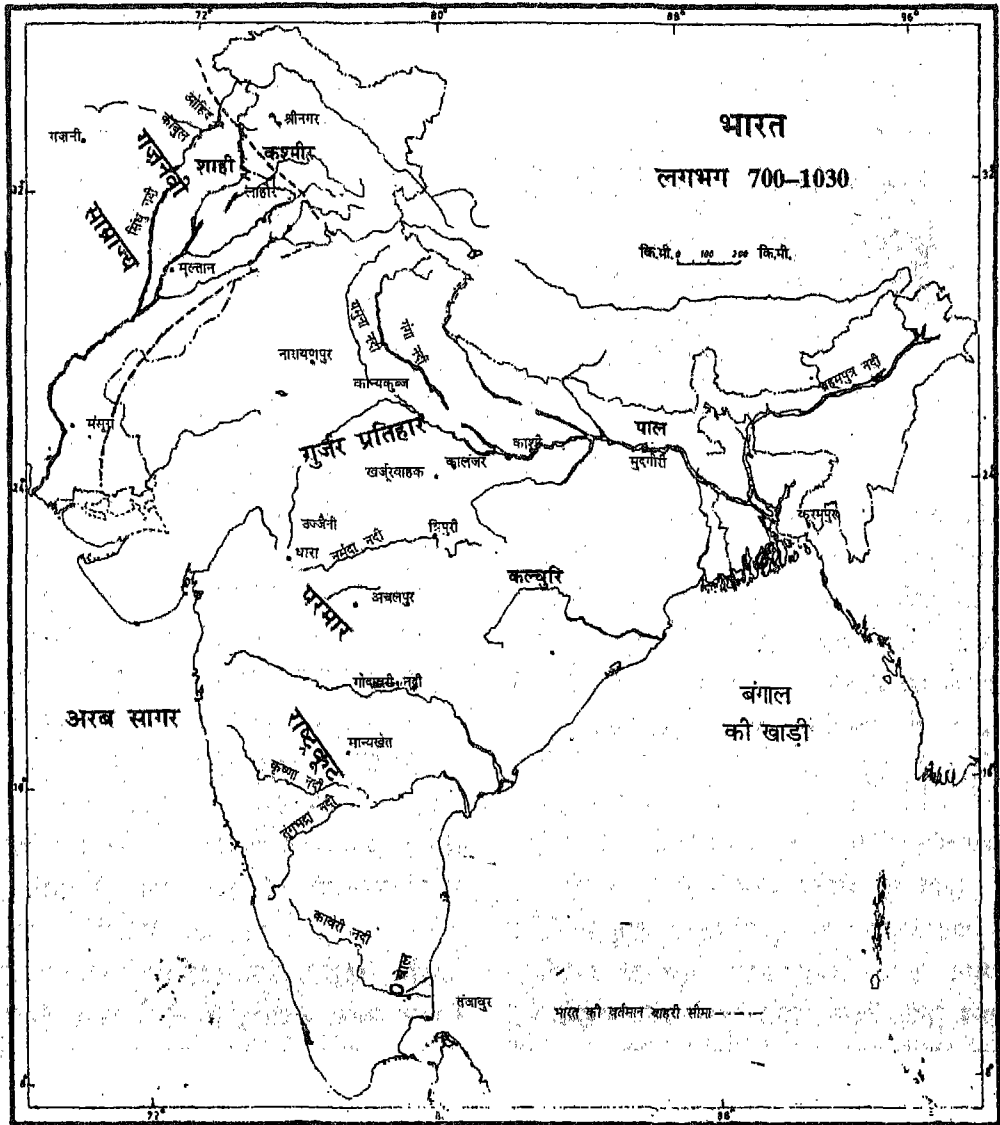
भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र में भारत का जनप्रदेश उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
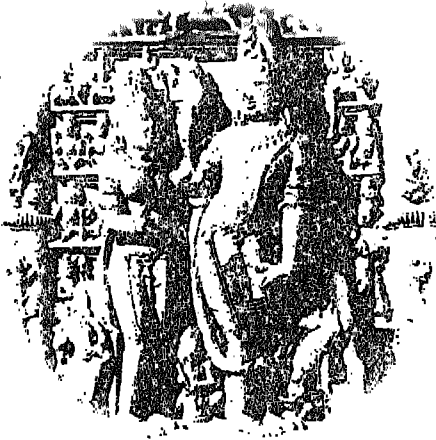
हर्ष की मृत्यु के बाद उत्तर भारत में तीन उदयमान शक्तियों में चक्रवर्तिन की स्थिति के लिए लंबा संघर्ष चला। सैन्य शक्ति और आर्थिक क्षमता में समान गुर्जर प्रतिहार, पाल और राष्ट्रकूट कन्नौज राज्य के ऊपर शासन करने के लिए एक दूसरे का जमकर मुकाबला करते हुए भी अपने-अपने राज्य में सांस्कृतिक गतिविधियों को प्रश्रय देते रहे।

गुर्जर प्रतिहार

गुर्जर प्रतिहारों को, जिन्हें अरब अल-जुर्ज़ के नाम से बुलाते थे, सातवीं शताब्दी ई. में पहली बार प्रमुखता मिली। परंपरानुसार माउंट आबू में विधि अनुसार एक विशाल अग्नि अनुष्ठान आयोजित किया गया, जिसमें कुछ कुलों और समूहों को हमलावरों से लड़ने की ज़िम्मेदारी सौंपी गई। इनमें गुर्जर प्रतिहार भी शामिल थे, जो अग्निकुल राजपूतों के नाम से भी जाने गए।

नवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक उन्होंने मध्य देश के विशाल हिस्सों व कन्नौज को अपने अधीन कर लिया। माउंट आबू के पास एक नगर भीलमाल से शासन आरंभ कर अंततः उन्होंने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया, जहाँ कहा जाता है कि वे उत्तर भारतीय समाज में महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक व धार्मिक बदलाव लाने में सफल हुए। वे. अरबों के प्रति अपने निरंतर विरोध और पालों एवं राष्ट्रकूटों के साथ चले निरंतर संघर्ष के लिए भी जाने जाते हैं।

अनेक अरब यात्रियों ने प्रतिहार साम्राज्य की शक्ति की पुष्टि की है। दसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में मसूदी ने इस संबंध में अत्यंत ही सजीव वर्णन किया। वे लिखते हैं : ''कन्नौज के राजा की चारों दिशाओं में चलने वाली हवा की तरह चार सेनाएँ हैं... उत्तर की सेना मुल्तान के राजकुमार व मुसलमानों तथा इस सीमा पर जमी उनकी प्रजा से लड़ने के लिए है; दक्षिण की सेना मनकीर के राजा, बल्लहारा से लड़ने के लिए है। अन्य सेनाएँ बाकी के शत्रुओं से लड़ने के लिए हैं। उसके राज्य में 1,800,000 नगर, गाँव या किले हैं जो जंगलों में, भरपूर जल आपूर्ति वाले क्षेत्रों, पहाड़ी तथा समृद्ध क्षेत्रों में हैं।... अल-जुर्ज़ के राजा के पास बड़ी संख्या में ऊंट और घोड़े और एक विशाल सेना है।''

गुर्जर प्रतिहार शासक, नागभट्ट प्रथम जिसने संभवतः 756 ई. तक शासन किया; ने एक विशाल राज्य छोड़ा जिसमें राजस्थान, मालवा और गुजरात के हिस्से शामिल थे। उसके उत्तराधिकारी वत्सराज ने भी अनेक स्थानों पर विजय प्राप्त की और उदीयमान पालों से उसका संघर्ष हुआ। उसने बंगाल के एक राजा को पराजित किया, जो गोपाल अथवा उसका पुत्र धर्मपाल हो सकता है, लेकिन जीत के इस दौर में राष्ट्रकूट ध्रुव का आगमन हुआ, जिसने प्रतिहार व पाल शासकों को पराजित कर त्रिकोणीय संघर्ष की शुरुआत की।

ध्रुव की मृत्यु से उत्तरी शक्तियों ने राहत की साँस ली। वत्सराज के पुत्र और उत्तराधिकारी,

नागभट्ट द्वितीय के शासन काल में प्रतिहारों को पुनर्जीवन मिला। नागभट्ट द्वितीय के आधिपत्य को पश्चिमी काठियावाड़, आंध्र, कलिंग और विदर्भ के शासकों ने स्वीकार किया। नागभट्ट द्वितीय ने कन्नौज पर भी आक्रमण किया जिससे उसका धर्मपाल के साथ संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में धर्मपाल पराजित हो गया। जैसे-जैसे पाल क्षेत्रों में उसके हमले बढ़ते गए, धर्मपाल राष्ट्रकूट राजा, गोविंद तृतीय (794-813 ई.) की सहायता लेने को बाध्य हुआ। राष्ट्रकूट सेना के आते ही नागभट्ट वहाँ से भाग खड़ा हुआ। लेकिन राष्ट्रकूट सेनाओं के दक्कन छोड़ते ही प्रतिहार सेनाएँ फिर से अपनी विजय यात्रा पर निकल पड़ीं।

836 ई. में भोज के प्रतिहार सिंहासन ग्रहण करते ही उनकी स्थिति में अचानक बदलाव आया। राष्ट्रकूटों व पालों के हाथों हुई अपनी प्रारंभिक पराजय के बावजूद, भोज ने आखिरकार उन्हें पराजित कर पंजाब और काठियावाड़ से लेकर कोशल और कन्नौज तक अपने राज्य का विस्तार किया। गोरखपुर के कल्चुरियों और बुंदेलखंड के चंदेलों ने भी उसकी प्रभुसत्ता स्वीकार की। कश्मीर, सिंध, बंगाल और बिहार में पाल क्षेत्रों और जबलपुर के कल्चुरि राज्य को छोड़कर भोज शेष उत्तर भारत को जीतने में सफल रहा।

उसने कन्नौज के पवित्र नगर से शासन किया। वह विष्णु भक्त था और उसने विष्णु के सम्मान में *आदि वराह* की उपाधि ग्रहण की। उसके बेटे महेंद्रपाल (885-910 ई.) ने प्रतिहार साम्राज्य में मगध व उत्तरी बंगाल के हिस्सों को मिलाया, जिसके कारण इस राज्य की सीमाएँ गंगा के स्रोत से लेकर रेवा (हिमालय से लेकर विंध्य तक) तक विस्तृत हो गईं और इसमें मूलतः पूर्वी व पश्चिमी महासागरों के बीच पड़ने वाले क्षेत्र आते थे।

महेंद्रपाल के कमज़ोर उत्तराधिकारियों के शासनकाल में राष्ट्रकूटों ने फिर से कन्नौज पर हमला किया लेकिन अपने द्वारा विजित क्षेत्र का संघठन किए बिना ही वे पीछे हट गए। अनेक कोशिशों के बावजूद प्रतिहार अपने भूतपूर्व गौरव को पुनः हासिल नहीं कर पाए और उनके साम्राज्य के अवशेषों पर अनेक नए राज्य उठ खड़े हुए।

पाल राज्य को अरब महान राजा, धर्मपाल (780-815 ई.) के नाम पर 'धर्म का राज्य' कहते थे। यद्यपि गुर्जर प्रतिहार और राष्ट्रकूट राजाओं के हाथों धर्मपाल की हार हुई, लेकिन उसने आगे जाकर जो साम्राज्य बनाया उसमें बंगाल, बिहार, उड़ीसा के विशाल क्षेत्र, नेपाल, असम और कन्नौज के कुछ हिस्से शामिल थे। खलीमपुर से प्राप्त एक ताम्रपत्र शिलालेख से उसके शासन के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

धर्मपाल इतना शक्तिशाली बन गया कि उसने कन्नौज के सिंहासन पर एक व्यक्ति को मनोनीत कर दिया। उसने इस प्रमुख नगर में एक भव्य सभा आयोजित की, जिसमें अनेक प्रमुख जागीरदारों ने भाग लिया। इस सभा में उसने स्वयं को उत्तरी भारत का सम्राट घोषित किया। वह बौद्ध धर्म को अत्यधिक प्रश्रय देने वाले लोगों में था और उसने जिस विश्वविद्यालय की स्थापना की, वह शीघ्र ही नालंदा का प्रतिद्वंद्वी हो गया।

पाल राजाओं ने धर्मपाल के बेटे देवपाल (815-855 ई.) के शासन के दौरान भी उत्तर भारत पर अपना वर्चस्व कायम रखा। पाल साम्राज्य अब हिमालय से लेकर विंध्य तक और बंगाल की खाड़ी से अरब सागर तक विस्तृत था। देवपाल के

उत्तराधिकारियों के शासन में इस राजवंश का पतन आरंभ हो गया। यद्यपि राष्ट्रकूट दक्षिण की ओर से आगे बढ़ रहे थे, गुर्जर प्रतिहारों ने बिहार के कुछ हिस्सों पर अधिकार कर लिया और नवीं शताब्दी के अंत तक उत्तरी बंगाल पर भी उनका शासन था।

पाल राजा एक समृद्ध साम्राज्य के शासक थे, जिसके दक्षिण पूर्व एशिया के साथ अच्छे व्यापारिक संबंध थे, जहाँ पर वस्त्र और मृदभांड की अच्छी माँग थी और साथ ही संभवत: वहाँ चावल का भी निर्यात किया जाता था। सातवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक दक्षिण-पूर्वी बंगाल का संबंध मलय प्रायद्वीप व इंडोनेशियाई द्वीपसमूह की अरब व्यापारिक बस्तियों से था।

पालों ने कला और साहित्य को अत्यधिक प्रश्रय दिया। यद्यपि उनके समय की कोई भी इमारत आज मौजूद नहीं है, लेकिन उनके शासनकाल में शिल्पकला की एक नई शैली का विकास हुआ। *गौड़ीरीति* नामक साहित्यिक विद्या का भी इस समय विकास हुआ। पाल शासन के दौरान खोदे गए तालाब और नहर उनके द्वारा लोक निर्माण के लिए किए गए कार्यों के प्रमाण हैं।

पाल राजा बौद्ध धर्म के सच्चे अनुयायी थे और उन्होंने बौद्ध मठों को भरपूर दान दिया, हालांकि उन्होंने ब्राह्मणों को भी भेंट दी और मंदिरों का निर्माण कराया। उनके शासनकाल में जावा व सुमात्रा के एक राजा ने नालंदा में विदेशी छात्रों के लिए एक महाविद्यालय बनाने के लिए सहायता माँगी। पाल शासित क्षेत्रों में रहने वाले प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षुओं में दीपंकर सृजनन का उल्लेख किया जा सकता है। विक्रमशिला विश्वविद्यालय ने अनेक तिब्बती भिक्षुओं को आकर्षित किया। महायान बौद्ध धर्म बंगाल से चलकर तिब्बत व दक्षिण पूर्व एशिया पहुँचा। इसी के साथ पाल कला शैली ने भी इन देशों में पहुँचकर इनकी कला को प्रभावित किया।

राष्ट्रकूट

राष्ट्रकूट, जिन्हें अरब बल्लहारा के नाम से जानते थे, 743 ई. में दक्कन में सत्ता में आए। उन्होंने अपनी राजधानी मनकिर या मान्यखेत (वर्तमान मालखेड़, शोलापुर के निकट) से शासन किया। संस्कृत एवं अरबी स्रोतों में उन्हें लगभग दो शताब्दियों तक भारत की सर्वोच्च शक्ति बताया गया है। अरब यात्री राष्ट्रकूट शासक का वर्णन ''अल-हिंद के राजाओं के राजा (मलिक-अल-मुलुक)...'' के रूप में करते हैं।

अरबों ने राष्ट्रकूट राज्य की समृद्धि का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया है। मसूदी लिखता है, ''बल्लहारा मनकिर नगर में रहता है, यह नगर 40 *पर्संग* लंबा और सागौन, बांस व अन्य तरह की लकड़ी से बना है। कहा जाता है कि लोगों के सामान को लाने ले जाने के लिए वहाँ 10 लाख हाथी हैं। राजा के अपने अस्तबल में साठ हजार हाथी हैं और एक सौ बीस हज़ार हाथी कपड़ा रँगने वालों के हैं। मूर्तिगृह में सोना, चाँदी, लोहे, ताँबे, पीतल और हाथीदाँत और पिसे हुए पत्थर से बनी लगभग बीस हज़ार मूर्तियाँ हैं, जिन्हें कीमती ज़वाहरातों से सजाया गया है। इसी में सोने से बनी एक मूर्ति भी है, जिसकी लंबाई 12 हाथ है। यह एक सोने के सिंहासन पर आसीन है जो एक स्वर्ण छत्र के बीचोंबीच है, जिसे आभूषणों, मोती और बहुमूल्य पत्थरों से सजाया गया है।''

राष्ट्रकूटों की अपार संपदा का श्रेय उनके राज्य की भौगोलिक स्थिति को दिया गया है, जिससे वे फलते-फूलते समुद्री व्यापार का लाभ उठा पाए।

इस वंश का पहला महत्त्वपूर्ण राजा दंतिदुर्ग था। उसने नंदीपुरी (भड़ौच के निकट) के गुर्जर राज्य और मालवा के गुर्जर प्रतिहारों को पराजित किया और मध्य प्रदेश के पूर्वी क्षेत्रों में अपनी प्रभुसत्ता का विस्तार किया। उसका उत्तराधिकारी उसका चाचा कृष्ण प्रथम (758-773) था, जिसने महाराष्ट्र के आगे राष्ट्रकूट प्रभुसत्ता का विस्तार कर उसमें वर्तमान हैदराबाद और मैसूर को भी शामिल किया, लेकिन उसे सबसे ज़्यादा कैलाश मंदिर के लिए जाना जाता है।

इस वंश का उत्तर में विस्तार ध्रुव (779-793 ई.) के साथ शुरू हुआ, जिसने विंध्य पार कर न केवल प्रतिहार शासक वत्सराज को करारी हार दी, बल्कि पाल राजा, धर्मपाल को भी पराजित किया। दो प्रमुख उत्तरी शक्तियों पर अपनी विजय के उपलक्ष्य में ध्रुव ने राष्ट्रकूट प्रतीक में गंगा और यमुना के प्रतीकों को शामिल किया।

793 ई. के आस-पास ध्रुव की मृत्यु से उत्तरी शक्तियों को पुनः अपनी स्थिति सुदृढ़ करने का मौका मिला लेकिन राष्ट्रकूट गोविंद तृतीय (793-814 ई.) के शासनकाल में पुनः ऊपर उठे और उन्होंने प्रतिहार राजा, नागभट्ट द्वितीय को पराजित किया। गोविंद तृतीय के बारे में कहा जाता है कि वह हिमालय तक पहुँचा और वह प्रयाग, बनारस और गया भी गया। दक्षिण की घटनाओं ने उसे लौटने पर विवश कर दिया लेकिन उसने इस क्षेत्र में अपने विरोधियों को पराजित किया और कुछ समय के लिए संपूर्ण भारत ने राष्ट्रकूट प्रभुसत्ता को स्वीकार किया।
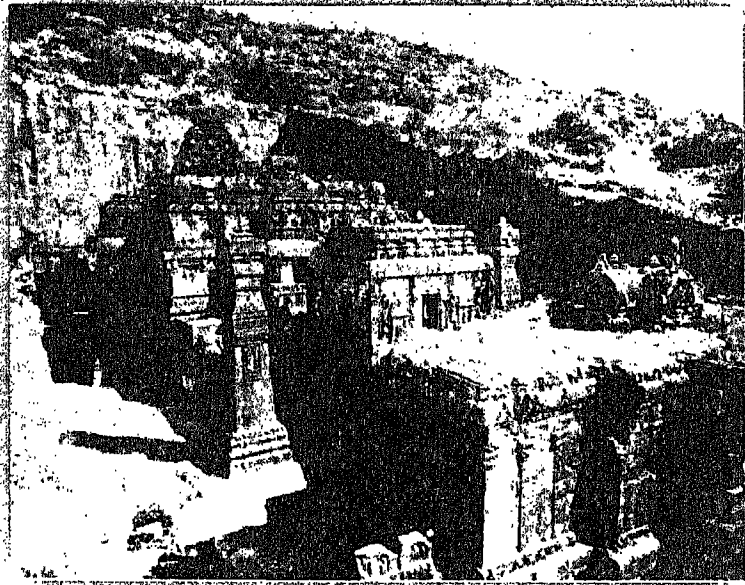
कैलाश मंदिर, एलोरा

राष्ट्रकूटों का पतन उसके बेटे और उत्तराधिकारी, अमोघवर्ष के शासन में आरंभ हुआ, जिसने 814 ई. में तेरह वर्ष की उम्र में राजगद्दी संभाली। यद्यपि उसने लगभग आधी शताब्दी तक शासन किया, लेकिन उसके पास अपने पिता और दादा जैसा सैन्य कौशल नहीं था लेकिन वह एक अत्यंत प्रतिभावान व्यक्ति था। एक प्रसिद्ध लेखक के रूप में उसने कन्नड़ साहित्य की प्रारंभिक रचनाओं में एक *कविराजमार्ग* नामक पुस्तक लिखी। इसके अलावा उसने अनेक जैन व हिंदू विद्वानों को भी प्रश्रय दिया। उसने तुंगभद्रा नदी में जलसमाधि लेकर अपने जीवन का अंत किया।

उसके उत्तराधिकारी कृष्ण द्वितीय के शासन में राष्ट्रकूट राज्य को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, यद्यपि बाद के दो शासकों इंद्र तृतीय और कृष्ण तृतीय ने कुछ महत्त्वपूर्ण विजय हासिल कीं। इंद्र तृतीय ने प्रतिहार शासक महिपाल के विरुद्ध युद्ध किया, जबकि कृष्ण तृतीय ने अपने जीजा की मदद से न केवल कांची और तंजावुर पर अधिकार किया बल्कि चोल राजाओं को भी पराजित किया, जिसके बाद उसने रामेश्वरम में विजय स्तंभ स्थापित किया। राष्ट्रकूट शैव, वैष्णव, शाक्त संप्रदायों के साथ-साथ जैन धर्म के भी उपासक थे।

राज्य व्यवस्था का स्वरूप

गुर्जर प्रतिहार, पाल और राष्ट्रकूट के राज्य केंद्रित राजतंत्र न होकर प्राचीन काल के चक्रवर्तिन के आदर्श का पालन करते थे। वे विभिन्न क्षेत्रों पर राज्य करते थे, जिसमें अनेक छोटे शासकों का राजा के साथ अधीनता का संबंध था। अधीनस्थ सरदार अपने क्षेत्रों के आंतरिक मामलों में स्वतंत्र थे और ज़रूरत पड़ने पर सम्राट को सैन्य सहायता देते थे। इस काल में छोटे सरदारों, जिन्हें सामंत कहते थे, की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई।

केंद्रीकृत प्रदेशों का प्रशासनिक तंत्र पुराने प्रशासनिक तंत्र की भांति ही था जिसमें राजा की सहायता अनेक मंत्री करते थे जो विभिन्न सरकारी विभागों के प्रभारी होते थे। सेना राज्य का एक प्रमुख अंग थी और इस काल के अरब विवरण अल-हिंद के राजाओं की सैन्य शक्ति के संदर्भों से भरपूर हैं। पैदल सेना और घुड़सवारों के विशाल दस्ते रखने के अलावा शासकों के पास बड़ी संख्या में हाथी थे और वे अरब और पश्चिम एशिया से घोड़ों का आयात करते थे। पालों और राष्ट्रकूटों के पास विशाल संख्या में नौ-सैनिक दस्ते भी थे।

प्रत्यक्ष प्रशासित क्षेत्रों का विभाजन *भुक्ति* (प्रांत, जिन्हें राष्ट्रकूट क्षेत्र में *राष्ट्र* कहते थे) और *मंडल* अथवा *विषय* (ज़िला) में किया गया था। प्रांत के प्रमुख को *उपरिक* कहते थे जबकि ज़िला प्रमुख को विषयपति कहा जाता था, विषय से छोटा *पट्टल* होता था, यद्यपि इसके बारे में हमारे पास अधिक जानकारी नहीं है। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम होती थी। ग्राम प्रमुख और लेखाकार की सहायता ग्राम के बुजुर्ग और समितियाँ करती थीं, जो स्थानीय मसलों की देखरेख करती थीं

अभ्यास

1. गुर्जर प्रतिहारों के उदय और उनके राज्य विस्तार का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. कला और संस्कृति के क्षेत्र में पाल राजाओं की क्या उपलब्धियाँ थीं।
3. गुर्जर प्रतिहारों, पालों और राष्ट्रकूटों के अधीन राज्य व्यवस्था के स्वरूप का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :
   (क) भोज
   (ख) धर्मपाल
   (ग) अमोघवर्ष
5. सही मिलान कीजिए :

(क) नागभट्ट द्वितीय	एक बौद्ध भिक्षु था
(ख) धर्मपाल	ने *आदि वराह* की उपाधि ग्रहण की
(ग) भोज	को अरब अल-जुर्ज़ बुलाते थे
(घ) गुर्जर प्रतिहार	राष्ट्रकूटों की राजधानी थी
(ङ) मनकिर	प्रसिद्ध लेखक था
(च) अमोघवर्ष	ने प्रतिहार सत्ता को पुनः उबारा
(छ) सृजनन	ने कन्नौज में विशाल सभा आयोजित की

अध्याय 3

इस्लामी जगत
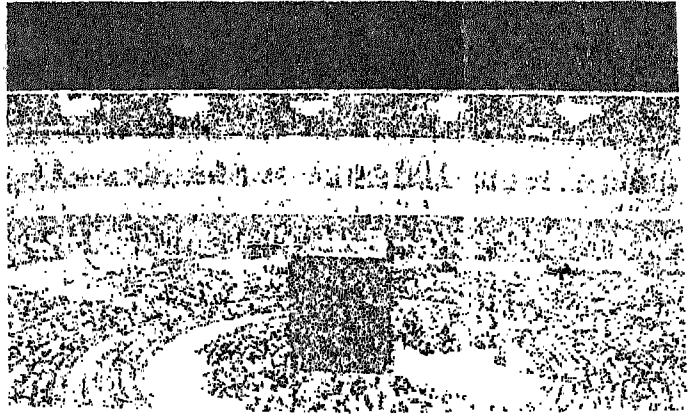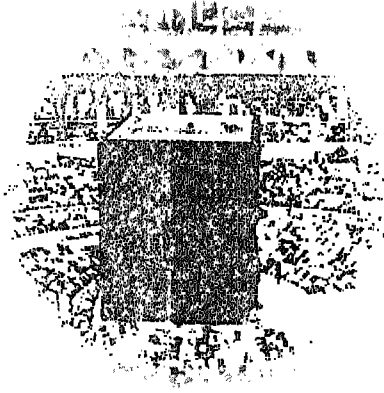
सातवीं शताब्दी ई. में अरब में एक नए धर्म का जन्म हुआ, जिसने अपने पूर्व व पश्चिम स्थित देशों के वर्तमान समीकरणों को बदल कर रख दिया। अल्प समय में ही इसने उत्तर अफ्रीका और आइबेरिया प्रायद्वीप से लेकर ईरान और भारत तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया। यद्यपि कुछ स्थानों से इसे पीछे हटना पड़ा, जिनमें मुख्यतः स्पेन, मध्य और दक्षिण-पूर्वी यूरोप शामिल हैं, इस्लाम ने शताब्दियों तक इन क्षेत्रों में अपने पाँव जमाए रखे। इसने इन स्थानों की संख्या बढ़ाई ही है, लेकिन अपनी शुरुआती विजय की भाँति नहीं।

देश और लोग

अरब प्रायद्वीप का अधिकांश क्षेत्र सूखा बंजर और अगम्य है। यहाँ पर एडेन के अलावा बहुत कम अच्छे बंदरगाह हैं और हजर के अलावा एक भी ऐसी नदी नहीं है जो इसके पूर्वी और पश्चिमी क्षेत्रों के बीच यातायात व संचार को सुगम बना सके। इस क्षेत्र की सबसे प्रभावशाली विशेषताएँ थीं अपने सुवाह्य शिविरों के साथ साहसी बद्दू चरवाहे और इस मरुद्वीप के गृहप्रेमी खानाबदोश। चारागाहों की तलाश में बद्दू लगातार एक से दूसरी जगह घूमते रहते थे और जीवित रहने के लिए लगातार संघर्षरत रहते हुए हमेशा ही युद्धरत रहते थे।

लेकिन दक्षिण-पश्चिम का एक छोटा-सा कोना उपजाऊ था। अपने लोबान और गंधरस के लिए प्रसिद्ध इस क्षेत्र में बड़ी संख्या में लोग रहते थे। इस्लाम पूर्व काल में दक्षिणी अरबों ने अपने नौसैनिक कौशल से इस क्षेत्र पर अधिकार किया, जो हिंद महासागर के दोनों छोरों को अरब से जोड़ता था। उर्वर अर्धचन्द्राकार भूमि और भूमध्य सागर क्षेत्र में अपने सामान को ले जाने के लिए उन्होंने उत्तरी स्थलमार्गीय व्यापारिक मार्ग भी खोले और काफ़िलों की सुरक्षा के लिए उन्होंने उत्तरी अरब के बद्दुओं को भरती किया। कुछ ही समय में पश्चिमी अरब व्यापारिक मार्ग पर काफिलों के शहर बनने लगे। मक्का काफ़िलों का एक प्रमुख शहर था जहाँ पर कुरैश नामक जनजाति का वर्चस्व था। यहीं पर अरबों का सर्वप्रमुख धार्मिक केंद्र काबा भी था।

मुहम्मद

मुहम्मद का जन्म मक्का में 570 ई. में कुरैश के बानू हाशिम वंश में हुआ। अनाथ होने की वजह से उनका पालन-पोषण उनके रिश्तेदारों ने किया। पच्चीस वर्ष की उम्र में अपने चाचा के कहने पर वह ख़दीजा नामक एक धनी विधवा की नौकरी करने लगे, जिससे उन्होंने बाद में विवाह कर लिया। खदीज़ा के माल की ज़िम्मेदारी के चलते उन्होंने सीरिया की यात्रा की। वहाँ वे यहूदी व ईसाई समुदायों के संपर्क में आए और उनके धर्म की जानकारी प्राप्त की।

चालीस वर्ष की उम्र के लगभग मुहम्मद चिंतनशील हो गए। वे मक्का के लोगों की मूर्ति

पूजन की आदत से भी परेशान थे। वे हिरा में एक गुफ़ा में एकांत में ज़्यादा से ज़्यादा समय व्यतीत करने लगे। गुफ़ा में इसी प्रकार के एकांतवास में एक बार उन्हें ऐसी अनुभूति हुई मानो एक देवदूत उन्हें सपने में दिखाई दिया और उन्हें वो ज्ञान दिया जिसे बाद में रहस्य को उद्घाटित करने वाला पहला संबोधन कहा गया। कुछ समय बाद इस देवदूत ने मुहम्मद को पुनः संबोधित किया, जिन्हें अब यह विश्वास हो गया था कि वे ही ईश्वर के चुने हुए दूत हैं। मुहम्मद द्वारा प्राप्त इन संबोधनों को बाद में कुरान नामक पुस्तक में संकलित किया गया। कुरान और हदीस (मुहम्मद की उक्तियाँ) को इस्लाम के ज्ञान के सर्वोच्च स्रोत के रूप में सम्मान दिया जाता है।

मुहम्मद के अनुयायियों में सर्वप्रथम थे, खदीजा, उनके चचेरे भाई अली और अबु बकर। उनके अनुयायियों की संख्या जल्दी ही लगभग पचास तक पहुँच गई। लेकिन जैसे-जैसे मुहम्मद का मक्का में धार्मिक प्रथाओं के विरुद्ध विरोध बढ़ता गया, कुरैश उनका विरोध करने लगे।

इस नवनिर्मित समुदाय को उस समय सहारा मिला, जब मदीना (मक्का के उत्तर में 280 मील पर) के कुछ नागरिकों ने मुहम्मद की शिक्षाओं को स्वीकारा। शीघ्र ही मुहम्मद के अनुयायी चोरी-छिपे मदीना जाकर बसने लगे। अब मक्का में केवल मुहम्मद, अबु बकर, अली और उनके परिवार रह गए। जब मुहम्मद को कुरैशों द्वारा उन्हें मारने की योजना का पता चला तो
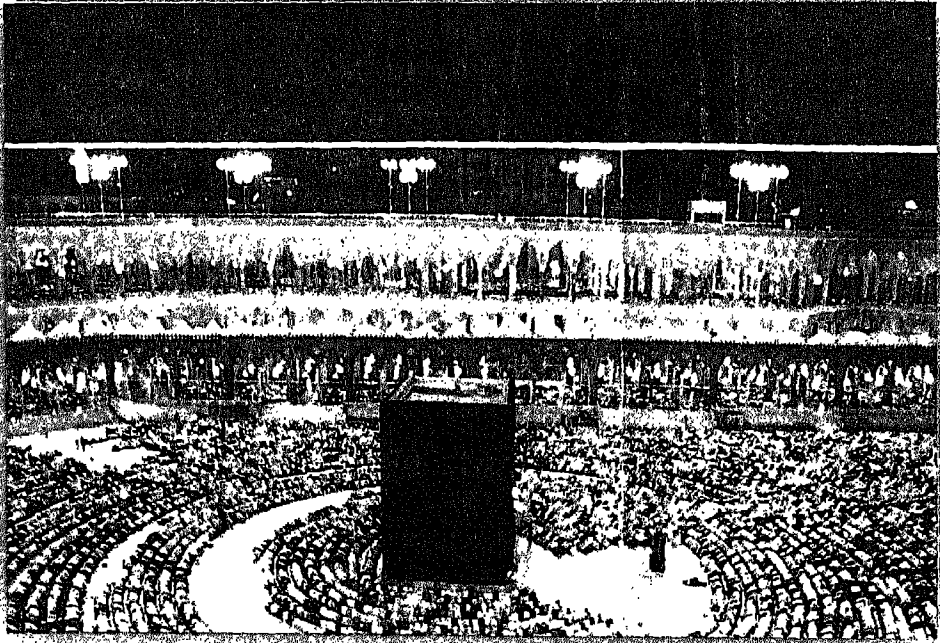
मक्का में तीर्थयात्री

उन्होंने मक्का के निकट सौर पर्वत पर शरण ली जहाँ से 622 ई. में वे मदीना पहुँचे। मुहम्मद के स्थानांतरण को *हिज्र* कहते हैं और इसी वर्ष से इस्लामिक कालदर्श की शुरुआत होती है।

हिज्र के दूसरे वर्ष में कुरैश के साथ उस समय शत्रुता पुनः शुरू हुई जब बद्र में एक घमासान युद्ध लड़ा गया। मुहम्मद के तीन सौ लोगों के दल ने अपने से तीन गुना बड़ी सेना को पराजित कर दिया। बद्र का युद्ध जिसमें मुहम्मद ने अपने पैगंबरवाद का दावा करने के लिए पहली बार तलवार उठाई, को इस्लामिक इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण घटना माना जाता है। बद्र की जीत के बाद यहूदियों और ईसाइयों पर हमले किए गए, जिन पर यह आरोप था कि उन्होंने अपने धर्मग्रंथों में झूठ लिखकर मुहम्मद के बारे में भविष्यवाणियों को झुठलाने की कोशिश की।

बद्र की हार का बदला लेने के लिए कुरैश ने तीन हज़ार आदमियों के साथ मदीना कूच किया। उन्होंने उहुद में मुहम्मद की सेनाओं से युद्ध किया लेकिन उनमें इस हमले को जारी रखने का आत्मविश्वास नहीं था। बद्र के बाद उहुद से भी मुहम्मद ने मदीना पर हमला बोल वहाँ से एक यहूदी जाति को भगा दिया। कुरैश के साथ तनाव जारी रहा और 627 ई. में मक्का के लोगों ने मदीना पर हमला करने की तैयारी की। मुहम्मद ने शहर के इर्द-गिर्द एक खाई खुदवाकर आसानी से विजय पा ली। इस विजय के बाद उन्होंने कुरैज़ा की यहूदी जाति और खैबर में यहूदियों के नखलिस्तान पर हमला किया।

630 ई. में मुहम्मद ने सफलतापूर्वक मक्का में प्रवेश किया। उन्होंने सात बार काबा की परिक्रमा की और वहाँ पर स्थापित 360 मूर्तियों को हटाने का आदेश दिया। मक्का के लोगों ने मुहम्मद की अधीनस्थता स्वीकार की और धीरे-धीरे अरब की विभिन्न जनजातियों ने पैगंबर की आध्यात्मिक व सांसारिक श्रेष्ठता स्वीकार की।

नया समाज

मुहम्मद ने जिस राज्य व्यवस्था का निर्माण किया वह *उम्माह* (आस्थावान मुस्लिम समुदाय) और जिहाद पर आधारित थी। इसका आधार धार्मिक था और इसके सदस्य केवल मुसलमान हो सकते थे। यहूदियों व ईसाइयों के साथ पैगंबर की संधि *धिम्मी* प्रणाली का आधार बनी और उसने विश्वास करने वालों तथा अविश्वासी लोगों के बीच में निरंतर रहने वाली दूरी का रूप धारण कर लिया।

इस्लाम ने अरब के सबसे पूज्य चिह्नों को अपनाया और स्वयं को यहूदी व ईसाई धर्मों से दूर कर लिया, क्योंकि इन दो धर्मों से ही उसे अपनी मातृभूमि में संघर्षरत होना पड़ा था। इस प्रक्रिया के अंतर्गत विश्राम दिवस का स्थान शुक्रवार ने और तुरही और घड़ियालों की जगह *अज़ान* (प्रार्थना की पुकार), ने ले लिया। रमज़ान को पवित्र महीना घोषित कर दिया गया और *क़िबला* (प्रार्थना के दौरान जिस दिशा की ओर मुँह किया जाता है) को येरूशलम के स्थान पर मक्का की ओर कर दिया गया। काबा की तीर्थ यात्रा की प्राचीन प्रथा को इस्लामिक रीति रिवाज़ों में शामिल किया गया। इस्लाम अरब इतिहास में पहला ऐसा प्रयास था, जिसमें सामाजिक संरचना रक्त संबंधों पर आधारित न होकर धर्म पर आधारित थी। इसलिए विद्वान नए धर्म को अरब राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति मानते हैं।

इस्लाम के पाँच प्रसिद्ध स्तंभ सामुदायिकता की नई भावना को सुदृढ़ करते हैं। ये हैं अल्लाह के अंतिम दूत के रूप में मुहम्मद की स्वीकृति और

ईश्वर के अंतिम और अटल शब्द के रूप में कुरान की स्वीकृति; काबा की ओर मुँह करके दिन में पाँच बार नमाज़; मुस्लिम समुदाय के लाभ के लिए ज़कात या दान; रमज़ान के महीने में उपवास और मक्का को हज या तीर्थयात्रा।

मुहम्मद के बाद इस्लाम

632 ई. में मुहम्मद की मृत्यु के बाद, मुस्लिम समुदाय के नेतृत्व की जिम्मेदारी चार पैतृक खलीफाओं (633-61 ई.) पर पड़ी जो कि पैगंबर के निकट सहयोगी थे। इस्लाम में पहली बड़ी दरार इस काल में समुदाय के नेतृत्व के सवाल को लेकर पड़ी। कुछ लोग पैगंबर के दामाद, अली को कानूनन निकटतम उत्तराधिकारी मानते थे, लेकिन वह अबु बकर, उमर और उस्मान के बाद ही सफल हो सकता था, लेकिन अली की हत्या कर दी गई और उसके परिवारजन व अनुयायी कर्बला के युद्ध में मारे गए। अली के अनुयायी शिया कहलाते हैं, जबकि वे मुसलमान जो अनुक्रमण की इस व्यवस्था को सही मानते हैं और बहुसंख्यक हैं, सुन्नी कहे जाते हैं।

पैतृक खलीफ़ाओं के उत्तराधिकारी उमैय्यद खलीफ़ाओं (661-750 ई.) में अरबों का प्रभुत्व था। उनके बाद अब्बासी खलीफाओं (750-1258) ने शासन संभाला, जिनके शासनकाल में विशेष प्रशिक्षित श्वेत गुलामों, मामलुकों (मुख्यतः मध्य एशियाई तुर्क), का वर्चस्व रहा। वे इस्लामी शासन में एक नई ताज़गी लेकर आए और उन्होंने उसके दायरे का काफी विस्तार किया। परवर्ती अब्बासियों के काल में खलीफ़ाओं के हाथ से राजनीतिक पकड़ ढीली पड़ने लगी और अनेक क्षेत्रों में स्वाधीन मुस्लिम राजा (सुल्तान) उभरने लगे। खलीफ़ा ने उनके शासन को मंजूरी दी और स्वयं मुस्लिम समुदाय का नाम के लिए नेता बन गया।

अरबों का विस्तार

मुहम्मद की मृत्यु के सौ वर्ष के भीतर ही, अरब सेनाओं ने बैज़ंटाइन और सासानिदों को पराजित कर सत्ता के चरम पर स्थित रोम से भी बड़ा साम्राज्य स्थापित किया। इसका विस्तार बिस्के की खाड़ी से लेकर सिंधु और चीन की सीमाओं तक, अरल सागर से निचली नील तक था और इसमें दक्षिण-पश्चिम यूरोप, उत्तरी अफ्रीका और पश्चिमी और मध्य एशिया शामिल थे।

जिस तेज़ी से अरबों का विस्तार हुआ वह उल्लेखनीय है। 633-637 ई. के बीच अरबों ने सीरिया और इराक़ को पराजित किया और 639-642 ई. के बीच मिस्र को भी पराजित कर दिया। 637 ई. में कदीसिया के प्रसिद्ध युद्ध के बाद शक्तिशाली फारसी साम्राज्य का भी जल्दी ही पतन हो गया, जबकि उत्तरी अफ्रीका के देशों पर कुछ ही दशकों के अंदर अधिकार कर लिया गया। मध्य एशियाई क्षेत्र जिनमें तुर्क, तुर्कमान, उज़बेक और मंगोल जैसे प्रसिद्ध योद्धा रहते थे, को भी जल्दी ही पराजित कर दिया गया। 712 ई. तक, अरब स्पेन तक पहुँच गए थे और जल्दी ही दक्षिण फ्रांस में प्रवेश करने लगे। इस्लाम की इस अभूतपूर्व सफलता का विवेचन करते हुए विद्वानों का कहना है कि ईसा पूर्व आठवीं शताब्दी तक स्पेन से लेकर भारत तक भूमध्य सागर और हिंद महासागर के बीच व्यापार को जोड़ते हुए अरबों ने केंद्रीय स्थिति प्राप्त कर ली थी। उत्तरी यूरेशिया के परे रेशम मार्ग के अलावा प्रमुख समुद्री और व्यापारिक मार्गों पर उनका नियंत्रण था और वे विश्व में आर्थिक रूप से प्रधान थे।

अल-हिंद के सीमांत राज्य

कदीसिया के युद्ध के फलस्वरूप अरब सेनाएँ अल-हिंद की सीमाओं तक पहुँच गईं। लेकिन हमलावरों के लिए भारत पर विजय प्राप्त करना आसान नहीं था। यद्यपि ईसाई एवं पारसीक देशों में वे आसानी से जीत गए, लेकिन भारत की उत्तर पश्चिम सीमा पर स्थित तीन छोटे हिंदू राज्यों, सिंध, काबुल और ज़ाबुल में वे लगभग चार शताब्दियों तक पराजित होते रहे।

ये हमले, जिनके फलस्वरूप 1206 ई. में दिल्ली सल्तनत की स्थापना हुई, चार चरणों में बाँटे जा सकते हैं, जिनमें से पहले दो तो कुछ हद तक एक समान हैं। पहले चरण में 636 से 712 ई. तक पश्चिमी समुद्र तट पर होने वाले अरब हमले शामिल हैं, जबकि दूसरे चरण में 643 से 870 ई. के बीच आधुनिक अफगानिस्तान के हिंदू राज्यों के विरुद्ध अरब और तुर्क हमले शामिल हैं।

पंजाब को जीतने के तुर्की प्रयासों के साथ तीसरा चरण महमूद ग़ज़नी की मृत्यु के साथ समाप्त होता है, जबकि चौथा चरण 1175 से 1206 ई. में मुहम्मद गौरी के हमलों से समाप्त होता है।

सिंध

पश्चिमी समुद्रतट पर अरबों का आगमन 636 ई. में ख़लीफ़ा उमर के शासनकाल में बंबई के निकट थाना को जीतने के उनके असफल प्रयास से हुआ। भरूच, देबल की खाड़ी (सिंध) और बलूचिस्तान (मकरान, सिंध) के ख़िलाफ़ भी उनके हमले विफल रहे, हालांकि अरबों ने ज़मीन और समुद्र से अपने हमले जारी रखे। उनके हमलों का केंद्र बोलन दर्रे के निकट का पहाड़ी क्षेत्र था जहाँ के निवासी बलिष्ठ जाट थे। लगभग सात दशकों की निरंतर विफलता के बाद अंततः 712 ई. में मुहम्मद बिन क़ासिम के अधीन अरब सिंध में अपना शासन स्थापित करने में सफल हुए। अगले ही वर्ष मुल्तान भी पराजित हुआ। मुल्तान के नए शासकों ने भारतीय शासकों के, इस क्षेत्र को वापस हासिल करने के प्रयासों को, भारत भर में पूजी जाने वाली प्रसिद्ध सूर्य की मूर्ति को नष्ट करने की धमकी देकर विफल कर दिया। दसवीं शताब्दी के अंत में जब इस्माइलियों ने मुल्तान पर कब्जा किया, यह मूर्ति खंडित कर दी गई।

एक साहसिक संघर्ष के बाद सिंध की हार के पीछे कई आंतरिक कारण हैं, विशेषकर घरेलू मतभेद और संसाधनों की कमी। अरब सेनाएँ राजा दाहिर की सेनाओं से संख्या और साज़-सामान में कहीं श्रेष्ठ थीं। लेकिन सिंध में भी साहस की कमी नहीं थी और देबल में 4000 आदमियों की सेना ने अपने से कहीं बड़ी अरब सेना से संघर्ष किया। इसके बावजूद सिंध की हार का कारण एक विश्वासघाती द्वारा दी गई जानकारी बनी। दाहिर की मृत्यु के बाद, उसकी विधवा और बाद में उसके बेटे ने भी संघर्ष जारी रखा।

काबुल, ज़ाबुल

जिस समय सिंध पर हमलों की शुरुआत हुई, उसी समय काबुल (कपिशा) और ज़ाबुल (जबाला), जिन पर तब तुर्कशाही और बाद में हिंदूशाही राजवंश का शासन था, में दूसरी सीमा खुली। सातवीं शताब्दी के मध्य तक, अरबों ने पूरे फ़ारस पर कब्ज़ा कर काबुल और ज़ाबुल राज्यों की पश्चिमी सीमाओं तक, जिन पर अब वे हमला कर रहे थे, अपने राज्य का विस्तार किया। मकरान, बलूचिस्तान और अधिकांश सिंध सहित काबुल और ज़ाबुल भारत

और फारस के बीच सीमावर्ती क्षेत्र थे, हालांकि विद्वानों का यह मत है कि यहाँ बौद्ध व हिंदू संस्कृतियाँ अधिक प्रबल थीं। अशोक के समय में ही इस क्षेत्र में अनेक स्तूप स्थापित किए गए थे। प्रमुख व्यापारिक मार्गों पर स्थित बामियान, काबुल और ज़ाबुल में बौद्ध धर्म की सातवीं शताब्दी तक उपस्थिति की पुष्टि चीनी तीर्थयात्री करते हैं। वहां देवी पंथों और शैव देव, जुन की पूजा के भी प्रमाण हैं। *चचनामा* के अनुसार कश्मीर के राजा ने ज़ाबुल पर अपनी प्रभुसत्ता कायम कर ली थी।

नवीं शताब्दी ई. तक काबुल घाटी और उत्तर पश्चिम सीमांत प्रांत पर जिस परिवार का राज्य था, अल-बेरूनी के अनुसार वे कनिष्क के वंशज थे जो तुर्कशाही कहे जाते थे। उन्हें हिंदूशाही वंश ने अपदस्थ किया, जिसका संस्थापक लाल्लिय शाही था। इस क्षेत्र में 220 वर्षों तक बिना किसी निष्कर्ष के अरबों ने संघर्ष किया, जिसे तुर्कों ने जारी रखा। आखिरकार सफारिद वंश के संस्थापक याकूब इब्न लायथ ने धोखे से जीत हासिल कर ली। लेकिन नवीं शताब्दी के अंत तक इस क्षेत्र में सफारिद अपने नियंत्रण को पुख्ता नहीं कर सके और 899-900 ई. में दो भारतीय राजकुमारों ने गज़नी में उनके शासक को बाहर निकाल दिया। याकूब द्वारा काबुल पर कब्ज़ा करने के बाद, हिंदूशाही शासकों ने अपनी राजधानी सिंधु नदी के दाएँ तट पर एक छोटे से गाँव उदभांडपुर में स्थानांतरित कर ली। अल-बेरूनी के अनुसार लाल्लिय के बाद समंद, कमला, भीम, जयपाल व अन्य उत्तराधिकारियों ने राजगद्दी संभाली।

एक तुर्की साहसिक व्यक्ति, अल्पतिगिन, जिसने स्वयं को ग़ज़नी में स्थापित किया, ने 963 ई. में भारतीय सीमाओं पर हमला बोलकर संघर्ष के तीसरे चरण की शुरुआत की। उसके एक उत्तराधिकारी, पिराई, ने पंजाब के हिंदूशाही राजा पर हमला किया और इस नीति को सुबुक्तगिन ने जारी रखा जो 997 ई. में ग़ज़नी का शासक बना।

हिंदूशाही शासक, जयपाल ने ग़ज़नी पर वापस हमला किया, लेकिन एक तूफ़ान के कारण उसे पीछे हटना पड़ा। तब जयपाल ने कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार राजा और उसके जागीरदारों, चाहमान और चंदेलों, के साथ एक राज्यसंघ का गठन किया। उसे सुबुक्तगिन ने पराजित किया जो सिंधु तक इस क्षेत्र का शासक बन गया। सुबुक्तगिन के बेटे, महमूद ग़ज़नी, ने आख़िरकार पंजाब पर नियंत्रण कर लिया। इस प्रकार सिंध में अरबों के पहले आगमन से लेकर लाहौर पर तुर्कों की विजय तक, हमलावरों को इस उपमहाद्वीप में पाँव जमाने में लगभग चार सौ वर्ष लग गए।

अंतिम चरण की शुरुआत मुहम्मद गौरी के भारत पर हमलों से हुई, जिसका अंत 1206 ई. में दिल्ली सल्तनत की स्थापना से हुआ।

ग़ज़नवियों का उदय

ग़जनी वंश का संस्थापक, सुबुक्तगिन, एक तुर्की दास कमांडर था, जिसने हिंदूशाही वंश की सीमा चौकियों के विरुद्ध अनेक अभियानों का नेतृत्व किया। उसके बेटे महमूद ग़ज़नी ने सत्रह बार भारत पर हमला किया। इस्लाम के लिए कार्य करने के लिए अब्बासी खलीफ़ा ने उसे यामीन अल-दावला (राज्य का दायाँ हाथ) की उपाधि से सम्मानित किया। अतः उसका वंश यामिनी भी कहलाया।

महमूद ग़ज़नी

महमूद ग़ज़नी का मुकाबला हिंदूशाही शासक, जयपाल से पहली बार 1001 ई. में हुआ। इसके बाद 1008-09 ई. में पेशावर के पास वैहिंद में निर्णायक

युद्ध हुआ। अनेक राजपूत शासकों ने जयपाल के बेटे, आनंदपाल के नेतृत्व में हिंदूशाहियों की मदद की।

तुर्कों के साथ चले लंबे संघर्ष में निर्भीक हिंदूशाहियों ने सैन्य स्थिति की आवश्यकतानुसार अपनी राजधानी (उदभांडपुर से नंदनाह) बहुधा स्थानांतरित की। उनकी चार पीढ़ियाँ (जयपाल, आनंदपाल, त्रिलोचनपाल और भीमपाल) संघर्षरत रहीं। महान अल-बेरूनी ने उन्हें यह कहते हुए श्रद्धांजलि दी, "हिंदू शाही वंश का अब विनाश हो चुका है और अब इसके कोई भी अवशेष बाकी नहीं हैं। अपने संपूर्ण वैभव में भी उनमें अच्छा और सही करने की इच्छा सर्वोपरि थी और उनकी भावनाएँ और आचरण कुलीन था।"

पंजाब अब गज़नवियों के नियंत्रण में आ गया। महमूद की सेना के तीरंदाज़ सवारों ने ही संभवत: स्थिति को उसके पक्ष में किया। आने वाले वर्षों में महमूद ने नगरकोट, थानेसर, मथुरा और कन्नौज पर हमला किया। उसने हर जगह मंदिरों को नष्ट कर, शहरों को लूटा और असीमित धन-संपत्ति जमा की। 1008 ई. में नगरकोट के विरुद्ध उसके हमले को मूर्तिवाद के विरुद्ध उसकी पहली महत्त्वपूर्ण जीत बताया जाता है। इसके बाद बारी आई *तारीख़-ए-फ़रिश्ता* में एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक केंद्र के रूप में उल्लिखित, थानेसर की। इसकी मुख्य प्रतिमा कांस्य निर्मित लगभग आदमकद *चक्रस्वामिन* की थी, जिसे ग़ज़नी भेजकर रंगभूमि में रखवाया गया।

मथुरा शहर में अनेक सुंदर और भव्य मंदिर थे। महमूद के दरबारी इतिहासकार, उत्बी ने महमूद द्वारा वहाँ देखे गए अद्‌भुत भवनों का सजीव वर्णन किया है, जिसमें कुछ वर्णनों में एक हज़ार मंदिरों का ज़िक्र किया गया है। मुख्य मंदिर के बारे में लिखते हुए उत्बी कहता है कि उसकी सुंदरता और सजावट का वर्णन करने में "सभी लेखकों की कलम और चित्रकारों की कूची बेकार हो जाएगी....।" उसका अनुमान था कि मंदिर के निर्माण में दस लाख दीनार और कम से कम दो सौ वर्ष लगे होंगे। उसकी पाँच मुख्य मूर्तियाँ, प्रत्येक पाँच मीटर लंबी, लाल सोने से बनी थीं। एक की तो माणिक्य की लाल आँखें ही केवल पचास हज़ार दीनार की थीं।

महमूद का अगला पड़ाव लंबे समय तक उत्तर भारत की पवित्र राजधानी माना जाने वाला कन्नौज था। उसकी सेना के एकाएक हमला बोल देने से, प्रतिहार राजा, राज्यपाल आश्चर्यचकित रह गया और उनका मुकाबला नहीं कर पाया। अरक्षित नागरिकों ने मंदिरों में शरण ली। एक ही दिन में नगर पर कब्ज़ा कर लिया गया, उसके मंदिरों को नष्ट कर उनकी संपत्ति लूट ली गई और भाग रहे नागरिकों को बड़ी संख्या में मौत के घाट उतार दिया गया।

1025 में महमूद अपने सबसे यादगार भारतीय अभियान, सौराष्ट्र के सोमनाथ मंदिर पर हमले के लिए निकला। सोमनाथ भारत के सबसे प्रमुख तीर्थों में था और चंद्र ग्रहण पर यहाँ दो से तीन लाख तीर्थयात्री दर्शन के लिए आते थे। हज़ारों गाँवों का राजस्व मंदिर के रखरखाव के लिए समर्पित किया जाता था।

एक कड़े संघर्ष में, जिसमें पचास हज़ार लोगों ने सोमनाथ की रक्षा करते हुए अपनी जान गँवाई, महमूद ने नगर पर कब्ज़ा कर लिया। अल-बेरूनी के अनुसार "राजकुमार महमूद ने मूर्ति नष्ट कर दी। उसने मूर्ति के ऊपरी हिस्से को तोड़ने और बचे हुए भाग को सोने, आभूषण और कढ़े हुए वस्त्रों समेत अपने निवास ग़ज़नी ले जाने का आदेश दिया।

इसका कुछ हिस्सा चक्रस्वामिन की कांस्य प्रतिमा जिसे थानेसर से लाया गया था, के साथ रंगभूमि में फेंक दिया गया। सोमनाथ की मूर्ति का दूसरा हिस्सा ग़ज़नी की मस्जिद के दरवाज़े पर पड़ा है।" कहा जाता है कि हमलावर अपने साथ 6.5 टन सोना ले गया।

सोमनाथ इतना प्रसिद्ध था कि सामयिक और बाद के लेखकों ने उसके विनाश का मूर्ति पूजा पर इस्लाम की सबसे बड़ी जीत के रूप में वर्णन किया। इससे महमूद यकायक ही नायक बन गया। इसके पश्चात अनेक शताब्दियों तक हिंदुओं ने बार-बार इस मंदिर के पुनर्निर्माण का प्रयास किया, जबकि एक के बाद एक मूर्तिभंजक इसे नष्ट करते जाते।

एक पखवाड़े के बाद जब महमूद को पता चला कि गुजरात के राजा, भीम प्रथम ने उसका सामना करने की पूरी तैयारी कर रखी है तो उसने सौराष्ट्र छोड़ दिया। वापसी में उसके सैनिकों को पानी की कमी और सिंध के जाटों के दबाव के कारण अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जाटों के साथ अपना हिसाब बराबर करने के लिए महमूद आख़िरी बार भारत लौटा। 1030 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।

महमूद द्वारा किए गए विनाश पर टिप्पणी करते हुए अल-बेरूनी कहते हैं कि हिंदू "धूल के कण बनकर सभी दिशाओं में बिखर गए... यही कारण है कि हिंदू वैज्ञानिक देश के उन राज्यों से दूर चले गए जिन पर हमने विजय प्राप्त की और ऐसे स्थानों पर चले गए जहाँ अभी हमारा हाथ नहीं पहुँच सकता, जैसे- कश्मीर, बनारस व अन्य स्थान। और वहाँ उनके और सभी विदेशियों के बीच शत्रुता राजनीतिक और धार्मिक कारणों की वजह से और बढ़ती गई।"

1030-31 में महमूद के भतीजे, सैयद सालार मसूद ने अवध पर हमले के साथ एक नई शुरुआत की जो कि विफल रहा। 1033 में वह बहराइच पहुँचा, जहाँ पासी राजा, सुहेल देव ने उसका कड़ा मुकाबला किया। सालार मसूद अपने लगभग सभी अनुयायियों सहित युद्ध में मारा गया। उसे ग़ाज़ी की उपाधि दी गई और उसका मक़बरा एक प्रमुख तीर्थ बन गया।

महमूद की मृत्यु के बाद ग़ज़नी साम्राज्य ग़ज़नी और पंजाब तक सीमित होकर रह गया। हालांकि उसके उत्तराधिकारियों ने भारत पर अपना आक्रमण जारी रखा, लेकिन अब वे भारत के लिए कुछ ख़ास ख़तरा नहीं थे। जल्दी ही उनके जागीरदारों, गौरियों, जो गौर से आए थे, ने उन्हें पराजित कर दिया।

गौरी साम्राज्य

मुहम्मद गौरी

महमूद गज़नी की तरह, मुहम्मद गौरी को अनेक राजपूत शक्तियों का सामना करना पड़ा, जो भारत में उसका आगे बढ़ना रोकने के लिए कृतसंकल्प थे।

मुहम्मद गौरी का पहला हमला मुल्तान के विरुद्ध था, जिस पर तब इस्माइलियों का शासन था, जिन्हें मुस्लिम समाज में विधर्मी समझा जाता था। 1175 ई. में मुल्तान और उच्छ पर कब्ज़ा कर लिया गया और 1182 में सिंध के निचले हिस्से पर कब्ज़ा कर पूरे सिंध को अधीनस्थ कर लिया गया। लेकिन गुजरात पर मुहम्मद के हमले का अंत 1178-79 में माउंट आबू के निकट चालुक्य सेना के हाथों, उसकी हार से हुआ।

अब मुहम्मद ने भारत को सिंध और मुल्तान के रास्ते न जीतकर पंजाब के रास्ते जीतने की योजना बनाई। आक्रमणों की कड़ी से पंजाब में आख़िरकार

ग़ज़नी शासन का अंत हुआ और मुहम्मद गौरी का सीधा मुकाबला वीर पृथ्वीराज चौहान से हुआ, जो दिल्ली और अजमेर के बीच के क्षेत्र में शासन करता था। तराईन में पृथ्वीराज और उसके सहयोगी, दिल्ली के शासक के हाथों मुहम्मद गौरी की करारी हार हुई और वह बड़ी मुश्किल से जान बचाकर भागा। गंभीर रूप से घायल मुहम्मद गौरी को उसका एक ख़िलजी अफसर युद्धक्षेत्र से बचाकर लाया। वापस लौटकर उसने अपनी हार का बदला लेने के लिए कड़ी तैयारियाँ शुरू कर दीं। 1192 में उसने उसी तराईन क्षेत्र में एक विशाल सेना के साथ अपने दुश्मन पृथ्वीराज चौहान को हराया और पृथ्वीराज को बंदी भी बना लिया। गौरी की सेनाओं ने हांसी, कुहरम और सुरसुति पर कब्ज़ा कर लिया, जबकि अजमेर पृथ्वीराज के कब्ज़े में ही रहा। षड्यंत्र के आरोप में उसे मृत्युदंड दिए जाने के कुछ ही समय बाद अजमेर का सिंहासन उसके बेटे ने संभाला। विग्रहराज चतुर्थ वीसलदेव द्वारा निर्मित अजमेर के प्रसिद्ध विद्यालय को हमलावर तुर्कों ने मस्जिद में परिवर्तित कर दिया, जिसे अढ़ाई दिन का झोंपड़ा के नाम से जाना जाता है।

तोमरों को दिल्ली में गौरियों के अधीन राजाओं के रूप में पुनर्स्थापित किया गया। लेकिन जल्दी ही उन्हें बेदख़ल कर दिल्ली को गंगा घाटी में तुर्कों के आगे बढ़ने का आधार बनाया गया। अजमेर में भी एक तुर्की जनरल को स्थापित किया गया। पृथ्वीराज का बेटा अब रणथंभौर आ गया, जहाँ उसने एक शक्तिशाली चौहान राज्य की स्थापना की।

1194 में मुहम्मद गौरी ने कन्नौज के गहड़वाल राजा जयचंद्र पर आक्रमण किया। जयचंद्र की प्रतिरक्षा ने हमलावर सेना को आश्चर्य में डाल दिया, लेकिन एक तीर लगने से उसकी मौत हो गई। चंदावार की विजय के तुरंत बाद, मुहम्मद गौरी ने गहड़वाल ख़ज़ाने को लूटा, बनारस के पवित्र शहर पर कब्ज़ा कर वहाँ के मंदिरों को नष्ट किया। इसके बाद उसने चंदेलों के थंगीर के गढ़ पर कब्ज़ा किया और ग्वालियर के राजा से खिराज ली। सन् 1203 के बाद अपने भाई की मृत्यु के पश्चात् मुहम्मद गौरी ने भारत को अपने गुलाम सेनापतियों के ज़िम्मे सौंप कर भारत छोड़ दिया।

उसके प्रमुख गुलाम कुतबुद्दीन ऐबक ने अनेक विजय प्राप्त कीं। पृथ्वीराज के भाई, हरिराज द्वारा चौहानों के पुनर्जागरण के प्रयास को विफल करने के अलावा ऐबक ने दिल्ली पर कब्ज़ा किया और माउंट आबू में चालुक्यों को पराजित कर दो दशक पूर्व मुहम्मद गौरी के अपमान का बदला लिया। तुर्कों की विजय के बावजूद, चालुक्यों ने 1240 ई. तक अपने राज्य पर कब्ज़ा रखा। ऐबक ने गहड़वालों की क्षीण होती शक्ति का लाभ उठाकर मेरठ, अलीगढ़, बदायूँ और कन्नौज पर कब्ज़ा कर लिया। ग्वालियर ने आत्मसमर्पण कर दिया और राज्य के मुख्यमंत्री से कड़े मुक़ाबले के बाद उसने चंदेलों की राजधानी, कलिंजर पर कब्ज़ा कर लिया।

इसी बीच एक और गुलाम बख्तियार खिलजी ने बिहार प्रांत पर हमले शुरू कर दिए। ऐसे ही एक अभियान में वह बौद्ध भिक्षुओं के एक विश्वविद्यालय नगर, उद्दंडपुर विहार पहुँच गया। उसे नालंदा व विक्रमशिला विश्वविद्यालयों की भाँति ही नष्ट कर दिया गया। इससे उत्साहित होकर उसने बंगाल पर हमले की योजना बनाई, जिस पर तब वृद्ध लक्ष्मणसेन का शासन था। घोड़ों के व्यापारी के वेश में उसने अनभिज्ञ राजा पर नदिया में अचानक हमला बोल दिया। बख्तियार खिलजी ने लखनौती में शासन की बागडोर संभाली, जबकि लक्ष्मणसेन ने पूर्वी बंगाल में अपना शासन जारी रखा।

1206 में मुहम्मद गौरी की मृत्यु के समय उसका कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण उसके सगे-संबंधी और गुलाम उसके विशाल राज्य को लेकर लड़ने लगे। उसके वरिष्ठ गुलाम ताजुद्दीन याल्दुज़ ने ग़ज़नी पर कब्ज़ा किया, जबकि ऐबक ने उसके भारतीय क्षेत्रों का शासन संभाला।

तुर्कों की विजय के कारण

कुछ आधुनिक इतिहासकारों का मत है कि तुर्कों की विजय का मुख्य कारण हिंदू समाज की अंदरूनी कमज़ोरी थी। वे कहते हैं कि इसमें वर्ण व्यवस्था की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही, जिसके अनुसार केवल क्षत्रिय ही युद्ध लड़ सकते थे। इससे हिंदुओं की सैन्य शक्ति क्षीण हो गई और वे कभी एकजुट भी नहीं हो सके। उनके अनुसार इस्लाम के सामाजिक समानता के संदेश ने बहुत से असंतुष्ट हिंदुओं को प्रभावित किया और वे विजेताओं के साथ मिल गए। लेकिन यदि शक्तिशाली फ़ारस और बैज़ंटाइन साम्राज्यों के तीव्र विघटन के कारणों का विश्लेषण करें तो यह तर्कसंगत नहीं लगता, क्योंकि इन राज्यों में ऐसी कोई वर्ण व्यवस्था नहीं थी। मध्यकालीन स्रोत भी सामयिक वर्ण व्यवस्था को कारण नहीं मानते।

यह तर्क इस बात पर भी ध्यान नहीं देता कि हिंदू सेनाओं में केवल क्षत्रिय ही नहीं होते थे। जब फ़सल की कटाई का समय नहीं होता था, उस समय किसान अक्सर सैनिकों के रूप में कार्य करते थे। यह औपनिवेशिक काल तक चला जब अंग्रेज़ों ने पहली बार हिंदू किसानों के हाथ से हथियार छीन लिए। क्षत्रिय वर्ण हमेशा से खुली श्रेणी रहा था; कोई भी नेता जिसके पास राजनीतिक शक्ति होती, वह क्षत्रिय कहला सकता था। भारतीय इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण हैं, जिसमें कृषि और जनजातीय समूहों ने क्षत्रिय बनने का यह मार्ग अपनाया। जहाँ तक राजपूतों का सवाल था, वे तो वैसे भी खुली व्यवस्था के आदी थे और इसलिए ब्रिटिश काल तक वे पासियों जैसे हथियारबंद समूहों में विवाह करते थे ताकि उनकी सैन्य शक्ति का विस्तार हो।

दो अन्य बातें ध्यान देने योग्य हैं। पहली यह कि बारहवीं शताब्दी में इस्लाम में धर्म परिवर्तन करने वालों की विशाल संख्या के बारे में कोई प्रमाण नहीं है। दूसरा यह कि इस्लाम द्वारा तत्कालीन निचली जाति के हिंदू धर्मांतरग्राहियों के विरुद्ध भेदभाव को दूर करने के भी कोई प्रमाण नहीं हैं। निश्चित रूप से वे धर्मांतरग्राहियों को सामाजिक दृष्टि से बराबर नहीं मानते थे।

इस्लाम के प्रारंभिक काल के हमलावरों ने एशिया और अफ्रीका के जिन क्षेत्रों पर कब्ज़ा किया, उनमें भी समानता पर बल नहीं दिया। वास्तव में उन्होंने जातिगत भेदभाव के एक अति परिष्कृत तंत्र का विकास किया, जो कि गुलाम व्यापार से स्पष्ट है। शुरू में इसमें श्वेत और श्याम, दोनों ही गुलाम शमिल थे लेकिन बाद में इसमें केवल श्याम गुलाम ही शमिल थे। श्वेत गुलाम, जिन्हें मामलुक कहा जाता था, को बेहतर ज़िम्मेदारियाँ सौंपी जाती थीं। वे राज्यपाल, सेनापति या शासक तक बन सकते थे। लेकिन श्याम गुलामों को केवल मेहनत के कामों के लिए रखा जाता था।

आधुनिक शोध के अनुसार तुर्कों की जीत का कारण संभवतः उच्च्व सैन्य तकनीक थी, गौर में धातुओं के विशाल भंडार थे और वह शस्त्र और कवच के निर्माण के लिए प्रसिद्ध था और इससे तुर्कों को हथियारों की लगातार आपूर्ति होती रही। समसामयिक इतिहासकारों ने तुर्की सेनाओं द्वारा *नवाक* के प्रयोग और उसकी कवच भेदने की शक्ति

का वर्णन किया है। अश्वारोही सेना के प्रभावी इस्तेमाल और अचानक हमलों ने संभवतः तुर्कों की विजय में योगदान दिया। तराईन में गौरी की सेना में मुख्यतः अश्वारोही थे, जिनकी संख्या 1,20,000 थी। बेहतर सैन्य तकनीकों ने भी तुर्कों की जीत में भूमिका निभाई होगी। वहीं भारतीय राजकुमार अभी भी जमी हुई लड़ाई और चार हिस्सों वाली सेना का प्रयोग कर रहे थे और हमलावरों की उग्रता और दृढ़निश्चय के आगे उनका कोई मुकाबला नहीं था।

गौरियों ने खुरासान घुज़ और खलाज जिन्होंने तराईन के युद्ध में बड़ी संख्या में भाग लिया, से सैनिकों को भर्ती कर अपनी शक्ति बढ़ाई। अफ़गानों द्वारा युद्ध में भाग लेने के भी उल्लेख हैं। गौरियों ने तुर्क गुलामों का एक बड़ा दल एकत्रित किया।

अभ्यास

1. अरबों के देश और वहाँ के लोगों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
2. महमूद ग़ज़नी के भारत में हमलों का संक्षेप में वर्णन करिए।
3. भारत में तुर्कों की सफलता के प्रमुख कारणों का उल्लेख करिए।
4. संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :
   (क) इस्लाम के पाँच स्तंभ
   (ख) सिंध में अरब
   (ग) काबुल और ज़ाबुल
   (घ) सोमनाथ का मंदिर

अध्याय 4

भारतीय राज्य

भारतीय राज्य
भारतीय राज्य
भारतीय राज्य
भारतीय राज्य
भारतीय राज्य
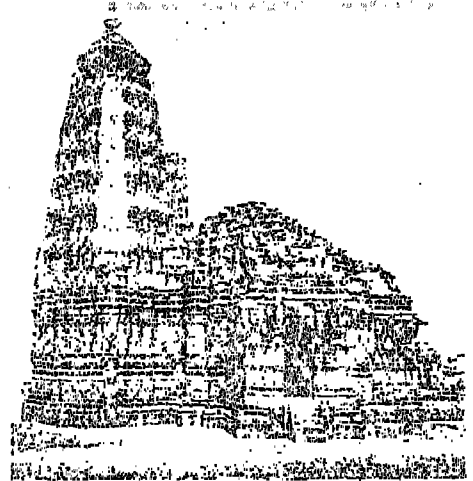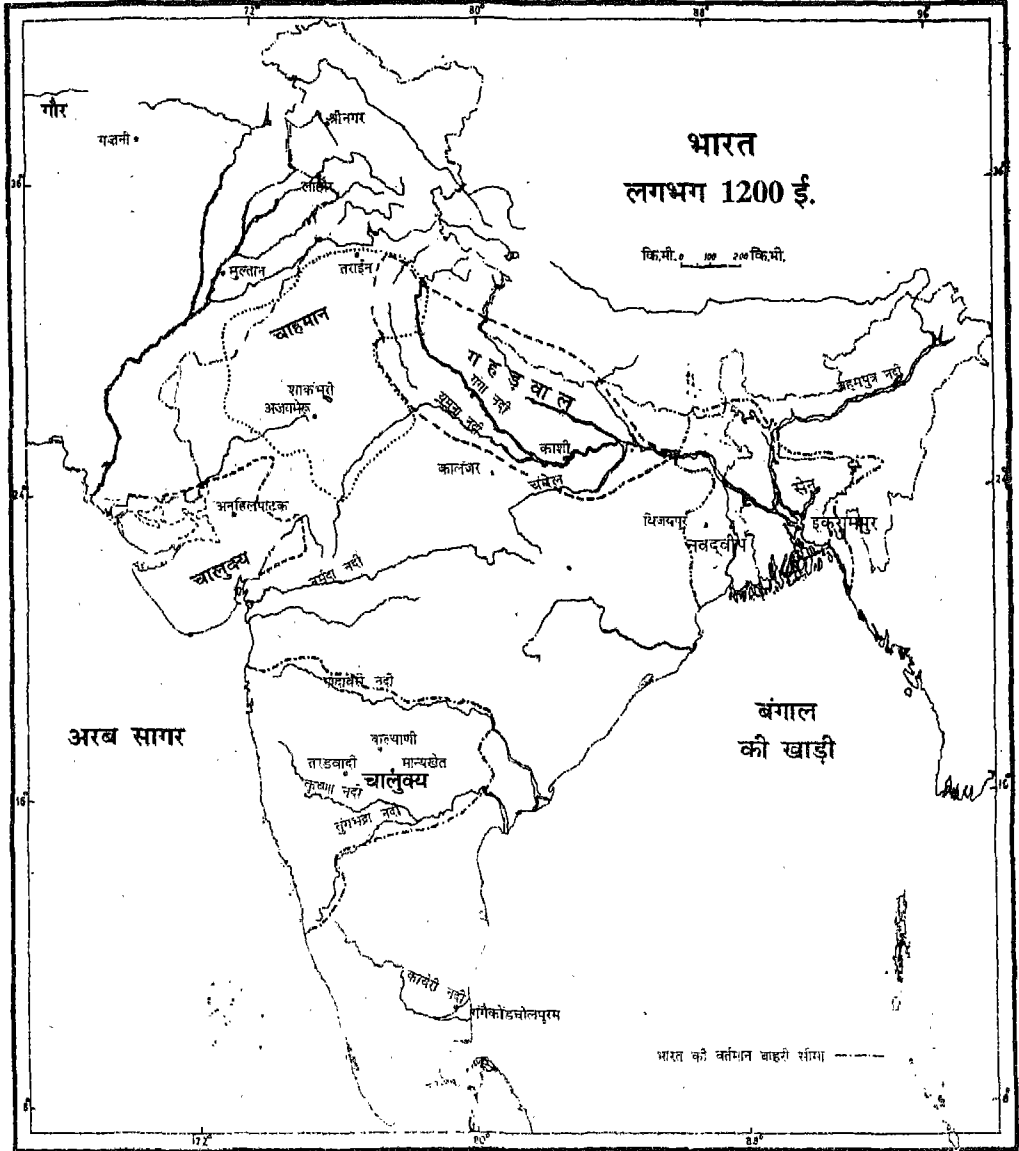
भारतीय राज्य
भारतीय राज्य
भारतीय राज्य

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र में भारत का जनप्रदेश उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

यह कहना पूरी तरह से सही नहीं होगा कि उत्तर भारत में तुर्कों की जीत से उन्होंने हिंदुस्तान पर विजय पा ली। इसके विपरीत भारत पर विजय एक लंबा अभियान साबित हुआ और एक शताब्दी बाद तक भी तुर्क केवल दिल्ली व उसके आसपास के 250 मील क्षेत्र पर ही कब्ज़ा जमा सके।

उत्तर भारत के कई हिस्से और संपूर्ण दक्षिण तुर्कों की पहुँच से बाहर रहा। हालांकि चौहान, गहड़वाल और सेन जैसी उत्तर भारत की कुछ शक्तियाँ बारहवीं शताब्दी के अंत तक पराजित हो गई लेकिन चंदेलों के अधीन, गुजरात, मालवा और जेजाकभुक्ति अगले सौ वर्षों तक तुर्कों का मुकाबला करते रहे। उड़ीसा पर कब्ज़ा करने में तुर्क पूरी तरह निष्फल रहे जबकि आसाम पर तो वे कभी कब्ज़ा नहीं जमा सके। सल्तनत काल के दौरान राजपूताना ने लगातार कड़ा संघर्ष किया और पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य में उन्होंने महाराणा कुंभा के अधीन संघर्ष के एक शानदार अध्याय की शुरुआत की।

लगभग चौदहवीं शताब्दी की शुरुआत तक दक्षिण भारत हमलों से मुक्त रहा। अनेक देशी राजवंश समृद्ध राज्यों के शासक थे, जिनमें सबसे प्रमुख चोल थे। जब महमूद गज़नी उत्तर भारत पर लगातार हमले कर रहा था, राजराज चोल एक ऐसे शक्तिशाली राज्य की स्थापना कर रहा था, जिसमें उसकी मृत्यु के समय तुंगभद्रा तक संपूर्ण दक्षिण, मालदीव, श्रीलंका का एक हिस्सा और एक सामंती मित्र के रूप में आंध्र देश शामिल था। दिल्ली सल्तनत की स्थापना की पूर्व संध्या पर भारत उत्साही और महत्त्वाकांक्षी देशी राज्यों और स्वयं को स्थापित करने के लिए संघर्षरत इस्लामिक शक्तियों का सम्मिश्रण था।

उत्तर भारत के राज्य

कन्नौज

सातवीं शताब्दी ई. में हर्ष के अंतर्गत उत्तर भारत में राजनीतिक शक्ति का केंद्र मगध के स्थान पर कन्नौज हो गया जिसने मुस्लिम शासन के आगमन तक अपना सामरिक व प्रतीकात्मक महत्त्व बनाए रखा। हर्ष की मृत्यु के सौ वर्ष बाद, कन्नौज महान यशोवर्मन की राजधानी बना, जिसकी शक्ति को कश्मीर के राजा ललितादित्य ने कमज़ोर किया।

इसके बाद कन्नौज पर कब्ज़ा करने के लिए गुर्जर प्रतिहार, पाल और राष्ट्रकूटों के बीच चले एक शताब्दी से अधिक लंबे त्रिपक्षीय संघर्ष का अंत गुर्जर प्रतिहारों के पक्ष में हुआ जिन्होंने लगभग दो शताब्दियों तक राज्य पर अपना नियंत्रण बनाए रखा। इस राजवंश का सबसे महान राजा भोज था, जिसे मिहिर भोज भी कहा जाता है ताकि उसे इसी नाम के परमार शासक से अलग किया जा सके।

कन्नौज पर शासन करने वाला इस राजवंश का अंतिम राजा, राज्यपाल था। वह चंदेल राजा विद्याधर के हाथों मारा गया क्योंकि वह महमूद गज़नी के नगर पर हमले को रोक पाने में असमर्थ रहा और इस प्रकार अपने पूर्वजों के मार्ग से

विमुख हो गया, लेकिन राज्यपाल के उत्तराधिकारी कन्नौज से लगभग तीस मील उत्तर में स्थित बारी से शासन करते रहे।

ग्यारहवीं शताब्दी का एक शिलालेख राष्ट्रकूट वंश को कन्नौज से संबद्ध करता है । महमूद गज़नी के हमले के बाद हुई गड़बड़ में राष्ट्रकूटों ने नगर पर कब्ज़ा कर लिया। अंतत: यह वंश वोदमायुत या आधुनिक बदायूँ में बस गया, जो आगे जाकर महान बना।

ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, गहड़वालों ने कन्नौज में सत्ता संभाली। कुछ विद्वानों का मत है कि गहड़वाल राष्ट्रकूटों अथवा राठौरों की ही एक शाखा थे। इस राजवंश के संस्थापक चंद्रदेव का वर्णन उसके शिलालेखों में कुशिका (कन्नौज), काशी, उत्तर कोसल (अयोध्या) और इंद्रस्थान (दिल्ली) जैसे पवित्र स्थानों के रक्षक के रूप में किया जाता है, इससे यह भी पता चलता है कि उसका शासन लगभग संपूर्ण वर्तमान उत्तर प्रदेश पर था। गहड़वालों की दूसरी राजधानी काशी थी।

इस वंश का अगला महत्त्वपूर्ण राजा गोविंदचंद्र था। उसने बंगाल में पालों की क्षीण होती हुई शक्ति को देखते हुए राज्य का विस्तार किया। उसने और उसके बेटे, विजयचंद्र दोनों ने तुर्कों के अनेक आक्रमणों को विफल कर दिया। विधि पर सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तकों में से एक, *कृत्य कल्पतरु* गोविंदचंद्र के शासन में ही लिखी गई। उसके चोल शासकों से अत्यंत घनिष्ठ संबंध थे जो कि चोल राजधानी में पत्थर पर खुदे एक अपूर्ण अभिलेख में गहड़वाल राजाओं की वंशावली से स्पष्ट है ।

इस वंश के अंतिम राजा जयचंद्र ने मुहम्मद गौरी से लड़ते हुए अपनी जान गँवाई लेकिन तुर्क इस क्षेत्र पर अधिक समय तक अधिकार नहीं रख सके क्योंकि जयचंद्र के बेटे हरीशचंद्र का 1197 में कन्नौज, जौनपुर और मिर्ज़ापुर ज़िलों पर अधिकार था। मुस्लिम इतिहासकारों के वर्णन इस मत की पुष्टि करते हैं कि इल्तुतमिश के शासन (1210-1236) तक कन्नौज अविजित रहा और उसे वाराणसी पर भी पुन: कब्ज़ा करना पड़ा।

जेजाकभुक्ति अथवा बुंदेलखंड के चंदेल शासक

चंदेलों की गिनती छत्तीस राजपूत वंशों में होती थी और वे स्वयं को चंद्रत्रेय ऋषि का वंशज मानते थे। गुर्जर प्रतिहारों के सामंतों के रूप में शुरुआत कर वे यशोवर्मन, जिसने उत्तर भारत में अनेक विजय हासिल कीं, के अधीन एक स्वाधीन शक्ति बन गए। उसके बेटे, धंग ने सुबुक्तगिन प्रतिहारों को पराजित करते हुए अपने राज्य का विस्तार किया और पूर्व में पाल क्षेत्रों पर भी हमला किया। धंग ने सुबुक्तगिन के विरुद्ध शाही शासक, जयपाल की सहायता की। वह सौ से अधिक वर्षों तक जीवित रहा और इलाहाबाद में शिव की आराधना करते हुए उसने प्राण त्यागे।

उसके बेटे गंड ने जयपाल के बेटे आनंदपाल की महमूद गज़नी के विरुद्ध सहायता की। गंड का बेटा विद्याधर महानतम चंदेल राजाओं में था। उसने कन्नौज के अंतिम प्रतिहार शासक को इसलिए मार डाला क्योंकि उसने बिना संघर्ष किए ही महमूद गज़नी के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया। मुस्लिम इतिहासकार विद्याधर का वर्णन भारत के सबसे शक्तिशाली राजा के रूप में करते हैं जिसके पास एक अत्यंत विशाल सेना थी।

परमार्दि (1165-1203) के शासन में चंदेल राज्य की चौहान शासक, पृथ्वीराज तृतीय के हाथों हार हुई जिसने राजधानी महोबा पर धावा बोला। इससे ज़्यादा गंभीर कुतबुद्दीन ऐबक का कालिंजर

पर हमला था। कुछ प्रतिरोध के बाद परमार्दि कर देने के लिए राज़ी हो गया। उसके मंत्री अजयदेव ने जो इस समझौते के विरुद्ध था, परमार्दि को मार डाला और ऐबक के विरुद्ध संघर्ष की पुनः शुरुआत की, लेकिन किले में पानी की कमी की वजह से उसे भी कड़े संघर्ष के बाद आत्मसमर्पण करना पड़ा।

लेकिन तुर्क भी कालिंजर पर ज़्यादा समय तक अधिकार नहीं रख पाए। सन 1205 के पहले परमार्दि के बेटे ने मुस्लिम सेनाओं को पराजित कर कालिंजर को फिर से हासिल कर लिया।

सन 1315 में बुंदेलखंड में इस वंश के एक राजा के शासन के उल्लेख हैं। कालिंजर का किला 1545 तक स्थानीय शासकों के पास रहा जब किले पर कब्ज़ा करते हुए शेर शाह अनजाने में मारा गया और अफ़गान किले में घुस आए।

चंदेल राजा महान निर्माणकर्ता थे वे मध्य प्रदेश में अपनी राजधानी खर्जुरवाहक (खजुराहो) में बनाए गए भव्य मंदिरों के लिए जाने जाते हैं।
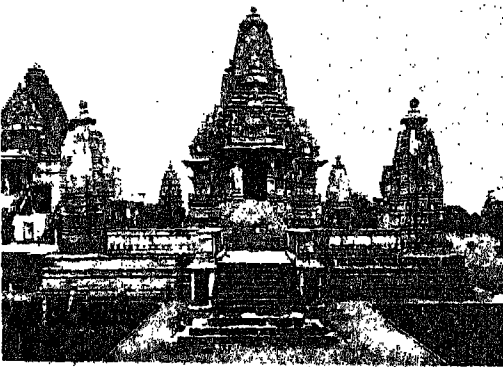
लक्ष्मण मंदिर, खजुराहो, मध्य प्रदेश, चंदेल काल
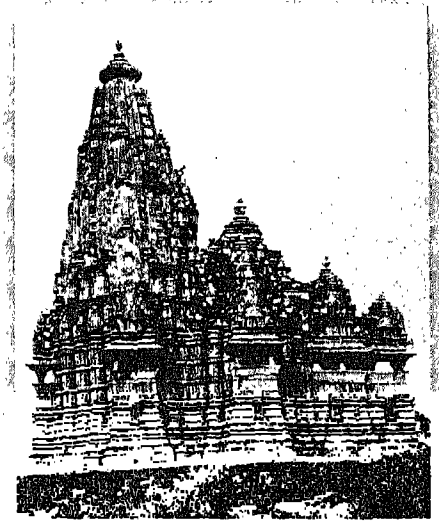
खजुराहो, कंदरिया महादेव मंदिर 1025–1035 ई., चंदेल काल

मालवा के परमार

प्राप्त प्रमाणों के अनुसार, परमार मूलतः प्रतिहारों व राष्ट्रकूटों के जागीरदार थे और दसवीं शताब्दी के द्वितीयार्थ में एक स्वतंत्र शक्ति के रूप में उभरे। उज्जैन से आरंभ कर बाद में उन्होंने अपनी राजधानी का स्थानांतरण धार कर दिया। पहला प्रमुख परमार शासक वाक्पति मुंज था जिसने दसवीं शताब्दी के अंत में शासन संभाला और उसकी गिनती अपने काल के महानतम सेनापतियों में होती है। उसने कला और साहित्य को अत्यधिक प्रश्रय दिया और धनंजय, हलायुध, धनिक और पद्मगुप्त जैसे अनेक कवियों ने उसके दरबार की शोभा बढ़ाई। उसने अनेक तालाब खुदवाए व भव्य मंदिरों का निर्माण कराया।

भोज, जिसने ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभ में सिंहासन संभाला, इस वंश का प्रमुखतम शासक था।

मध्यकालीन भारत के महानतम शासकों में से एक उसमें सैन्य व साहित्यिक प्रतिभा का अद्भुत समन्वय था। उसके पचास वर्षों से अधिक चले शासन में परमार शक्ति अपने चरम पर थी।

सन् 1008 में उसने महमूद गज़नी के विरुद्ध आनंदपाल की सहायता के लिए एक सेना भेजी। सन् 1019 के आसपास उसने आनंदपाल के बेटे, त्रिलोचनपाल को उस समय आश्रय दिया, जब वह महमूद गज़नी के कारण दबाव में था। सन् 1043 में वह स्थानीय राजाओं के एक राज्यसंघ में शामिल हो गया जिसने तुर्कों से हाँसी, थानेसर, नगरकोट व अन्य क्षेत्र वापिस हासिल किए और लाहौर के किले को भी घेर लिया लेकिन अपने समय के अन्य राजाओं की भांति भोज लगातार अपने पड़ोसी राजाओं से लड़ता रहा। शुरुआत में सफलता हासिल करने के बावजूद, भाग्य ने अंतत: उसका साथ नहीं दिया और उसके समृद्ध साम्राज्य पर चालुक्य व कल्चुरि सेनाओं ने हमला बोल दिया।

भोज एक विख्यात विद्वान था जिसने चिकित्सा, खगोल विज्ञान, धर्म और वास्तुशास्त्र जैसे भिन्न-भिन्न विषयों पर लगभग दो दर्जन किताबें लिखीं। उसने सरस्वती मंदिर के अहाते में एक संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना की और धनपाल और उव्रत जैसे विद्वानों को अपने दरबार में आमंत्रित किया। उसने भोपाल के निकट भोजपुर नगर की स्थापना की और शिव के सम्मान में अनेक मंदिरों का निर्माण किया।
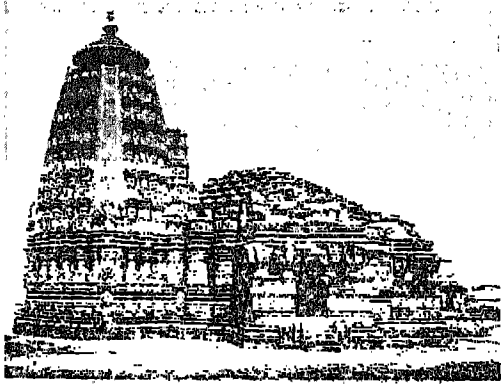
उदयेश्वर मंदिर, 1070-1080 ई., परमार काल

भोज की मृत्यु के बाद जहाँ चालुक्यों के निरंतर हमले परमार राज्य को कमजोर बनाते रहे, वहीं दिल्ली के सुल्तानों ने भी राज्य के विरुद्ध अपने हमले जारी रखे। अंतिम परमार शासक को अलाउद्दीन ख़िलजी की सेनाओं ने पराजित किया।

साकंभरी के चाहमान या चौहान

चौहान एक प्राचीन और प्रतिष्ठित शासक थे, जिन्होंने गुर्जर प्रतिहारों के जागीरदारों के रूप में अपनी राजनीतिक शुरुआत की और सातवीं व आठवीं शताब्दी में गुजरात व राजस्थान के हिस्सों पर शासन किया। चौहान परिवार की अनेक शाखाएँ थीं, जिसमें सबसे प्रसिद्ध थे साकंभरी के चौहान जिन्हें उनका नाम राजस्थान के अजमेर ज़िले में उनकी राजधानी (आधुनिक सांभर) से मिला।

इस वंश के प्रमुख राजाओं में था अजयराज, जिसने यामिनियों से नागौर को वापस अपने कब्ज़े में लिया और गज़नियों का आगे बढ़ना रोका। बारहवीं शताब्दी की शुरुआत में उसने अजयमेरु (अजमेर) शहर की स्थापना की, जो पुरानी राजधानी, सांभर, की तुलना में सैन्य दृष्टि से बेहतर स्थित था। उसके कुछ सिक्कों में उसकी रानी, सोमलदेवी का नाम है।

उसके बेटे अर्णोराज ने यामिनियों पर निर्णायक विजय प्राप्त की जो कि अजमेर तक पहुँच गए थे। उसने चालुक्य शासक, गुजरात के जयसिंह सिद्धराज, की बेटी से विवाह किया और महान पृथ्वीराज तृतीय उसका पौत्र था।

अर्णोराज के पुत्र विग्रहराज चतुर्थ वीसलदेव, जिसकी ज्ञात तिथियाँ 1153–1163 तक जाती हैं, ने चौहान राज्य को एक साम्राज्य के रूप में परिवर्तित कर दिया। राजस्थान में चालुक्य क्षेत्रों पर हमला करने के अलावा उसने दिल्ली और हांसी पर भी विजय प्राप्त की। ऐसा कहा जाता है कि उसने आर्यवर्त को हमलावरों से मुक्त कराया। यद्यपि यह अतिशयोक्ति लगती है लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि उसने यामिनियों पर महत्त्वपूर्ण विजय प्राप्त कीं।

एक अच्छा योद्धा होने के अलावा विग्रहराज वीसलदेव चतुर्थ एक विद्वान व्यक्ति था और उसने साहित्य को प्रश्रय दिया। उसके द्वारा लिखे गए नाटक, *हरकेलि* के कुछ हिस्से अजमेर में एक पत्थर पर अंकित पाए गए हैं । इसी तरह उसके दरबारी कवि, सोमदेव द्वारा लिखा गया ऐतिहासिक नाटक, *ललित विग्रहराज* भी प्राप्त हुआ है। विग्रहराज चतुर्थ वीसलदेव ने अनेक निर्माण कराए और अनेक नगर-क्षेत्रों की स्थापना की। अढ़ाई दिन का झोंपड़ा नामक मस्जिद शुरू में उसके द्वारा निर्मित एक विद्यालय था।

पृथ्वीराज तृतीय इस वंश का अंतिम शासक था। कवि चंदबरदाई ने अपने महाकाव्य *पृथ्वीराज रासो* में उसे अमर कर दिया, हालांकि एक अन्य जीवनचरित *पृथ्वीराज विजय* को उसके शासन का अधिक प्रामाणिक वर्णन माना जाता है । जब उसने सिंहासन संभाला तो पृथ्वीराज नाबालिग था, लेकिन उसने अपने शासन की शुरुआत कन्नौज, गुजरात और चंदेल क्षेत्रों जैसे शक्तिशाली पड़ोसी राज्यों पर हमले से की, हालांकि उसे इसमें कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। उसे सबसे बड़ी चुनौती मुहम्मद गौरी से मिली। तराईन के दूसरे युद्ध में हार और कुछ ही समय में तीस वर्ष की उम्र में प्राणदंड से वंश का पतन आरंभ हो गया।

चौहानों की शाखाएँ रणथंभौर, नादोल और जालौर पर भी शासन कर रहीं थीं। चौदहवीं शताब्दी के आरंभ में अजमेर और जालौर पर अलाउद्दीन ख़िलजी ने कब्ज़ा कर लिया।

त्रिपुरी के कल्चुरि

कल्चुरि (कत्सुरि, हैहय और चेदि) जिनके अनुश्रुत प्रारंभिक इतिहास के बारे में महाकाव्यों और पुराणों में लिखा गया है, एक प्राचीन शासक वंश थे। ऐतिहासिक समय में छठी शताब्दी ई. मध्य से कल्चुरि राजाओं का उल्लेख मिलता है । वे सबसे पहले नर्मदा पर महिष्मती में सत्ता में आए।

प्रारंभिक कल्चुरि राजा, कोकल्ल, जिसने नवीं शताब्दी के मध्य में शासन किया, अपने समय के महान शासकों में था । उसने तुरुष्कों को पराजित किया जो संभवत: सिंध के शासक की तुर्की टुकड़ियाँ थीं। उसने एक चंदेल राजकुमारी से विवाह किया। उसके बाद अनेक योग्य शासक आए लेकिन दसवीं शताब्दी की आखिरी तिमाही में वंश का पतन आरंभ हो गया। प्रसिद्ध कवि राजशेखर, कल्चुरि दरबार में था।

सन् 1015 में मध्य प्रदेश में जबलपुर के आसपास के क्षेत्र में गांगेयदेव ने सिंहासन संभाला। उसके शासन में कल्चुरियों ने फिर से सत्ता और सम्मान प्राप्त किया। उड़ीसा, अंग और बनारस पर हमलों के अलावा उसके किरा (कांगड़ा घाटी) पर भी हमला करने के उल्लेख हैं जो कि तब पंजाब के गज़नी प्रांत का भाग था। उसके बाद उसके बेटे कर्ण ने शासन संभाला जो इस राजवंश का सबसे महान शासक और अपने समय के सबसे प्रख्यात सेनापतियों में था। उसके शिलालेख इस बात कि पुष्टि करते हैं कि बनारस और इलाहाबाद उसके राज्य के हिस्से थे

तथा कुछ समय के लिए पश्चिम बंगाल भी उसके कब्ज़े में था। उसके अलावा वह कलिंग और कांजीवरम पर भी किए गए आक्रमणों में सफल रहा। मालवा के विरुद्ध उसने चालुक्य राजा से मित्रता की।

इस राजवंश के अंतिम राजा ने संभवतः बारहवीं शताब्दी के अंत तक शासन किया। कल्चुरियों की एक शाखा ने ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभ में मध्य प्रदेश के बिलासपुर ज़िले में एक राज्य की स्थापना की। छोटे-छोटे कल्चुरि प्रमुख उत्तर प्रदेश के गोरखपुर मंडल के कुशीनगर जिले के कसेया क्षेत्र में नवीं से बारहवीं शताब्दी तक शासन कर रहे थे।

गुजरात के चालुक्य शासक

चालुक्य या सोलंकियों ने लगभग साढ़े तीन सौ साल (950-1300) तक गुजरात पर शासन किया। भीम प्रथम (1022-1064) के शासनकाल में महमूद गज़नी ने गुजरात पर हमला किया और सोमनाथ के मंदिर को लूट लिया। भीम का उत्तराधिकारी उसका बेटा कर्ण था जिसकी प्रमुख उपलब्धि थी लाट (दक्षिण गुजरात) पर उसका कब्ज़ा। कहा जाता है कि उसने पश्चिमी चालुक्य शासक के सहयोग से मालवा के विशाल हिस्से जीते ।
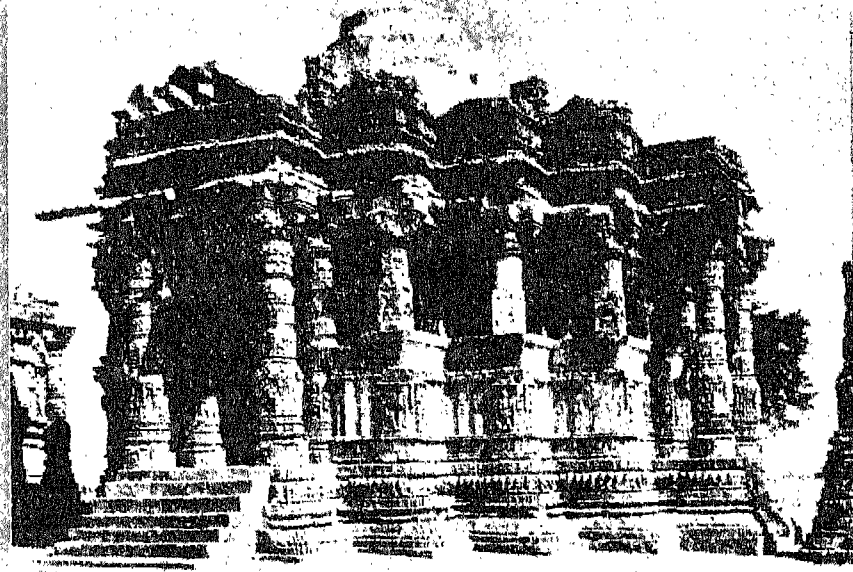
सूर्य मंदिर का सभामंडप, मोढेरा, गुजरात, सोलंकी काल

जयसिंह सिद्धराज, जिसने 1092-93 में सिंहासन संभाला, ने गुजरात राज्य को सुदृढ़ कर उसका काफी
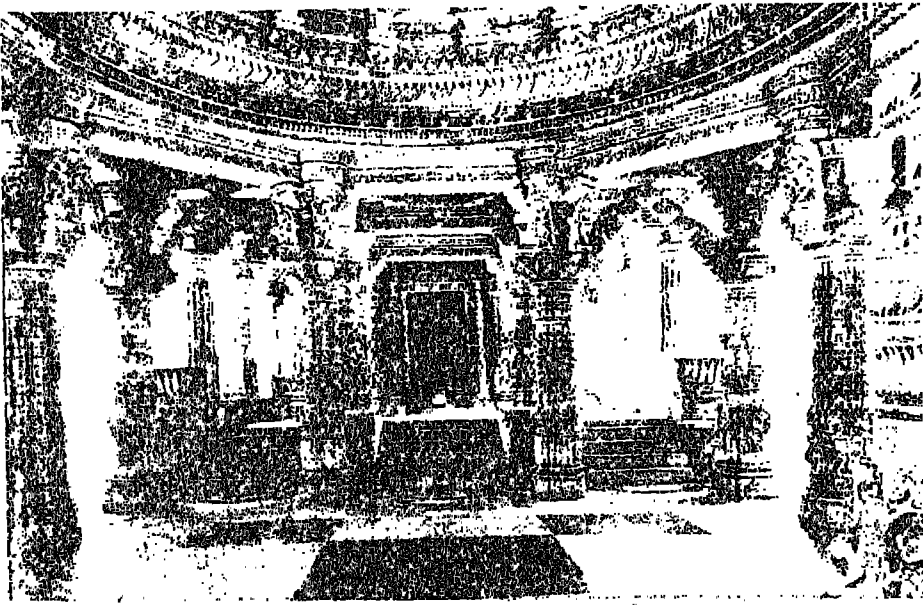
माउंट आबू, लून वसही मंदिर, सभा मंडप का आंतरिक भाग, 1230 ई., सोलंकी काल

विस्तार किया। उसने साकंभरी के चौहानों को पराजित किया, लेकिन अपनी बेटी का हाथ पराजित शासक, अर्णोराज को दे दिया।

इसके बाद सिद्धराज मालवा के परमारों के विरुद्ध हो गया। सन् 1137 तक उसने राज्य के उतने हिस्से पर कब्ज़ा कर लिया था कि वह अवंतिनाथ (मालवा का स्वामी) कहलाया जा सके। इससे गुजरात की सीमा का विस्तार चंदेल राज्य तक हो गया और उसके परिणामस्वरूप दोनों शक्तियों में संघर्ष अपरिहार्य हो गया।

जयसिंह सिद्धराज शिव का भक्त था और उसने सिद्धपुर में रुद्रमहाकाल मंदिर बनवाया । उसने प्रसिद्ध जैन विद्वान हेमचंद्र को प्रश्रय दिया। उसने ज्योतिष, न्याय व पुराण के अध्ययन के लिए संस्थानों की स्थापना की। सिद्धराज का कोई पुत्र नहीं था। उसका उत्तराधिकारी बना, कुमारपाल, जो जैन धर्म के अंतिम राजकीय प्रवर्तक के रूप में प्रसिद्ध है । मुहम्मद गौरी ने उसके नाबालिग पौत्र के शासन में हमला किया। राज कर रही रानी ने स्वयं सेना का नेतृत्व किया और माउंट आबू के निकट तुर्की सेना को पराजित कर दिया।

तेरहवीं शताब्दी के मध्य में वाघेला प्रमुखों ने साबरमती और नर्मदा के बीच एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। कर्ण द्वितीय जिसने अलाउद्दीन ख़िलजी की सेनाओं का मुकाबला किया, गुजरात का अंतिम हिंदू शासक था।

कश्मीर

कश्मीर में कार्कोटा राजवंश जिसमें ललितादित्य मुक्तापीड और जयपीड विनयादित्य जैसे शासक थे, के स्थान पर नवीं शताब्दी के मध्य में उत्पलों ने शासन संभाला। इस राजवंश का संस्थापक, अवंतिवर्मन एक दूरदर्शी व्यक्ति था, जिसने क्षेत्र में शांति व्यवस्था कायम की, घाटी में जल निकास और खेती के लिए एक अभियांत्रिकी कार्य का आदेश दिया। इससे बाढ़ से राहत मिली और भूमि का बड़ा हिस्सा खेती के काम आने लगा। इस कार्य को सूर्य ने पूरा किया, उसी के नाम पर सूर्यपुर नगर का नाम पड़ा। अवंतिवर्मन ने भी अवंतिपुर नगर की स्थापना की और अनेक भव्य मंदिरों का निर्माण किया।

लेकिन उसके उत्तराधिकारी कमजोर और अयोग्य थे और इसलिए सत्ता तांत्रिन सैनिकों (राजभवन के अंगरक्षक) के एक समूह के हाथों में आ गई जिनका राज्य पर पूरी तरह से नियंत्रण था। दसवीं शताब्दी के मध्य में प्रसिद्ध रानी दिद्दा (शाही राजा, भीम की पौत्री) एक महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभरी। उसका शासन उत्तेजनापूर्ण रहा, जिसमें उसके महामंत्री तुंग के विरुद्ध निरंतर विद्रोह व विरोध होते रहे। इसके बाद लोहार राजवंश ने सत्ता संभाली।

आखिरकार सन् 1172 में राजवंश का अंत हो गया। इसके बाद लगभग दो शताब्दियों तक अराजकता रही और अंततः 1339 में शाहमीर ने अंतिम हिंदू शासक उदयन देव की विधवा, रानी कोटा को अपदस्थ कर दिया।

अभ्यास

1. किन राजवंशों ने ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दियों में कन्नौज पर शासन किया?
2. निम्नलिखित पर टिप्पणी कीजिए:
   (क) गहड़वाल
   (ख) चंदेल
   (ग) भोज परमार
   (घ) पृथ्वीराज तृतीय
   (ङ) जयसिंह सिद्धराज
3. सही मिलान कीजिए:

(क) विग्रहराज चतुर्थ वीसलदेव	कल्चुरि राजवंश
(ख) अवंतिवर्मन	ने *हरकेलि* लिखी
(ग) कर्ण महानतम शासक था	ने खजुराहो में मंदिरों का निर्माण किया
(घ) चंदेल	ने उत्पल राजवंश की स्थापना की

4. भारत के नक्शे पर चौहान, गहड़वाल और चंदेलों के राज्य दिखाइए।
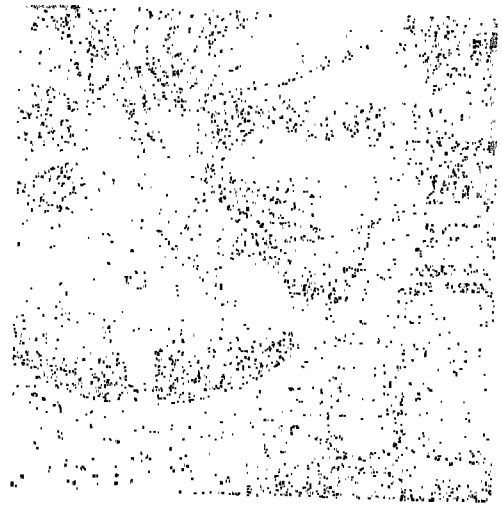
उत्तर-पूर्वी और पूर्वी राज्य

पूर्वी क्षेत्रों में भी अनेक नए राज्य विकसित हुए। असम के शासकों ने आगे बढ़ती ख़िलजी सेनाओं को पराजित कर दिया और उड़ीसा के शासकों ने भी अनेक हमलावरों को मात दी। बंगाल में पाल और सेन शासकों के शासन में सांस्कृतिक पुनरुत्थान हुआ, लेकिन अंततः वे भी तुर्की सेनाओं द्वारा पराजित हुए।

असम

भास्करवर्मन की मृत्यु के बाद कामरूप पर सालस्तंभ ने कब्ज़ा कर लिया। उसके या उसके उत्तराधिकारियों के बारे में हमारे पास अधिक जानकारी नहीं है । नवीं शताब्दी के आरंभ में प्रलंभ के अधीन एक नए राजवंश ने शासन संभाला। पाल राजा, देवपाल ने संभवतः इस समय इस क्षेत्र पर कब्ज़ा कर लिया, लेकिन यह जल्दी ही स्वतंत्र हो गया। प्रलंभ राजवंश लगभग 1000 ई. तक सत्ता में रहा।

ग्यारहवीं शताब्दी के पहले भाग में प्राग्ज्योतिष (कामरूप) का राजा ब्रह्मपाल था, जिसने अपनी राजधानी दुर्जय, जिसे विद्वान गुवाहाटी मानते हैं, से शासन किया।

असम के एक राजा जिसका नाम मालूम नहीं है, ने बंगाल के विजेता बख्तियार ख़िलजी के हमले को विफल कर दिया, जिसमें उसे भारी नुकसान हुआ। संपूर्ण कामरूप क्षेत्र हमलावर के विरोध में खड़ा हो गया। स्थानीय जनता ने खाना और चारा नष्ट कर दिया ताकि हमलावरों को किसी प्रकार का आहार न मिल सके। खिलजी की अधिकांश सेना मारी गई और दस हज़ार अश्वारोही सेना में से सौ से अधिक जीवित नहीं बचे। असम पर हुए अन्य मुस्लिम आक्रमणों का भी उल्लेख है, जो कि असफल रहे।

इसी बीच तेरहवीं शताब्दी के मध्य में पूर्वी असम में बसी शान जनजाति की एक शाखा, अहोम ने एक राज्य की स्थापना कर इस क्षेत्र को असम का नाम दिया।

बंगाल

धर्मपाल, देवपाल और नारायणपाल जैसे प्रतिष्ठित शासकों के बाद, पाल साम्राज्य का पतन हो गया और उनका अधिकार क्षेत्र पश्चिम और दक्षिण बंगाल तक ही सीमित हो गया। 988 ई. में एक अन्य शक्तिशाली राजकुमार, महिपाल प्रथम ने शासन संभाला। उसके शासनकाल में पाल शक्ति का पुनरुत्थान हुआ लेकिन उसके उत्तराधिकारियों के शासन में फिर से जब पतन का काल आरंभ हुआ तो उसे रोका नहीं जा सका। बारहवीं शताब्दी की तीसरी तिमाही तक दक्षिण बिहार के कुछ हिस्सों पर पाल शासन जारी रहा। इन दशकों में बंगाल को कैवर्त विद्रोह से भी धक्का लगा।

ग्यारहवीं शताब्दी की दूसरी तिमाही में 'पूर्व बंगाल में वर्मनों ने जो पुरातन यादवों से अपना संबंध

बताते थे, सत्ता संभाली। उनके स्थान पर सेन सत्ता में आए। सेन स्वयं को कर्नाट-क्षत्रिय, ब्रह्म-क्षत्रिय और क्षत्रिय बताते थे और स्वयं को दक्षिणापथ के राजाओं का वंशज मानते थे। इससे विद्वान यह मानने लगे हैं कि वे दक्षिण के कन्नड़भाषी क्षेत्र से आए होंगे। चूंकि पालों ने अनेक कर्नाटों को नियुक्त किया हुआ था, अतः यह संभव है कि सेनों का कोई पूर्वज, जो दक्कन से था, ने उनकी सेवा स्वीकार की और उसके वंशज राधा (बर्दवान) में बस गए। इसके अलावा संभव है कि उन्होंने एक चालुक्य शासक का साथ दिया, जिसने बंगाल पर विजय प्राप्त की और वहीं बस गया।

विजयसेन, जिसने 1095 में सत्ता संभाली और लगभग साठ वर्षों तक शासन किया, सेन राजवंश के प्रमुख राजाओं में था। देवपारा प्रशस्ति शिलालेख हमें उसके शासनकाल के बारे में जानकारी देता है। उसने राजशाही जिले में प्रद्युम्नेश्वर शिव मंदिर का निर्माण किया।

उसका उत्तराधिकारी, प्रसिद्ध बल्लालसेन (1158-1179) था। बल्लालसेन एक विद्वान व्यक्ति था जिसने पुराण व स्मृति का अध्ययन किया था। वह एक प्रसिद्ध लेखक भी था। उसने स्मृति पर एक पुस्तक लिखी व एक पुस्तक खगोल शास्त्र पर भी, जिसे उसके बेटे ने पूरा किया। उसने *कूलिनिस्म* नामक एक सामाजिक प्रणाली आरंभ की। हालांकि सामयिक तथ्य इसकी पुष्टि नहीं करते हैं ।

उसका बेटा लक्ष्मणसेन बंगाल का अंतिम हिंदू शासक था। उसने गहड़वालों के विरुद्ध महत्वपूर्ण विजय हासिल की। बिहार का एक बड़ा हिस्सा भी उसके नियंत्रण में था जहाँ पर उसके नाम पर लक्ष्मण संवत् नामक एक युग प्रचलन में था। बख्तियार ख़िलजी के आक्रमण के बाद उसे अपनी राजधानी, नदिया (लखनौती) छोड़ने पर विवश होना पड़ा। यद्यपि इसका कारण हालात और उसकी वृद्धावस्था हो सकती है । लोकप्रिय मत कि वह एक कायर था जो अठारह ख़िलजी घुड़सवारों से हार गया, ऐसे अनुचित प्रतीत होता है ।

लक्ष्मणसेन एक प्रतिभावान लेखक तथा कवि था और उसका शासन सांस्कृतिक भव्यता का काल था। *गीत गोविंद* के रचयिता जयदेव, हलायुध तथा श्रीधरदास जैसे प्रसिद्ध साहित्यकारों ने उसके दरबार की शोभा बढ़ाई। तुर्कों के हमले से पूर्व के दशकों में बंगाल में संस्कृत साहित्य अपने चरम पर था।

लेकिन पूर्वी बंगाल (वंग) और संभवतः दक्षिण बंगाल सेनों के हाथों में रहा। प्राप्त वर्णनों से यह प्रतीत होता है कि लक्ष्मणसेन के वंशज कम से कम तेरहवीं शताब्दी के मध्य तक वंग के सिंहासन पर रहे जब उनका स्थान देव राजवंश ने ले लिया, जिसने तेरहवीं शताब्दी के दूसरे भाग तक शासन किया।

उड़ीसा, कलिंग

सातवीं शताब्दी के मध्य में उड़ीसा पर शैलोद्भव राजवंश के सैन्यभीत माधववर्मन (जिसे श्रीनिवास भी कहा जाता है) का शासन था, जिसने अश्वमेध यज्ञ किया था। यद्यपि उसके बाद राजवंश का पतन आरंभ हो गया, लेकिन शैलोद्भव का शासन, आठवीं शताब्दी के मध्य तक चला। आने वाली दो शताब्दियों तक अनेक राजवंशों ने उड़ीसा पर शासन किया, जिनमें कड़ा व भांजों की अनेक शाखाएँ थीं। हमें
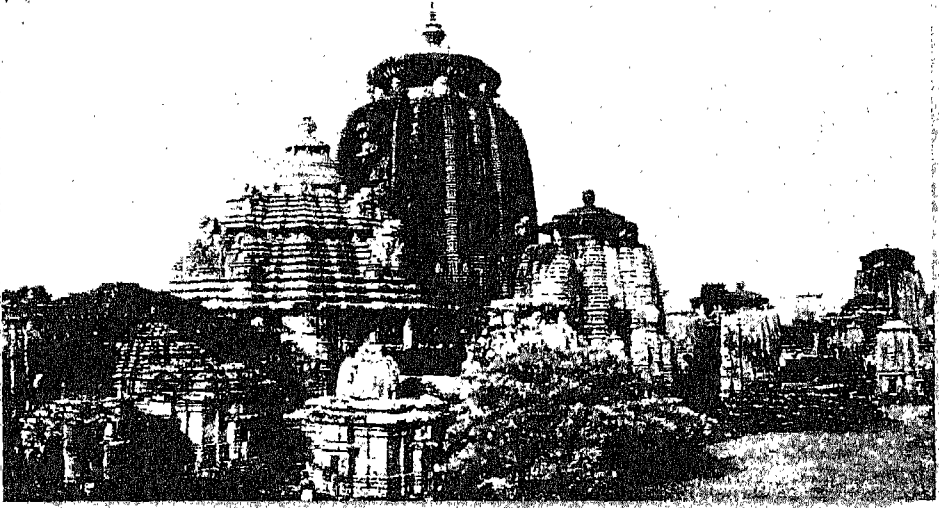
लिंगराज मंदिर, भुवनेश्वर, उड़ीसा, मध्य ग्यारहवीं शताब्दी

कड़ा राजवंश की कम से कम पाँच महिला शासकों के बारे में पता चला है । भांजों के सबसे प्रमुख परिवार थे खिजिंगा और ख़िंजली।

जिन राजवंशों ने उड़ीसा पर आने वाले समय में शासन किया, उनमें भुवनेश्वर के केसरी और कलिंगनगर के पूर्वी गंग शामिल थे। केसरी शिव भक्त थे और उन्होंने भुवनेश्वर में लिंगराज मंदिर सहित अनेक मंदिरों का निर्माण कराया।

पूर्वी गंग, जिन्होंने स्वयं को कलिंग में स्थापित कर लिया था, मूलतः मैसूर के गंगों की एक शाखा थे। उनकी मुख्य राजधानी कलिंगनगर (गंजाम ज़िला) में और गौण राजधानी दंतपुर(पालूर) में थी। उनके राजाज्ञापत्र महेंद्र पर्वत पर गोकर्णेश्वर शिव की स्तुति के साथ आरंभ होते हैं ।

ग्यारहवीं शताब्दी में एक अन्य गंग परिवार इस क्षेत्र में प्रमुख हुआ। इन्हें परवर्ती पूर्वी गंग कहते हैं ताकि इन्हें इसी नाम के प्रारंभिक परिवार से अलग किया जा सके। यह राजवंश अनंतवर्मन चोडगंग के शासन में अपने चरम पर पहुँचा। अनंतवर्मन चोडगंग का नाम अपनी माँ, जो राजेंद्र चोल की बेटी थी, के नाभ पर पड़ा। अनंतवर्मन ने 1078 ई. में अपने पिता के बाद सिंहासन संभाला और लगभग सत्तर वर्ष तक बारहवीं शताब्दी के मध्य तक शासन किया। उसने पुरी के प्रसिद्ध जगन्नाथ मंदिर का निर्माण

सूर्य, सूर्य मंदिर, कोणार्क, उड़ीसा

किया। हालांकि उसे अपने शासन के आरंभ में चोलों का सामना करना पड़ा लेकिन इसने न केवल अपने क्षेत्र को पुन: प्राप्त किया बल्कि कुछ चोल भूमि पर भी कब्ज़ा किया जहाँ से बाद में उसे बाहर कर दिया गया।

उत्कल और कलिंग को एक कर उसने आधुनिक उड़ीसा की नींव रखी। वह पाल राज्य के विघटन का लाभ उठाते हुए हुगली के रास्ते गंगा तक पहुँच गया जो एक ऐसी सीमा थी, जिसे उड़ीसा के राजाओं ने सोलहवीं शताब्दी तक अपने कब्जे में रखा था। अनंतवर्मन चोडगंग के अभिलेखों में उसके राज्य का विस्तार "गंगा से गोदावरी" तक बताया गया है। यह एक ऐसा कार्य था जो गजपति शासक ही कर पाए।

इस समय उड़ीसा को बंगाल से अनेक आक्रमणों का सामना करना पड़ा। पहला हमला बख्तियार ख़िलजी के आदेश पर हुआ, जिसने बंगाल के सेन वंश को पराजित कर दिया था लेकिन यह हमला और इसके बाद गियासुद्दीन इवाज़ का हमला असफल रहा।

इस वंश का एक अन्य प्रमुख शासक नरसिंह प्रथम (1238-1264) था, जिसने कोणार्क के सूर्य मंदिर का निर्माण कराया। उसने आगे बढ़ने की नीति पर अमल करते हुए बंगाल पर आक्रमण किया और राजधानी के द्वार तक आ पहुँचा। इससे उड़ीसा सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक अपनी स्वतंत्रता बनाए रख सका, हालांकि उसे सल्तनत शासकों के अनेक हमलों का सामना करना पड़ा। पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य में सूर्यवंश नामक एक नए शाही परिवार ने कलिंग में सत्ता संभाली।
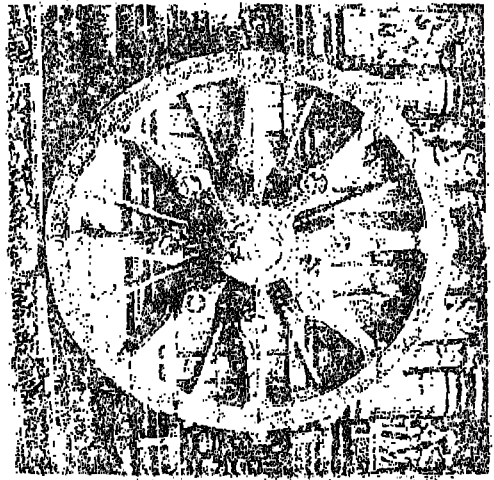
सूर्य मंदिर के आधार पर चक्र, कोणार्क, उड़ीसा, गंग काल

अभ्यास

1. सही मिलान कीजिए :

(क) कामरूप इस नाम से भी जाना जाता था — ने जगन्नाथ मंदिर का निर्माण कराया

(ख) बख्तियार खिलजी — प्राग्ज्योतिष

(ग) लक्ष्मणसेन — शान जनजाति की एक शाखा थे

(घ) पूर्वी गंग — असम पर कब्ज़ा करने में असफल रहा

(ङ) अहोम — उड़ीसा पर राज्य करने वाला एक परिवार था

(च) बल्लालसेन — एक प्रसिद्ध सेन राजा था

(छ) शैलोद्भव — बंगाल का अंतिम हिंदू शासक था

2. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए :

(क) पालों द्वारा कला और धर्म को प्रश्रय

(ख) अनंतवर्मन चोडगंग

(ग) नरसिंह प्रथम

अध्याय 6

दक्कन और दक्षिण
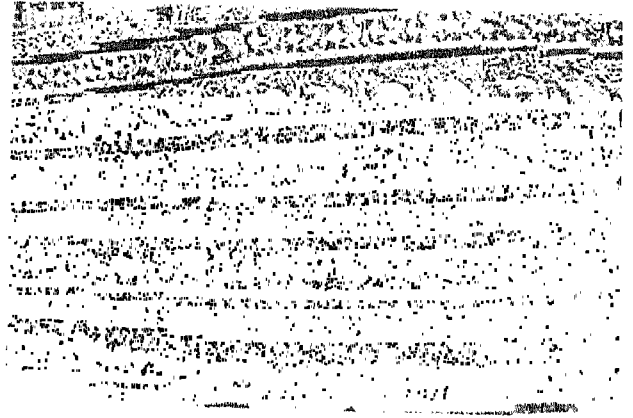
दक्कन और दक्षिण
दक्कन और दक्षिण
दक्कन और दक्षिण
दक्कन और दक्षिण
दक्कन और दक्षिण

दक्कन व सुदूर दक्षिण में कल्याणी के चालुक्यों, यादवों, काकतीयों, चोलों, होयसलों और उत्तरकालीन पांड्यों ने उस युग के गतिवाद में अपना योगदान दिया। अपनी सीमाएँ बढ़ाने की आक्रामक नीति पर अमल करते हुए उन्होंने अपने-अपने राज्यों में संस्कृति व धर्म को प्रश्रय दिया।

कल्याणी के चालुक्य

दसवीं शताब्दी के तीसरे चतुर्थांश में दो सौ वर्ष के लंबे और सफल शासन के बाद दक्कन के राष्ट्रकूटों का स्थान चालुक्यों ने लिया। पश्चिमी चालुक्यों के नाम से जाने जानेवाले इस नए शासक वंश ने कल्याणी (कर्नाटक) में अपनी राजधानी बनाई। इस वंश के संस्थापक, तैल द्वितीय (973-997 ई.) ने अनेक स्थानों पर विजय प्राप्त की और मैसूर के गंग, मालवा के परमार, गुजरात के चालुक्य और चेदि के कल्चुरि जैसी पड़ोसी शक्तियों को पराजित किया। किंतु उसके शासन काल की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना चोलों के साथ उसके लंबे संघर्ष का आरंभ थी। राजराज के नेतृत्व में चोलों ने भी राज्य विस्तार की नीति अपनाई थी। चालुक्य-चोल संघर्ष इस काल की महत्त्वपूर्ण घटना थी।

सत्याश्रय और जयसिंह द्वितीय जैसे बाद के चालुक्य शासकों को चोलों के निरंतर आक्रमणों का सामना करना पड़ा, जिसके बाद तुंगभद्रा को दोनों राज्यों के बीच अनकही सीमा मान लिया गया। तथापि चोलों के आक्रमण सोमेश्वर के शासनकाल तक जारी रहे।

सबसे प्रमुख चालुक्य शासक विक्रमादित्य षष्ठ (1076-1126 ई.) था, जिसने शक संवत् के स्थान पर चालुक्य-विक्रम संवत् चलाया। उसने चोलों और अपने असंख्य सामंतों से सफलतापूर्वक संघर्ष किया। पराजित होने के बावजूद सामंतों ने अंततः विक्रमादित्य की मृत्यु के तीन दशक बाद अपनी स्वाधीनता के लिए दावा किया।

विक्रमादित्य षष्ठ के दरबार में *विक्रमांकदेवचरित* के रचयिता विल्हण और *याज्ञवल्क्य स्मृति* पर व्याख्या, *मिताक्षरा* के लेखक विज्ञानेश्वर जैसे विद्वान मौजूद थे। विज्ञानेश्वर ने राजा के बारे में लिखा: ''कल्याणपुर के विक्रमादित्य की भांति इस पृथ्वी पर न कोई था, न है और न होगा और न हमने उसके जैसा कोई सुना या देखा है।''

बारहवीं शताब्दी के मध्य तक चालुक्य राज्य लगभग पूरी तरह से ही नष्ट हो गया और उसका स्थान वारंगल के काकतीय, द्वारसमुद्र के होयसल और देवगिरी के यादवों ने ले लिया।

पूर्वी चालुक्य

वेंगी के पूर्वी चालुक्य लंबे समय तक चोलों के संरक्षित राज्य थे, लेकिन कुलोत्तुंग के शासन संभालने के बाद, वेंगी का चोल साम्राज्य में विलय हो गया।

देवगिरि के यादव

यादव, जो स्वयं को श्रीकृष्ण के यदु परिवार का वंशज मानते थे, मूल रूप से एक मराठा समुदाय थे जो मूलत: राष्ट्रकूटों और बाद में पश्चिमी चालुक्यों के सामंत थे। बारहवीं शताब्दी में भिल्लम-पंचम के नेतृत्व में उनकी स्थिति महत्त्वपूर्ण हुई, जिसने यादव राज्य की स्थापना कर राजा की पदवी ली। उसने विघटित होते पश्चिमी चालुक्य साम्राज्य के विशाल हिस्सों पर कब्ज़ा किया, जिसने उसका होयसलों के साथ संघर्ष हुआ। उसने देवगिरी (जिसका नाम बाद में दौलताबाद पड़ा) में अपनी राजधानी बनाई। अत: उसका वंश देवगिरि के यादवों के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

यादव राज्य सिंहण (1210-1246)के अधीन अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा, जिसने इसे दक्कन की सर्वोच्च शक्ति बना दिया था। इस राजवंश का अंतिम प्रमुख शासक, राम चंद्र देव था जिसे अलाउद्दीन ख़िलजी के हमलों का सामना करना पड़ा।

काकतीय

काकतीय, तेलंगाना का एक पुराना परिवार था, जो ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभ में पश्चिमी चालुक्यों के सामंत थे। उनके पहले मुखिया ज्ञात, बीटा प्रथम ने राजेंद्र चोल के आक्रमण से पैदा हुई अव्यवस्था का लाभ उठाते हुए नलगोंडा ज़िले (हैदराबाद) में एक छोटे से राज्य का गठन किया। पश्चिमी चालुक्य राजा विक्रमादित्य षष्ठ की मृत्यु के बाद काकतीय शासकों ने पश्चिमी चालुक्यों के सामंतों को पराजित कर अपनी शक्ति का विस्तार शुरू कर दिया।

इस राजवंश के प्रमुख शासकों में था गणपति, जिसने साठ से भी अधिक वर्षों तक शासन किया और संपूर्ण तेलुगू-भाषी क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया। उसने एक कुशल प्रशासनिक तंत्र
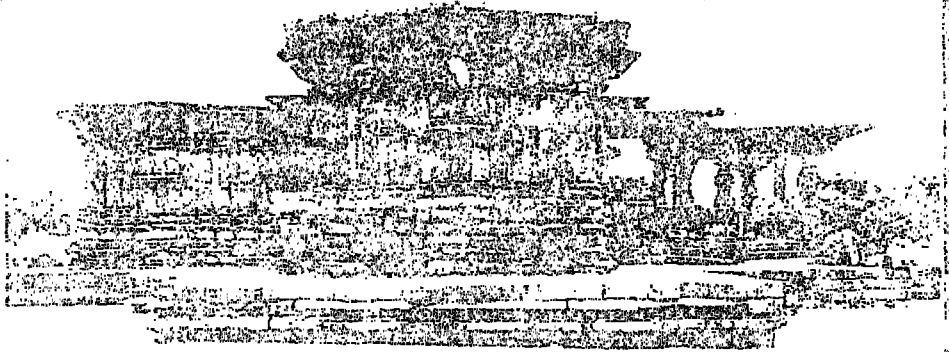
हजार-स्तंभी मंदिर, आंध्रप्रदेश, काकतीय काल

स्थापित किया और व्यापार और कृषि के सुधार के लिए कदम उठाए। उसने वारंगल शहर का निर्माण पूरा किया और अपनी राजधानी वहाँ स्थानांतरित की।

उसकी उत्तराधिकारी उसकी बेटी रुद्रमादेवी बनी जिसने रुद्रदेव महाराज का नाम ग्रहण किया और लगभग पैंतीस वर्ष (1261-1295) तक शासन किया। उसने उड़ीसा के राजा और यादवों से संघर्ष किया, जिनसे उसके राज्य को खतरा था। अपने पिता की भांति उसने पाशुपत शैव मठों को प्रश्रय दिया, जो उसके पिता के गुरु विश्वेश्वर शंभू द्वारा स्थापित किए गए थे।

उसके बाद शासन संभाला उसके पोते प्रताप रुद्र (1295-1323) ने जो इस राजवंश का अंतिम शासक था। प्रताप रुद्र के शासन में उत्तर से लगातार हमले हुए; प्रोलय नायक के विलास अनुदान के अनुसार आठ और मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार पाँच या छः।

दक्षिण भारत के राजवंश

चोल साम्राज्य

चोल अत्यंत प्राचीन शासक थे, जिनका उल्लेख सम्राट अशोक के शिलालेखों में मिलता है। नवीं शताब्दी के मध्य में विजयालय के शासन में उनकी शक्ति पुनर्जीवित हुई। विजयालय के आरंभिक चोलों के साथ संबंध के बारे में हमारे पास कोई जानकारी नहीं है। उसने संभवत: अपने कार्यकाल की शुरुआत पल्लवों के सामंत के रूप में की। उसके उत्तराधिकारियों आदित्य और परांतक, ने पल्लवों और पांड्यों की क्षीण होती शक्ति का लाभ उठाते हुए दक्षिण भारत के विशाल हिस्सों को अपने राज्य में शामिल कर अपने राज्य का विस्तार किया। चोलों के बढ़ते महत्त्व ने राष्ट्रकूट राजा, कृष्ण द्वितीय को उनसे युद्ध करने के लिए उकसाया। 949 ई. में तक्कोलम में उनकी निर्णायक हार हुई।

चोल इतिहास का स्वर्णिम काल राजराज महान के शासन संभालने (985-1014) पर आरंभ हुआ, जिसे राजनीतिक महत्त्व में समुद्रगुप्त के शासन के समकक्ष माना जाता है। लगभग एक दशक में ही राजराज ने एक छोटे से राज्य को एक साम्राज्य में परिवर्तित कर स्वयं को दक्षिण का सर्वोच्च शासक बना लिया। उसने चेर शासकों का दमन किया, मदुरा पर कब्ज़ा कर पांड्य राजा को बंदी बनाया। श्रीलंका के उत्तरी भाग पर कब्ज़ा किया, वेंगी के पूर्वी चालुक्य राज्य, कलिंग, लक्षद्वीप और मालदीव पर विजय प्राप्त की। लक्षद्वीप और मालदीव पर राजराज की विजय चोल नौसेना की शक्ति की पुष्टि करती है।

उसने तंजावुर में सुंदर बृहदीश्वर मंदिर का निर्माण किया जिसे उसके नाम पर राजराजेश्वर मंदिर भी कहते हैं। मंदिर की दीवारों पर उसकी उपलब्धियों के उल्लेख मिलते हैं। स्वयं शिव भक्त होने के बावजूद राजराज ने विष्णु के लिए भी मंदिरों का निर्माण किया। इसके अलावा उसने जावा के राजा की भी एक बौद्ध विहार के निर्माण में सहायता की और उसके लिए दान भी दिया।

राजराज के बाद उसके बेटे राजेंद्र प्रथम (1014-44) ने शासन संभाला, जिसके शासन में चोल शक्ति अपने चरम पर पहुँची। तिरुवलंगाडु ताम्रपत्र अभिलेख और तिरुमलाई शिलालेख उसकी विजय और सेनापति के रूप में उसके कौशल का उल्लेख करते हैं। सिंहासन संभालने के तुरंत बाद उसने संपूर्ण श्रीलंका पर विजय प्राप्त की तथा केरल और पांड्य प्रदेशों पर चोल सत्ता पर बल दिया।
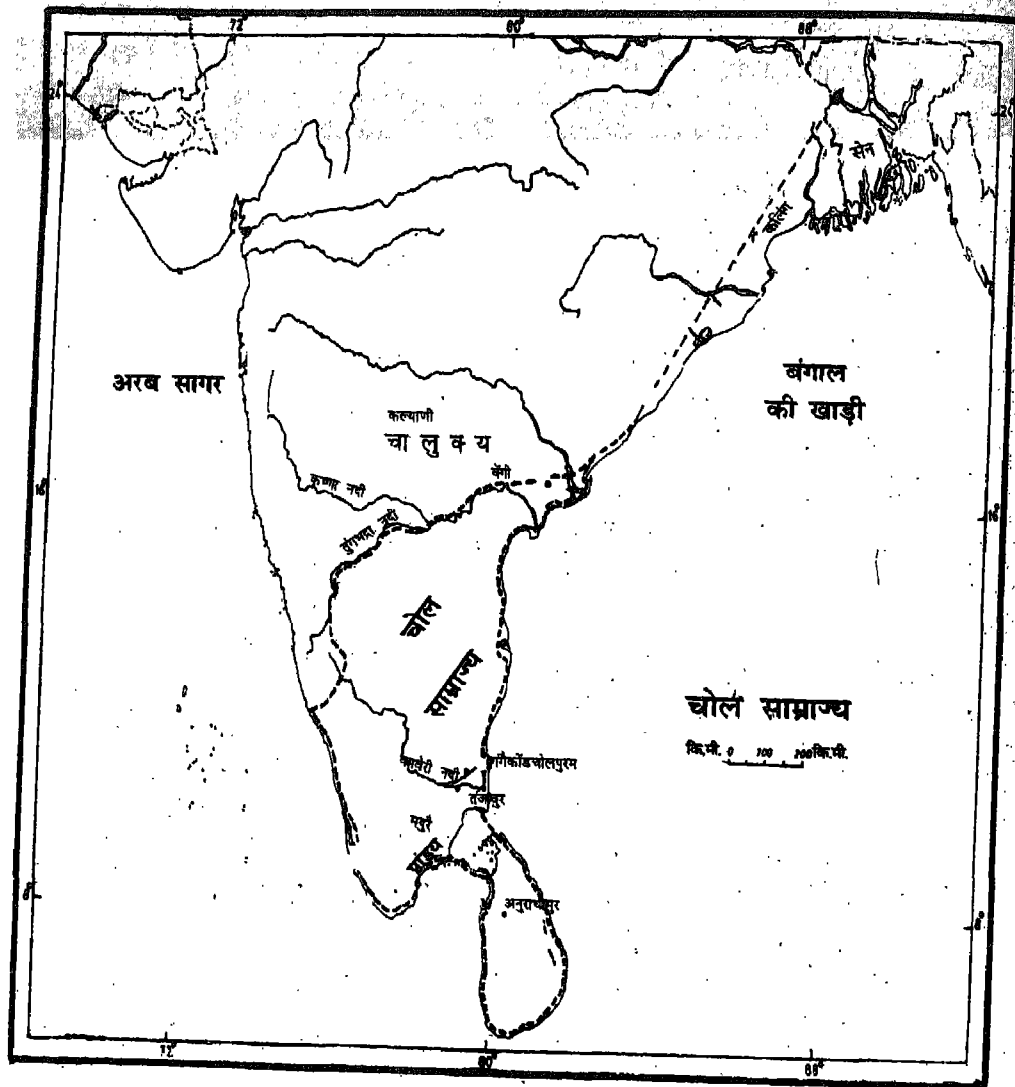
भारत की वर्तमान बाहरी सीमा —·—·—

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र में भारत का जनप्रदेश उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
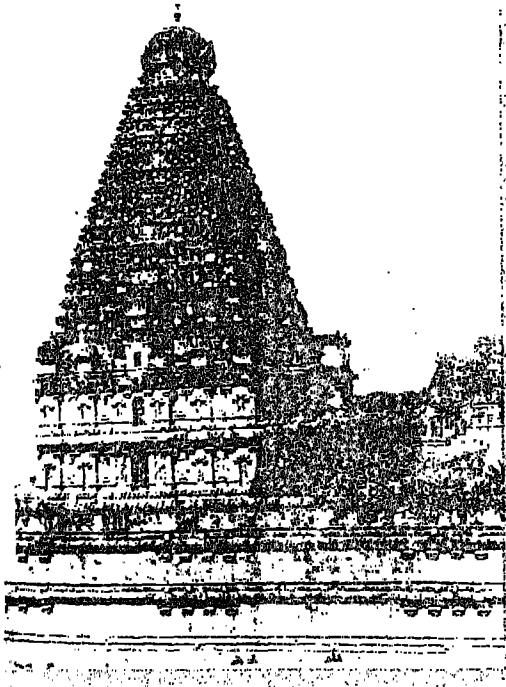
राजराजेश्वर मंदिर, तमिलनाडु

पश्चिमी चालुक्यों के साथ युद्ध आरंभ हुआ, लेकिन चोलों द्वारा अपनी सफलता के दावे के बावजूद, तुंगभद्रा उनके साम्राज्य की उत्तरी सीमा रही।

राजेंद्र प्रथम ने उत्तर की ओर गंगा और पाल राजा, महिपाल के राज्य तक एक विजय अभियान चलाया। इस अभियान का प्रत्यक्ष उद्देश्य था, गंगा के पवित्र जल को अपने राज्य तक लाना और इस साहसिक अभियान के बाद उसने गंगैकोंड की उपाधि ग्रहण की।

राजेंद्र प्रथम ने अपनी शक्तिशाली नौसेना का प्रयोग कर बंगाल की खाड़ी के पार भी विजय हासिल की। कंबोडिया के राजा ने मलय और सुमात्रा के राजाओं से हमले की आशंका को देखते हुए राजेंद्र चोल से सहायता माँगी। राजेंद्र चोल के लिए बड़ा आकर्षण पूर्वी और पश्चिमी एशिया के बीच समुद्री व्यापार पर नियंत्रण करना था, जो अब तक मलय और सुमात्रा के हाथ में था। कहते हैं राजेंद्र चोल ने सुमात्रा पर विजय प्राप्त कर मलय प्रायद्वीप और दक्षिण भारत के बीच वाणिज्य को बढ़ावा दिया। गंगा के जल को लाने की उसकी परियोजना संभवतः उसके उड़ीसा और बंगाल पर वर्चस्व कायम करने और अंततः भारत के संपूर्ण पूर्वी तट पर नियंत्रण करने की उसकी इच्छा से प्रभावित थी।

राजेंद्र चोल ने मंदिरों व महाविद्यालयों को खुलकर दान दिया। उसने गंगैकोंड चोलपुरम नामक एक नई राजधानी स्थापित की, जिसमें एक सुंदर मंदिर व महल था। शहर के पास एक विशाल हौज का निर्माण किया गया था, जिसमें निकटवर्ती नदियों से पानी भरा जाता था। उसकी एक बेटी का विवाह पूर्वी चालुक्य राजा से हुआ था और उसका बेटा कुलोत्तुंग पहला चोल-चालुक्य राजा बना।

राजेंद्र प्रथम का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र, राजाधिराज (1044-54) बना। राजाधिराज का उत्तराधिकारी उसका बेटा राजेंद्र द्वितीय था। दोनों ही कुशल सेनापति थे।

अंतिम महत्त्वपूर्ण चोल शासक कुलोत्तुंग प्रथम (1070-1122) था। उसने वेंगी के पूर्वी चालुक्य और चोलों के राज्य को एक किया। जिस समय उसने राज्य संभाला, चोलों को श्रीलंका से हाथ धोना पड़ा। उसे पांड्यों व चेरों के विद्रोहों का भी सामना करना पड़ा। वेंगी उसके हाथ से निकल गया और होयसलों के आक्रमण के परिणामस्वरूप उसे गंगवाडी प्रांत से हाथ धोना पड़ा। अतः उसके शासनकाल के

अंत में चोल राज्य एक बहुत छोटे से क्षेत्र तक ही सीमित रह गया।

कुलोत्तुंग ने अपने राज्य में अनेक प्रशासनिक परिवर्तन किए, जिनमें प्रमुख हैं – उसके शासन के सोलहवें व अड़तालीसवें वर्ष में किए गए भूमि सर्वेक्षण। एक रोचक संयोग यह हुआ कि पहला सर्वेक्षण इंग्लैंड में डोम्सडे सर्वेक्षण के वर्ष में ही हुआ।

हालांकि कुलोत्तुंग एक श्रद्धालु शिवभक्त था, लेकिन उसने नेगपट्टम के बौद्ध मंदिरों को भी दान दिए। उसके बाद धीरे-धीरे चोल शक्ति का पतन होने लगा और उसका स्थान द्वारसमुद्र के होयसल और मदुरै के पांड्यों ने ले लिया। चोलों की याद उनके देश, चोल-मंडल में जीवित है (अंग्रेज़ी में कोरोमंडल)।

चोल प्रशासन

चोल प्रशासन का केंद्र सम्राट था तथा राजकुमार उत्साहपूर्वक राज्य तथा सैन्य कार्यों में भाग लेते थे। राजा की सहायता मंत्रिपरिषद् तथा अधिकारीगण करते थे और प्रशासन की कुशलता में समय-समय पर राजकीय दौरों से वृद्धि होती थी।

राज्य अधिकारियों को अक्सर भूमि अनुदान में दी जाती थी और उन्हें उपाधियों से सम्मानित किया जाता था। साम्राज्य को प्रांतों (मंडलम) में विभाजित किया गया था जो कि आगे *वलनाडु* और *नाडु* में बँट जाता था। चोल साम्राज्य में व्यापार व वाणिज्य अच्छे चल रहे थे और कई बड़े व्यापार मंडल जावा तथा सुमात्रा से भी व्यापार करते थे।

भूमि से प्राप्त कर राजकीय आय का प्रमुख स्रोत था, जिसे ग्राम समितियों द्वारा नकद व अनाज दोनों रूप में वसूला जाता था। कृषकों का क्षेत्राधिकार अन्य दूसरे प्रकार के भूमि अधिकारों के साथ मौजूद था। सरकार तथा स्थानीय प्राधिकरण ग्राम प्राधिकरण के साथ मिलकर सिंचाई पर विशेष ध्यान देने के साथ-साथ तालाबों के रखरखाव पर भी पूरा ध्यान देते थे। राज्य का हिस्सा फसल का एक-तिहाई होता था। भूमि कर के अलावा राज्य व्यापार और पेशेवरों से भी कर वसूल करता था।

सेना में घुड़सवार, पैदल और हाथी शामिल थे। सेनापतियों को नायक, सेनापति अथवा महादंडनायक के ओहदे दिए जाते थे। *वेलैक्कर* सम्राट के अंगरक्षक थे। विशाल संख्या में मंहगे अरबी घोड़ों का आयात किया जाता था, लेकिन सही रखरखाव न होने के कारण वे पूरी ज़िंदगी नहीं जी पाते थे।

इस काल में चोल नौसेना ने अनेक स्थानों पर विजय प्राप्त की। चोलों ने कोरोमंडल व मालाबार तट के साथ-साथ बंगाल की खाड़ी पर कब्ज़ा किया।

मंदिर बनवाने के अलावा चोलों ने अनेक सार्वजनिक कार्य; जैसे-तालाब बनाना, कुएँ खुदवाना तथा कावेरी और अन्य नदियों पर बाँध बनवाना और सिंचाई के लिए पानी लाने के लिए नहरें बनवाईं। राजेंद्र प्रथम ने अपनी राजधानी के निकट, जो नहर खुदवाई उस पर सोलह मील लंबे तटबंध और पत्थर के जलद्वार और नहरें थीं। वाणिज्य और संचार को सुचारु रूप में चलाने और सेना के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए चोलों ने बढ़िया सड़कों का निर्माण करवाया। उन्होंने तंजावुर, गंगैकोंड-चोलपुरम और कांची जैसे महान नगरों का निर्माण किया।

स्थानीय प्रशासन

चोल काल में एक विस्तृत व जटिल ग्रामीण प्रशासनिक प्रणाली का विकास हुआ। शिलालेखों से प्राप्त जानकारी से स्थानीय स्तर पर कम से कम तीन
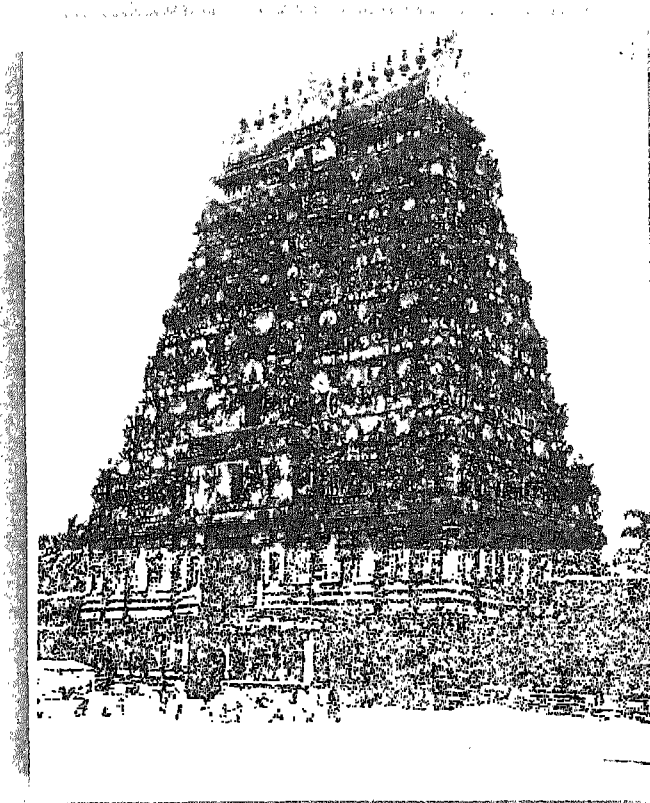
दक्षिणी गोपुरम, चिदंबरम मंदिर, तमिलनाडु

प्रकार की सभाओं के बारे में जानकारी मिलती है – उर, सभा या महासभा और नगरम।

गाँवों में 'उर' सभा का सामान्य रूप थी जिसमें सभी प्रकार के लोगों के पास भूमि होती थी और वे सभा के सदस्य थे। 'सभा' ब्रह्मदेय गाँवों में ब्राह्मणों की सभा को कहते थे, जिसमें कम से कम शुरू में तो ब्राह्मण ही मुख्य रूप से ज़मींदार थे। व्यापारियों की सभा को नगरम कहते थे और यह अक्सर उन क्षेत्रों में पाई जाती थी जिसमें व्यापारी व सौदागर प्रमुख थे। अन्य प्रकार की सभाओं के अलावा ये तीन प्रकार की सभाएँ अधिकांशत: उसी समान क्षेत्र में होती थीं और समान हित वाले मामलों पर परस्पर विचार-विमर्श करती थीं।

प्रारंभिक दसवीं शताब्दी (919 और 921 ई.) के दो शिलालेख, उत्तरमेरूर शिलालेख, चोल ग्राम सभाओं के इतिहास में मील का पत्थर सिद्ध हुए हैं। वे स्थानीय प्रशासन की देखरेख के लिए छः से बारह सदस्यों (वरियम) की समिति नियुक्त करने की प्रणाली निर्धारित करते हैं। एक गाँव से दूसरे गाँव की समितियों की संख्या भिन्न थी; समिति के सदस्यों को कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाता था। समितियों द्वारा किए जाने वाले कार्य गाँवों की स्वायत्त के प्रतीक हैं । गाँवों के प्रशासन की देखरेख वेतनभोगी अधिकारियों द्वारा भी की जाती थी। न्यायत्तर नामक न्यायिक समिति कानूनी मामलों से संबंधित थी।

सभा के पास सार्वजनिक भूमि के स्वामित्व के अधिकार थे तथा वह वनों व परती भूमि के रखरखाव में सहायता करती थीं, गाँवों के भूमि कर का अनुमानित मूल्य निश्चित करने में राजकीय अधिकारियों की सहायता, राजस्व वसूली और कर न मिलने पर भूमि को नीलाम करने का भी उन्हें अधिकार था।

बोधिसत्व मैत्रेय (कांस्य) चोल काल, ग्यारहवीं शताब्दी

शिव नटराज, चोल काल, बारहवीं शताब्दी

सभा सड़कों के रखरखाव और सिंचाई का भी निरीक्षण करती थीं; उनके द्वारा लिए गए निर्णयों का विवरण मध्यस्थ रखते थे।

चोल कला

चोलों ने विशाल संख्या में मंदिरों का निर्माण कराया और उनके द्वारा विकसित कला शैली दक्षिण भारत के अन्य भागों एवं श्रीलंका में भी अपनाई गई। उनके शासन के फलस्वरूप संपूर्ण तमिल प्रदेश मंदिरों से सुशोभित हुआ।

चोल मंदिरों की विशेषता, उनके विशाल शिखर या विमान थे। बृहदीश्वर मंदिर का विमान लगभग सत्तावन मीटर ऊँचा है जिस पर ग्रेनाइट का सात मीटर से भी ऊँचा पत्थर रखा है। मंडप नामक एक बड़ा कमरा जिसमें बारीक नक्काशी वाले खंभे और सपाट छत होती थी, अक्सर गर्भगृह के सामने स्थित होता था। इसमें भक्त एकत्रित होते थे और यहीं पर रीति अनुसार नृत्य किया जाता था। कभी-कभी देवताओं की मूर्तियों वाला एक गलियारा गर्भगृह के चारों ओर जोड़ दिया जाता था, ताकि भक्तगण उसकी परिक्रमा कर सकें। संपूर्ण ढांचे के चारों ओर ऊँची दीवारों व विशाल द्वारों वाला एक अहाता बनाया जाता था, जिसे गोपुरम कहते हैं ।

कुछ चोल मंदिरों में राजा और उसकी प्रमुख रानियों के चित्र भी लगे होते थे। चोल शिल्पकला की विशेषता उसकी ऊर्जा, लालित्य और भव्यता थी जो कि चिदंबरम के नटराज या नृत्य करते शिव की मूर्ति से स्पष्ट है । चोल कांस्य प्रतिमाओं को सही

मायने में चोल कला का चरमोत्कर्ष कहा गया है। सबसे प्रसिद्ध चोल चित्र बृहदीश्वर मंदिर के प्रदक्षिणा पथ को सुशोभित करते हैं।

होयसल

होयसलों का इतिहास सही तौर पर नृपकाम (1022-1047) से आरंभ होता है, जिसने अपने बेटे सहित हासन और कडूर ज़िलों और मैसूर के नागमंगल तालुक पर कब्ज़ा किया। यह क्षेत्र पश्चिमी चालुक्य और चोल साम्राज्य के बीच था। तदनंतर होयसल राज्य की सीमा भूतपूर्व मैसूर राज्य से लगभग मिलने लगी। यद्यपि होयसल काफी दूर तक चोल राज्य की सीमा में घुस गए थे और कुछ समय तक तो कावेरी के दक्षिण तक भी पहुँच गए थे। उन्होंने यादवों और पांड्यों के साथ अनेक युद्ध किए। विष्णुवर्धन, बल्लाल द्वितीय और बल्लाल तृतीय को इस राजवंश के उत्कृष्ट शासकों में गिना जाता है।

बल्लाल तृतीय को दिल्ली सल्तनत की सेनाओं का सामना करना पड़ा। सन् 1310 में पराजित होने के बावजूद उसने तीन दशक से भी अधिक समय तक ख़िलजी और तुगलक सेनाओं के साथ भीषण संघर्ष किया। उसने मदुरै के सुल्तान से भी युद्ध किया।

होयसलों ने द्वारसमुद्र को अपनी राजधानी बनाया। इसके समीप बेलूर स्थित था जो शाही आवास भी था और अपने भव्य होयसल स्मारकों के लिए आज भी प्रसिद्ध है।

होयसल अपने समय के प्रमुखतम भवन निर्माताओं में से थे, जिन्होंने चालुक्य कला परंपरा को और
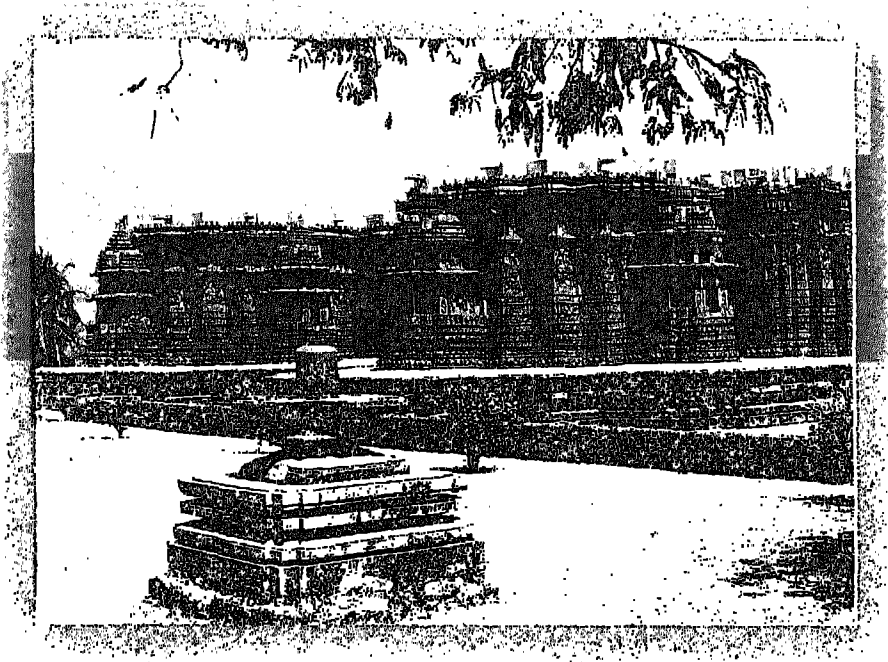
हलेबिड, होयसलेश्वर मंदिर

उन्नत किया। हलेबिड में बना होयसलेश्वर मंदिर चालुक्य-होयसल वास्तुकला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है । इसकी विशेषता है : कम ऊँचाई पर बना सूचीस्तंभीय शिखर और बारीक नक्काशीदार आधार। विस्तृत शिल्पकला से सुसज्जित इस मंदिर को अधूरा ही छोड़ दिया गया। इसका कारण संभवतः इस समय उत्तर से होने वाले हमले हो सकते हैं ।

उत्तरकालीन पांड्य

अनेक चोल राजाओं के हाथों पराजित होने के बावजूद पांड्य जाटवर्मन कुलशेखर के नेतृत्व में फिर से ऊपर उठने का प्रयास करने लगे। दूसरे पांड्य राज्य की शुरुआत संभवतः उसके भाई, मारवर्मन सुंदर पांड्य ने की।

इस राजवंश के महानतम शासकों में शामिल थे जाटवर्मन सुंदर पांड्य प्रथम (1251-1268)। चेरों, होयसलों और चोलों को पराजित करने के अलावा उसने उत्तरी श्रीलंका पर भी विजय प्राप्त की। उसने श्रीरंगम और चिदंबरम के मंदिरों को दान दिए और उनकी छतें सोने की बनवाईं। अन्य महत्त्वपूर्ण शासकों में जाटवर्मन वीर पांड्य (1253-1275) और मारवर्मन कुलशेखर शामिल हैं । मारवर्मन कुलशेखर के शासनकाल में पांड्यों ने श्रीलंका पर भी कब्जा कर लिया।

मार्को पोलो, जो 1293 ई. में पांड्य राज्य में आया, ने राज्य की भव्यता का सजीव उल्लेख किया है । उसने लिखा "माबर का महान प्रांत इंडीज में सर्वोत्तम है...। पश्चिम से जैसे होरमुज़, किश (फारस की खाड़ी में एक द्वीप), अदन और संपूर्ण अरब से आने वाले सभी जहाज जो घोड़ों और बिक्री के लिए अन्य वस्तुओं से लदे होते हैं, इस शहर को छूते हैं । इस शहर में बढ़िया व्यापार होता है । राजा
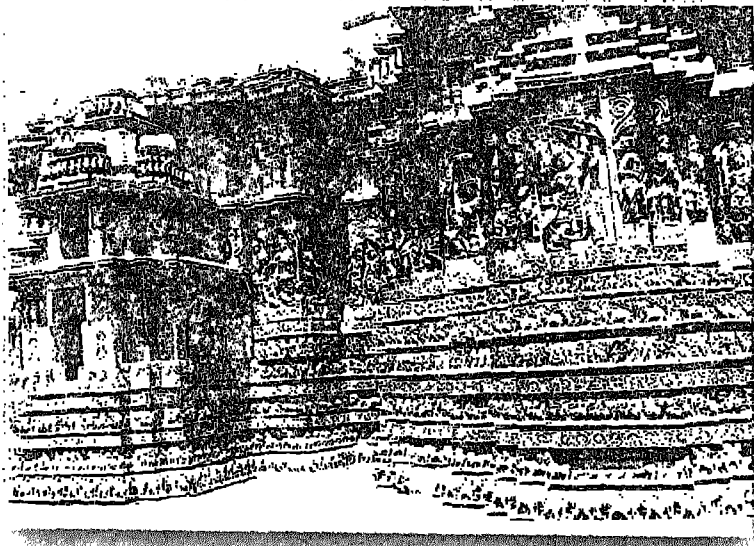
हलेबिड, होयसलेश्वर मंदिर, दक्षिणी विमान की दीवार

के पास विशाल खज़ाने हैं और वह स्वयं आभूषणों से लदा रहता है । उसका राज्य महान है और वह पूरी निष्पक्षता से राजकाज करता है । वह व्यापारियों और मेहमानों को अनेक सुविधाएँ देता है ताकि उन्हें उसके शहर में आना अच्छा लगे।"

दो पांड्य राजकुमारों 'सुंदर और वीर पांड्य' के बीच उत्तराधिकार को लेकर हुए संघर्ष से ख़िलजी सेनाओं को 1310 में राज्य पर हमला करने का मौका मिल गया।

विहंगावलोकन

इन शताब्दियों के दौरान विघटित राज्य व्यवस्था का निरीक्षण करते हुए यह बात ध्यान देने योग्य है कि यदि रूस को हटा दें तो भारत लगभग यूरोप के बराबर है। यदि इस दृष्टि से देखें तो देश के विस्तार और राज्यों की संख्या में असंगति नहीं थी और न ही यह विघटित होती राजनीतिक व्यवस्था का परिचायक था। जैसा कि पहले बताया गया है, प्रणाली में शामिल किए जाने वाले नए क्षेत्र और दल राज्य व्यवस्था में अपना योगदान दे रहे थे, लेकिन राजनीतिक भिन्नता के बावजूद भारत सांस्कृतिक तौर पर एक था। धार्मिक समारोह, लोकप्रिय मेलों, तीर्थों, आध्यात्मिक एवं साहित्यिक कार्यों ने उसकी एकता पर बल दिया।

अभ्यास

1. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए:
   (क) विक्रमादित्य षष्ठ
   (ख) भिल्लम
   (ग) रुद्रमादेवी
   (घ) चोल कला
   (ङ) चोल ग्रामीण प्रशासन
2. राजराज चोल की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
3. सही मिलान कीजिए :

(क) तैल द्वितीय	काकतीय राजवंश से था
(ख) सिंहण	एक महान चोल सम्राट था
(ग) प्रताप रुद्र	कल्याणी के चालुक्यों का संस्थापक था
(घ) राजेंद्र प्रथम	यादव राज्य शासक था

अध्याय 7

दिल्ली सल्तनत की स्थापना

दिल्ली सल्तनत की स्थापना
दिल्ली सल्तनत की स्थापना
दिल्ली सल्तनत की स्थापना
दिल्ली सल्तनत की स्थापना
दिल्ली सल्तनत की स्थापना
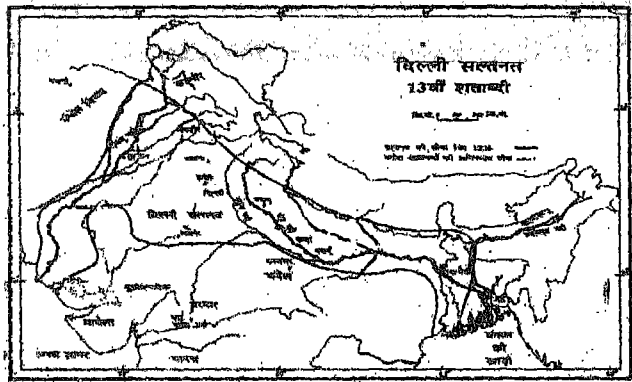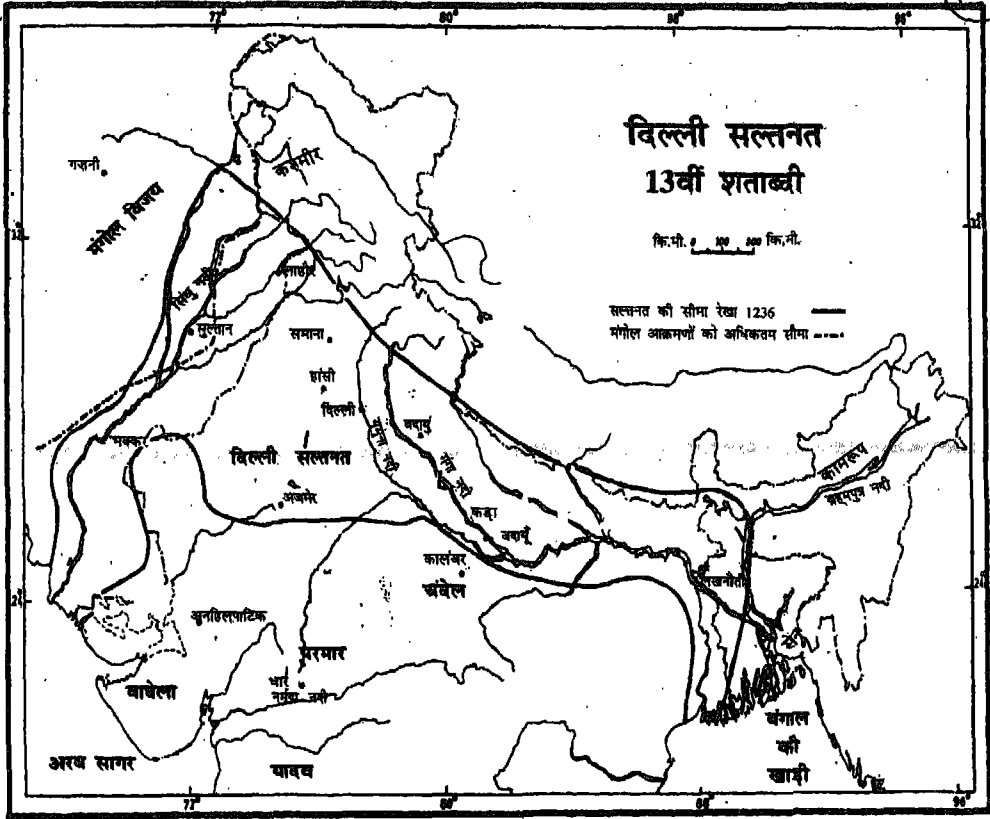
भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र में भारत का जनप्रदेश उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
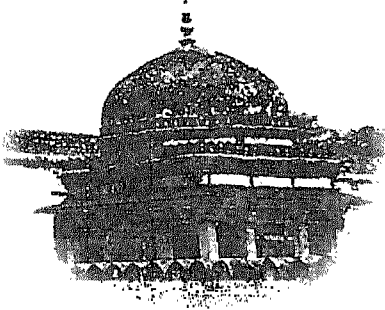
1206 ईस्वी में दिल्ली सल्तनत की स्थापना भारतीय इतिहास में एक युगांतरकारी घटना है । जिस राज्य की अब स्थापना हुई, वह इस प्रायद्वीप की भूतपूर्व राज्य व्यवस्थाओं से कई तरह से अलग था। पहली बार, शासक एक ऐसे धर्म के अनुयायी थे जो जनसाधारण से भिन्न था उनके द्वारा सत्ता के अभूतपूर्व केंद्रीकरण और कृषि वर्ग के शोषण की भारतीय इतिहास में कोई मिसाल नहीं है ।

मामलुक (1206-1290 ईस्वी)

मुहम्मद गौरी की आकस्मिक मृत्यु और उत्तराधिकार प्रक्रिया का सही उल्लेख न होने के कारण उसके तीन प्रमुख गुलामों -- ताजुद्दीन यालदुज़, नसीरुद्दीन कुबाचा और कुतबुद्दीन ऐबक में सत्ता हासिल करने के लिए संघर्ष छिड़ गया। इस समय गौरियों के कब्ज़े में मुल्तान, उच्छ, नहरवाला, पुरशोर, सियालकोट, लाहौर, तबरहिंद, तराईन, अजमेर, हांसी, सुरसुति, कुहरम, मेरठ, कोइल, दिल्ली, बदायूँ, ग्वालियर, भेड़ा, बनारस, कन्नौज, कालिंजर, अवध, मालवा, बिहार और लखनौती थे।

वास्तव में इनमें से अनेक क्षेत्र नाममात्र को ही गोरियों के कब्ज़े में थे, जबकि अन्य ने स्वयं को तुर्कों के कब्ज़े से स्वतंत्र घोषित कर दिया था। स्थानीय शक्तियों का हठ सल्तनत के शासकों के लिए हमेशा ही समस्या बना रहा।

स्थानीय शत्रुता और साथी तुर्की गुलामों से दबाव के कारण ऐबक अपने शत्रुओं की हरकतों पर नज़र रखने और भारतीय क्षेत्रों पर अपनी पकड़ मजबूत बनाने के लिए लाहौर में ही रुक गया। इस नाज़ुक दौर में ऐबक केवल अपने मालिक द्वारा जीते गए क्षेत्रों पर अपनी पकड़ बनाए रखना चाहता था। लेकिन 1210 ई. में, सत्ता पर आने के चार वर्ष के अंदर ही वह चौगान खेलते हुए अपने घोड़े से गिरकर मर गया।

ऐबक निश्चित रूप से मुहम्मद गौरी के सबसे कुशल सैनिकों में से था, उसने भारत में अपने मालिक की सत्ता का विस्तार, विशेष रूप से तराइन के युद्ध के बाद, करने में केंद्रीय भूमिका निभाई।

ऐबक की मृत्यु के बाद, प्रमुख तुर्की अमीरों ने आराम शाह नामक एक व्यक्ति को सिंहासन पर बैठा दिया। उसके बारे में हमारे पास अधिक जानकारी नहीं है और उसके बाद ऐबक के दामाद शमसुद्दीन इल्तुतमिश ने राजगद्दी संभाली।

शम्सी राजवंश

ऐबक की भांति इल्तुतमिश ने भी स्वयं को राजनीतिक दलदल में पाया, उसे न केवल तुर्की गुलाम अधिकारियों से निपटना था, जो स्वयं को उसके बराबर समझते थे बल्कि उसे तीन अत्यंत शक्तिशाली शत्रुओं-गज़नी में याल्दुज़, मुल्तान में कुबाचा और लखनौती में अली मर्दान का सामना भी करना था। सदैव विद्रोह करने वाले स्थानीय सरदारों ने उसकी कठिनाइयों को और बढ़ाया जो फिर से सिर उठाने लगे। जालौर और

रणथंभौर स्वतंत्र हो गए थे, जबकि अजमेर, ग्वालियर और दोआब ने भी स्वयं को तुर्कों से आज़ाद कर लिया था।

इल्तुतमिश के छब्बीस वर्ष के शासनकाल को विद्वानों ने तीन चरणों में विभाजित किया है । पहला 1210-1220 ई. तक जब उसने अपने शत्रुओं पर अधिकार जमाया; दूसरा 1221-1227 ई. तक जब उसने मंगोल समस्या का हल किया और तीसरा 1228-1236 ई. तक जब उसने राजवंश को सुदृढ़ करने में अपना समय लगाया।

इल्तुतमिश के राजगद्दी संभालते ही याल्दुज़ ने गज़नी छोड़ दिया, लाहौर पर कब्ज़ा किया और पंजाब में थानेसर तक अपनी सत्ता स्थापित की। इल्तुतमिश के पास उससे मिलकर युद्ध करने के अलावा कोई विकल्प ही नहीं बचा, हमले में याल्दुज़ की हार हुई और उसके कुछ ही समय बाद वह मारा गया।

लेकिन मंगोलों से बचते हुए ख्वारिज़्मी राजकुमार जलालुद्दीन मांगबरनी के अकस्मात आगमन से नई मुश्किलें खड़ी हो गईं। इस समय, चंगेज़ खान के अधीन मंगोल एक भयावह शक्ति थे। चंगेज़ खान स्वयं को "भगवान का अभिशाप" बताने में गर्व महसूस करता था। हालांकि इसके बाद दिल्ली सल्तनत को हमेशा मंगोल हमलों से खतरा बना रहा लेकिन भारत उनके द्वारा चीन, मध्य एशिया, रूस और फारस में किए गए विध्वंस से बचा रहा।

लेकिन अब पंजाब व ऊपरी सिंध सागर दोआब मंगोलों, कुबाचा और मांगबरनी के बीच युद्धक्षेत्र बन गया। अपने राज्य को बचाने के लिए इल्तुतमिश इस संघर्ष में तटस्थ रहा और जब तक चंगेज खान जीवित रहा (1227 तक) उसने सिंधु क्षेत्र में अपनी शक्ति का विस्तार करने का प्रयास नहीं किया। सन् 1224 में उसने तब चैन की सांस ली, जब मांगबरनी ने भारत छोड़ा। अब इल्तुतमिश राज्य के संकटग्रस्त क्षेत्रों पर खुलकर अपना ध्यान केंद्रित कर सकता था।

उसने सबसे पहले बंगाल पर दृष्टि डाली, जहाँ हुसमुद्दीन इवाज़ खिलजी वस्तुतः एक स्वतंत्र शासक के रूप में राज्य करने लगा था। इल्तुतमिश ने पूर्व दिशा की ओर कूच किया और उसने गंगा के दक्षिण में बिहार के सभी जिलों पर कब्ज़ा कर लिया। इवाज़ ने घुटने टेककर दिल्ली की प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली और एक भारी हरजाना देने के लिए तैयार हो गया। लेकिन इल्तुतमिश के लौटते ही उसने पुनः स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया, जिसके कारण सुल्तान को उसे उसके स्थान से हटाने के लिए एक सेना भेजनी पड़ी। दिल्ली की सेनाओं से हुए युद्ध में वह मारा गया। इल्तुतमिश ने अब लखनौती पर अपना कब्ज़ा कर लिया और अपने बेटे को वहाँ का प्रभारी नियुक्त कर दिया।

सन् 1226 में इल्तुतमिश ने रणथंभौर के विशाल किले पर कब्ज़ा किया और अगले ही वर्ष शिवालिक क्षेत्र में मंदसोर के किले पर, इसके बाद उसने चौहानों से जालौर छीना तथा फिर से बयाना और थंगीर हासिल किया। इसके अलावा उसने संघर्ष कर अजमेर, और जोधपुर में सांभर और नागौर पर भी फिर से कब्ज़ा कर लिया।

इल्तुतमिश ने भटिंडा (तब इसे तबरहिंद कहा जाता था), सुरसुति और लाहौर पर अपनी सत्ता कायम की। सन् 1228 में उसने उच्छ और मुल्तान पर एक के बाद एक हमले किए, जिनमें कुबाचा पराजित हुआ। कुबाचा ने आत्मसमर्पण करने के बजाय सिंधु नदी में डूबकर मरना पसंद किया। इसके बाद इल्तुतमिश ने सिंध और पंजाब पर अपनी पकड़ को और मज़बूत बनाया।

सन् 1231 में इल्तुतमिश ने ग्वालियर पर हमला किया, जो उत्तरी भारत के अनेक अन्य भागों की तरह जिन पर मुहम्मद गौरी का कब्ज़ा था, उनके हाथ से निकल गया था। ग्वालियर के किले ने ग्यारह महीने तक सामना किया लेकिन 1232 में जब परिहार शासक ने किला छोड़ दिया तो इल्तुतमिश ने उस पर कब्ज़ा कर लिया। इल्तुतमिश ने स्वयं नागदा पर आक्रमण का नेतृत्व किया, जो गुहिलोतों की राजधानी थी, लेकिन उसका हमला विफल कर दिया गया। गुजरात के चालुक्यों के साथ हुए मुकाबले में भी उसे नुकसान झेलना पड़ा।

सन् 1234-35 में इल्तुतमिश ने मालवा पर आक्रमण किया, भिलसा और उज्जैन को लूटा और उज्जैन के महाकाल देव मंदिर को नष्ट कर दिया। दोआब क्षेत्र में उसने बदायूँ, कन्नौज, बनारस, कटिहार, बहराइच और अवध को पुनः प्राप्त किया। उत्तर-पश्चिम में एक अभियान के दौरान वह बीमार पड़ा और 1236 में उसकी मृत्यु हो गई।

उपलब्धियाँ

इतिहासकार इल्तुतमिश को सल्तनत प्रशासन के तीन प्रमुख अंगों-इक्ता प्रणाली, सेना व मुद्रा-को सुव्यवस्थित करने का श्रेय देते हैं।

जीते गए क्षेत्रों पर बेहतर नियंत्रण के लिए इल्तुतमिश ने अपने तुर्की अधिकारियों को बड़ी संख्या में इक्ता (धन के स्थान पर तनख़्वाह के रूप में भूमि) प्रदान किए। अपनी स्थिति को मज़बूत बनाने के लिए उसने दो हज़ार तुर्की सैनिकों को दोआब क्षेत्र में बसा दिया। इसका एक अतिरिक्त लाभ यह हुआ कि अपने राज्य के लाभ के लिए वह इस क्षेत्र की आर्थिक क्षमता का लाभ उठा सका।

सुल्तान की सैन्य क्षमता को बढ़ाने के लिए इल्तुतमिश ने केंद्रीकृत रूप से सेना में भरती का प्रयास किया। उसने चाँदी का *टंका* और तांबे का *जीतल*, जो इस काल में प्रचलित दो प्रकार के सिक्के थे, परिवर्तित कर सल्तनत की मुद्रा-प्रणाली में अपना योगदान दिया।

इल्तुतमिश एक धर्मनिष्ठ मुसलमान था, जिसने अपने समय के प्रमुख सूफी संतों के लिए अत्यंत आदर दिखाया। उसने उलेमाओं को भी प्रश्रय दिया और उसके दरबार में धार्मिक मामलों पर अक्सर वाद-विवाद होते थे। उसे बगदाद के खलीफा से सम्मानस्वरूप एक चोगा और प्रतिष्ठापन का अधिकार मिला। उसने बगदाद के खलीफा का नाम अपने सिक्कों पर उत्कीर्ण कराया।

वह विभिन्न कलाओं को प्रोत्साहन देता था और उसने कुतुबमीनार का निर्माण कार्य पूरा किया।

रज़िया व अन्य उत्तराधिकारी

कहा जाता है कि इल्तुतमिश ने अपनी बेटी रजिया को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया, लेकिन उसके सामंतों ने इसे अस्वीकार कर उसके बेटे रुकनुद्दीन फ़िरोज़ शाह को सिंहासन पर बैठाया। रुकनुद्दीन के अल्पकालीन और महत्त्वहीन शासन पर उसकी माँ, शाह तुरकान, जो एक तुर्की दासी थी, छाई रही। उसके अवांछित प्रभाव से परेशान होकर तुर्की अमीरों ने रुकनुद्दीन को हटाकर रज़िया को सिंहासन पर आसीन किया।

अपने गुणों के बावजूद रज़िया कुछ खास नहीं कर पाई, क्योंकि गैर तुर्कों को सामंत बनाने के उसके प्रयासों से तुर्की अमीर उसके विरुद्ध हो गए। मलिक जमालुद्दीन याक़ूत को अमीर-ए-अखूर (घोड़े का सरदार) नियुक्त करने के रज़िया के निर्णय से वे खासे नाराज़ थे; अन्य गैर तुर्कों को महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त करने पर वे और नाराज़ हो गए।

तुर्की अफसरों ने इख्तियारुद्दीन एतगिन (अमीर-ए-हाजिब, अधिपति प्रबंधक) और मलिक अल्तुनिया (भटिंडा का गवर्नर) के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। उन्होंने रज़िया को गिरफ्तार कर इल्तुतमिश के तीसरे बेटे, बहराम शाह, को सिंहासन पर बिठाया। लेकिन उनकी योजना उस समय गड़बड़ा गई, जब नए सुल्तान ने अपनी स्थिति को सुधारने के लिए एतगिन को मरवा दिया। रज़िया ने मौके का लाभ उठाकर अल्तुनिया से विवाह कर लिया, जो बदलते हुए घटनाक्रम से असंतुष्ट था और उसने इस मौके को अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने का मार्ग समझा। उन्होंने मिलकर दिल्ली पर हमला बोला और राजगद्दी वापस हासिल करने का प्रयास किया लेकिन असफल रहे। वापस लौटते हुए वे डाकुओं के हाथों मारे गए। एक अन्य वर्णन के अनुसार रज़िया युद्ध में पराजित हुई और उसके पति सहित उसे मौत के घाट उतार दिया गया।

मध्यकालीन इतिहासकार मिनहाज उस सिराज इस प्रकार उसका वर्णन करता है "एक महान संप्रभु... उसमें राजाओं के लिए आवश्यक सभी प्रशंसनीय गुण व योग्यताएँ थीं।" सिंहासन ग्रहण करने के बाद उसने अपने महिलाओं वाले वस्त्र त्याग दिए और जनता के सम्मुख चोगा (काबा) और टोपी (कुलाह) पहनकर आई। वह हाथी की सवारी करती थी और किसी भी राजा की भांति राज्य का कामकाज संभालती थी।

रज़िया के साढ़े तीन वर्ष के अल्पकालीन लेकिन घटनापूर्ण शासनकाल में दो अभियान हुए। पहला रणथंभौर के विरुद्ध, जिस पर इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद चौहानों ने पुनः कब्जा कर लिया और स्वतंत्र हो गया था और दूसरा ग्वालियर के विरुद्ध, जिसने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया था। दोनों अभियान असफल रहे।

सन् 1242 में दो वर्ष के शासन के बाद तुर्की अमीरों ने बहराम शाह को कैद कर मौत के घाट उतार दिया। उसके स्थान पर उन्होंने रुकनुद्दीन फ़िरोज़शाह के बेटे मसूद शाह को दिल्ली की राजगद्दी पर बिठाया। चार बर्ष बाद, सन् 1246 में उसे भी बंदी बना लिया गया और उसका स्थान इल्तुतमिश के बेटे, नसीरुद्दीन महमूद ने ले लिया।

इल्तुतमिश की मृत्यु के एक दशक के अंदर, उसके तुर्की सामंतों ने उसके राजवंश के चार राजकुमारों को सिंहासन पर बिठाकर, उन्हें बंदी बनाकर मौत के घाट उतार दिया। अतः नए सुल्तान ने शौर्य के स्थान पर सावधानी से काम करते हुए स्वयं को पूरी तरह से अमीरों के हवाले कर दिया। एक समसामयिक लेखक ने नसीरुद्दीन की दुर्दशा का इस प्रकार वर्णन किया है; "बिना उनकी पूर्वानुमति के वह कोई राय नहीं देता था; वह हाथ-पैर भी केवल उनके आदेश पर ही हिलाता था। बिना उनकी जानकारी के वह न पानी पीता था और न ही सोने जाता था।"

ग़ियासुद्दीन बलबन

इल्तुतमिश का एक तुर्की गुलाम, ग़ियासुद्दीन बलबन अनेक वर्षों तक नसीरुद्दीन महमूद की शक्ति बना रहा। इब्नबतूता और इसामी के वर्णनों के अनुसार उसने अपने मालिक को ज़हर दे दिया और स्वयं सिंहासन पर आसीन हो गया। साथी तुर्क अमीरों के खतरों से अवगत और स्वयं को उस स्थिति से बचाने के लिए उसने गुलाम अभिजात्य वर्ग के अधिक से अधिक सदस्यों को समाप्त कर दिया।

दृढ़ीकरण

बलबन के शासनकाल को विस्तार का नहीं अपितु दृढ़ीकरण का काल माना गया है। उत्तर भारत में

मची लगभग पूरी उथल-पुथल को देखते हुए दृढ़ीकरण भी कोई छोटी उपलब्धि नहीं थी। दोआब और अवध में हर समय विद्रोह होता रहता था और कटिहार से राजस्व प्राप्त करना मुश्किल था। विद्रोही राजपूत सरदार बार-बार बदायूँ, अपरोहा, पटियाली, कांपिली सहित उनके अन्य गढ़ों पर बार-बार धावा बोल देते। राजधानी के आसपास का क्षेत्र पूरी तरह से असुरक्षित था, जबकि सुदूर प्रांतों में स्थिति इससे भी बदतर थी। ऐबक से लेकर कैकूबाद (1290 में मृत्यु) तक, कोई भी तुर्क शासक सल्तनत के क्षेत्रों में विस्तार करने में असमर्थ रहा। सभी मामलुकों ने अपनी शक्ति केवल उन क्षेत्रों को फिर से जीतने में लगा दी, जिन्हें मुहम्मद गौरी ने जीता था।

बलबन ने पहली बार उत्तरी भारत में अपनी शक्ति पर ज़ोर दिया जहां मिओ (मेवात क्षेत्र जो कि उत्तर पूर्वी राजस्थान के अनुकूल है, के निवासी जो कि यदुवंशी राजपूत थे) की हिम्मत इतनी बढ़ गई थी कि वे राजधानी में अक्सर लूटपाट करते। बलबन ने एक साल लगाकर उनका दमन किया। उसने जितने संभव थे उनको मार डाला और अन्य पर कड़ी नज़र रखने के लिए गोपालगीर में एक किला और अनेक थाने (सैन्य चौकियाँ) बनाए, जिन पर अफगान तैनात थे।

इसके बाद बलबन ने दोआब पर नियंत्रण का प्रयास किया, जहाँ विद्रोह की आग सुलग रही थी। इसके बाद उसने अवध को जाने वाली सड़क को व्यापारियों और काफिलों के लिए खोलने का प्रयास किया। इस कार्य में उसे लगभग छः महीने लग गए। कांपिली, पटियाली, भोजपुर और जलाली में उसने मज़बूत किले बनाकर उन्हें अफ़गानों के सुपुर्द कर दिया।

स्थानीय जनता को नियंत्रण में रखने के लिए बार-बार अफ़गान सैनिकों का प्रयोग मामलुकों की कठोर राज्य व्यवस्था का परिचायक है ।

कटिहार एक और ऐसा क्षेत्र था, जहाँ हर समय उथल-पुथल रहती। मध्यकालीन इतिहासकार, ज़ियाउद्दीन बरनी लिखता है कि यहाँ सब कुछ इतना अव्यवस्थित हो गया था कि बलबन ने यहाँ के सभी पुरुषों की हत्या का आदेश दिया। हालांकि यह अतिशयोक्तिपूर्ण हो सकता है, लेकिन यह निश्चित है कि सुल्तान इस क्षेत्र के निवासियों से अत्यंत क्रूरतापूर्ण तरीके से निपटा। बरनी के अनुसार, "हर गाँव के आगे शवों के ढेर लगे थे और सड़ते हुए शवों की दुर्गंध गंगा के तट तक पहुँच रही थी...। इस समय से लेकर जलालुद्दीन (ख़िलजी) के शासन तक किसी विद्रोही ने कटिहार में अपना सर उठाने की हिम्मत नहीं की।" तदनंतर बलबन ने विद्रोहियों को जूड पर्वतों (Salt Range) पर काबू में कर लिया।

मंगोलों के हमलों और सुल्तान की वृद्धावस्था से प्रोत्साहित होकर सन् 1279 में बंगाल के शासक, तुगरिल खाँ ने विद्रोह कर सुल्तान की पदवी ग्रहण कर ली और अपने नाम का *खुतबा* पढ़वा लिया। उसके विरुद्ध भेजी गईं तीन टुकड़ियाँ लगातार असफल रहीं, जिससे सुल्तान को स्वयं इस काम को अपने हाथों में लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। अंततः तुगरिल को पकड़ कर मौत के घाट उतार दिया गया और उसके साथियों को क्रूरतापूर्ण दंड दिए गए।

राजतंत्र का सिद्धांत

अपनी राजनीतिक कमज़ोरी के बावजूद बलबन राजतंत्र के विस्तृत सिद्धांत की रचना करने वाला दिल्ली का पहला सुल्तान था। उसके आलोचकों का

आरोप है कि स्वयं को सैद्धांतिक रूप से ऊपर उठाकर और शासन करने का दैवी अधिकार पाकर बलबन राजहत्या के लांछन को दूर करने की आशा करता था।

बलबन का राजतंत्र का सिद्धांत सासानिद फारस से अत्यधिक प्रभावित था, जहाँ राजतंत्र को एक अलौकिक घटना समझा जाता था। बलबन ने बार-बार इस बात पर ज़ोर दिया कि राजा ईश्वर की परछाई (ज़िलिल्लाह) और धरती पर उसका उप प्रतिशासक (नियाबत-ए-खुदाई) है । उसकी शक्ति व प्रतिष्ठा ईश्वर में निहित है न कि उसके सामंतों और प्रजा में। अत: वह केवल ईश्वर को जवाबदेह है और उसके कार्य जनता की छान-बीन और आलोचना से परे हैं।

अपने प्रतिष्ठित पद पर बल देने के लिए बलबन का आचरण जनता के समक्ष गंभीर रहता था और वह अपनी किसी भावना या कमजोरी को खुलकर नहीं दिखाता था। वह कभी दरबार में हँसता नहीं था, कड़ी औपचारिकताओं का पालन करता था और अपने दरबारियों के बीच उसने मदिरापान निषेध किया हुआ था। उसने आम जनता से दूरी बनाए रखी और वह आम जनता से बात भी नहीं करता था, वह हमेशा उच्च और नीच कुल के बीच के अंतर पर बल देता था। उसने एक बार कहा, ''जब मैं किसी नीच कुल में जन्मे व्यक्ति को देखता हूँ तो मेरे शरीर की प्रत्येक धमनी और नस गुस्से से फड़कने लगती है ।'' बलबन ने वंशावली पर बहुत जोर दिया। वह स्वयं को पौराणिक नायक अफ्रासियाब का वंशज मानता था। वह कभी भी दरबार में पूरे राजचिह्नों और शाही साज़-सामान के बिना नहीं आया। दरबार की रीतियाँ सासानिदों के समय की थीं और सुल्तान ने सिजदा (साष्टांग प्रणाम) और पायबोस (राजा के पैर चूमना) के दस्तूर को पुनर्जीवित किया

मूल्यांकन

कुछ विद्वानों का मत है कि बलबन का शासनकाल अन्य राजाओं के शासन की ही भाँति था सिवाय मेवात और दोआब के प्रति क्रूरता, अभागे विद्रोहियों, तुर्क गुलाम, अभिजात-वर्ग के सफ़ाए और इस्लाम धर्म अपनाने वाले निचली जाति के लोगों के लिए घृणा को छोड़कर। उनका कहना है कि हालांकि बलबन को एक कठोर शासक के रूप में दर्शाया गया है, लेकिन उसने कभी भी किसी राजपूत राजा से लड़ने का साहस नहीं किया।

वे इस मत से सहमत नहीं हैं कि बलबन अपनी शक्ति का संचय मंगोलों से लड़ने के लिए कर रहा था। उनके अनुसार महान मंगोल लड़ाकू, हलाकू, बलबन के सिंहासन ग्रहण करने से एक वर्ष पूर्व ही मर गया था। हलाकू के उत्तराधिकारी, इलखाँ मंगोल के राज्य में अपर्याप्त संसाधन थे और इसलिए उन्हें शक्ति भी नहीं माना जा सकता हालांकि वे बलबन के प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी, राजकुमार मुहम्मद को मारने में सफल रहे।

बलबन संभवत: एक अकुशल सेनापति था। उसकी सेनाओं को बंगाल के विद्रोही गवर्नर, तुगरिल को दबाने में तीन वर्ष से भी अधिक समय लगा। बलबन की सेना के निराशाजनक प्रदर्शन को देखते हुए विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अपने सिस्तानी और तुर्क सैनिकों सहित बलबन की सेना एक मात्र सजावटी वस्तु और आंतरिक एवं बाह्य खतरों से निपटने में अत्यधिक अकुशल थी।

असैनिक क्षेत्रों में भी बलबन का कौशल साधारण ही था। बलबन की अत्यधिक प्रशंसा करने के बावजूद मध्यकालीन इतिहासकार, मिनहाज उस सिराज उसे संस्कृति के प्रश्रयकर्ता के रूप में प्रस्तुत नहीं कर पाया।

मामलुक शासन का अंत

दिवंगत राजकुमार मुहम्मद के बेटे कैखुसरो को अपना उत्तराधिकारी नामित करने के बाद सन् 1286 में बलबन की मृत्यु हो गई। लेकिन उसके सामंतों ने उसके एक अन्य पौत्र, कैकुबाद को राजगद्दी पर बैठा दिया। जल्दी ही उसके स्थान पर उसके बेटे, कैमूर ने राजगद्दी संभाली, जो तीन महीने से कुछ अधिक समय तक ही राजगद्दी पर रहा। कुल मिलाकर बलबन का राजवंश उसकी मृत्यु के बाद तीन वर्ष से ज़्यादा समय तक नहीं चला।

मामलुकों के शासन में सरदार

मध्यकालीन इतिहासकार मिनहाज उस सिराज ने इल्तुतमिश के पच्चीस गुलामों की जीवनी का वर्णन किया है, जिन्हें वह शासक, शम्सुद्दीन इल्तुतमिश के नाम पर शम्सी गुलाम कहता है। इनमें से अधिकांश गुलाम तुर्क थे और उनमें से अधिकांश ने इल्तुतमिश और उसके उत्तराधिकारियों के शासन में उच्च पद संभाले। यह सूची यहीं समाप्त नहीं होती, क्योंकि इनमें मिनहाज द्वारा इल्तुतमिश के जिन गुलामों का उल्लेख नहीं किया गया है, वे भी शामिल हैं।

तुर्क सरदारों के वर्चस्व के बावजूद राज्य व्यवस्था में स्वाधीन तुर्क सरदार, ख़िलजी, गौरी और ताजिक जैसे अन्य विदेशी समूह शामिल थे। बलबन के समय से मंगोल एवं अन्य गुलाम समूह, अफ्रीकी (हब्शी, अबीसीनियाई) और भारतीय भी शासन में मदद करते थे।

अधिकांश शम्सी गुलामों को गुलामों के व्यापारियों से खरीदा गया था। कहा जाता है कि इल्तुतमिश ने अपने लिए गुलाम खरीदने के लिए व्यापारियों को समरकंद और बुखारा भेजा। तुर्कों की इस्लाम के प्रति श्रद्धा पर टिप्पणी करते हुए मध्यकालीन इतिहासकार फख्र-ए-मुदब्बीर ने पाया कि इस्लाम में धर्म परिवर्तन करने वाले सभी गैर मुसलमान "बड़ी लालसा के साथ अपने घर, माता-पिता व रिश्तेदारों को देखते हैं: इस्लाम को अपनाने के लिए वे कुछ समय के लिए बाध्य हैं, लेकिन अधिकांश मामलों में वे धर्म त्याग कर वापस मूर्तिपूजक बन जाते हैं । इसमें अपवाद है, तुर्क जाति जो इस्लाम स्वीकार कर उसमें अपना दिल ऐसे लगा देती है कि उन्हें न घर, न इलाका और न रिश्तेदार याद रहते हैं....।"

इल्तुतमिश के गुलामों के संबंध में अक्सर चिहलगानी शब्द का प्रयोग किया गया है । उसके सही अर्थ के बारे में विवाद है । कुछ इतिहासकारों का मानना है कि यह शब्द इल्तुतमिश के चालीस गुलामों के दल की ओर संकेत करता है । अन्य का यह कहना है कि वह शम्सी गुलामों में सेनापतियों के एक समूह की ओर संकेत करता है जिसमें से प्रत्येक चालीस गुलामों की एक कोर का नेतृत्व करता था।

तुर्क गुलामों ने रजिया का साथ उसके भाई, रुकनुद्दीन फिरोज़ शाह के विरुद्ध दिया जो ताजिक नौकरशाहों (ईरान और ऑक्सियाना के परे गैर तुर्क लोगों को ताजिक कहा जाता था) पर विश्वास करता था। लेकिन रज़िया द्वारा तुर्कों से अलग सत्ता स्थापित करने का प्रयास उसकी बेदखली का कारण बना। बहराम शाह और मसूद शाह के शासनकाल में तुर्क अमीरों ने अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए अन्य कई कदम उठाए। इन दोनों शासकों ने उनकी गतिविधियों पर अंकुश लगाने का प्रयास किया।

सत्ता संघर्ष में एक नया आयाम नसीरुद्दीन महमूद के शासनकाल में जुड़ा, जब सुल्तान द्वारा

कुछ ही समय के लिए नियुक्त मंत्री इमादुद्दीन रैहान के नेतृत्व में एक भारतीय मुस्लिम गुट ऊपर उठने लगा। इस गुट ने बलबन को भी अस्थाई रूप से दरबार से बाहर करवा दिया। लेकिन अपनी जाति पर गर्व करने वाले तुर्क इसे सहन नहीं पर पाए और उन्होंने जवाबी हमला किया। रैहान और उसके गुट को जल्दी ही भगा दिया गया।

कुछ आधुनिक इतिहासकारों का मानना है कि गुलाम अभिजात्य वर्ग के अनेक सदस्यों को मारकर बलबन ने भारत में तुर्कों की शक्ति को कमजोर किया। अन्य इतिहासकारों का मत है कि शम्सी सरदारों को गिराकर बलबन अपने गुलामों की उन्नति चाहता था। बलबन के शासनकाल में गुलामों की स्थिति और उनका वंश ऊँचे पद प्राप्त करने के लिए एक शर्त था और उसने उच्च पदों के भारतीयों को भी भर्ती किया। वह जूड पर्वतों के राजा के दो पुत्रों को जब उन्होंने इस्लाम अपना लिया, दिल्ली वापस ले आया।

बलबन के सरदारों में ताजिक और मंगोलों द्वारा कब्ज़ा किए गए देशों से आने वाले मुसलमान शामिल थे। दूसरी श्रेणी में खिलजी वंश का भावी संस्थापक जलालुद्दीन ख़िलजी शामिल था।

अभ्यास

1. दिल्ली के सुल्तान के रूप में इल्तुतमिश को किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उसकी प्रमुख उपलब्धियाँ क्या थीं
2. मियोस और कटिहार के विरुद्ध बलबन के अभियानों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
3. एक सुल्तान के रूप में आप बलबन का किस प्रकार मूल्यांकन करेंगे।
4. मामलुकों के शासनकाल में अभिजात्य वर्ग का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
5. संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए :
   (क) ऐबक
   (ख) बलबन का राजत्व का सिद्धांत
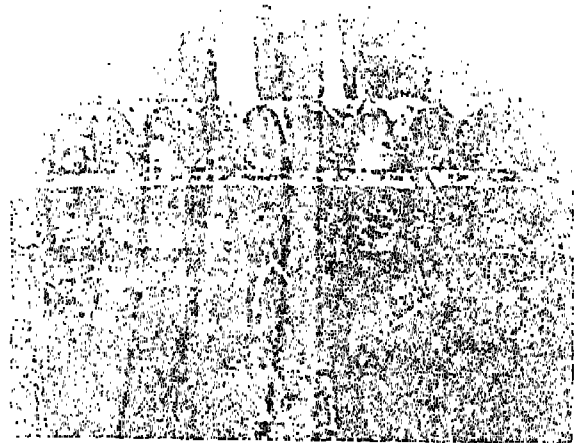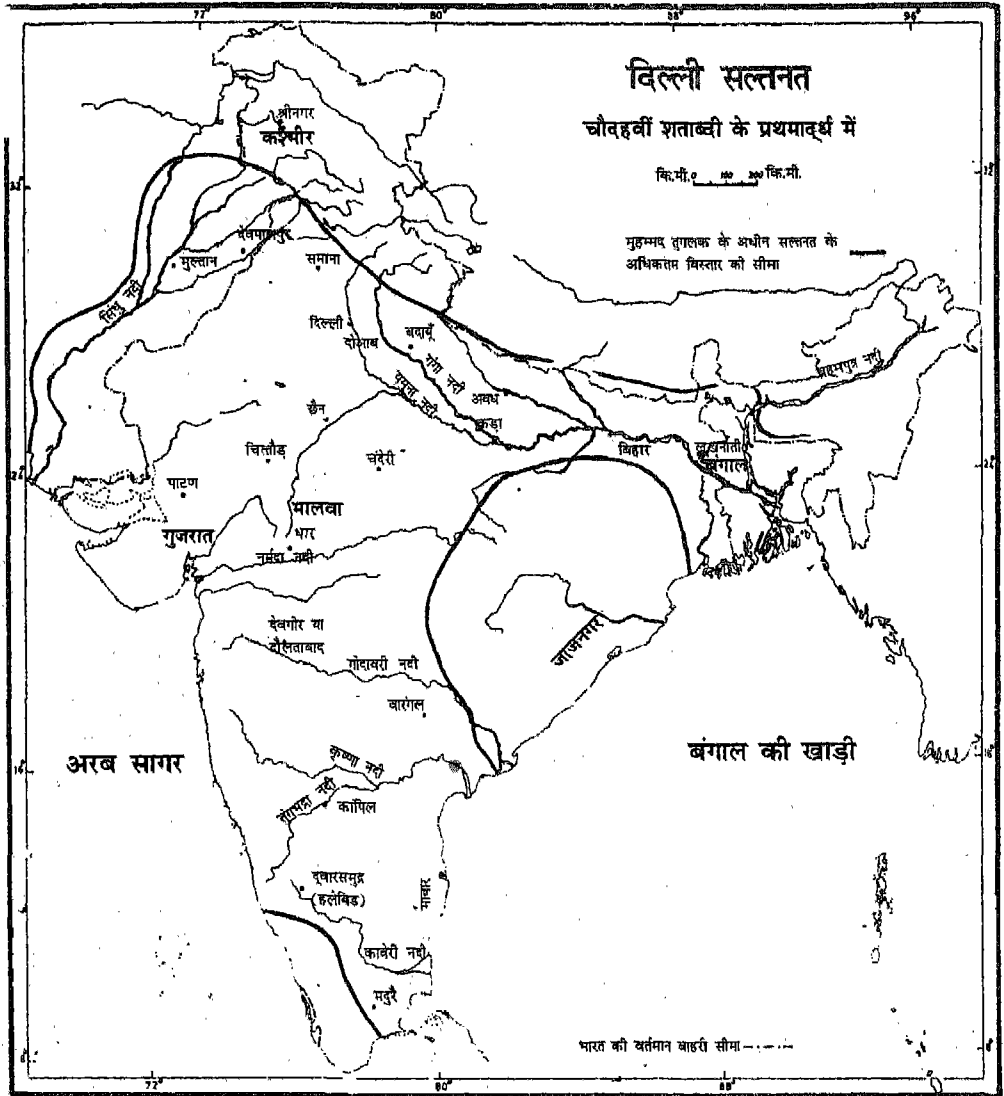
भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र में भारत का जनप्रदेश उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
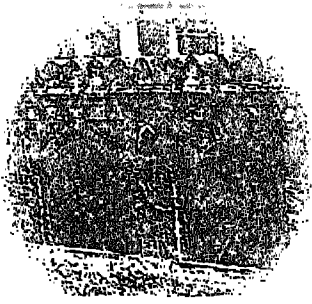
ख़िलजी (1290-1320 ई.)

सत्तर वर्ष की उम्र में 1290 ई. में दिल्ली की राजगद्दी संभालने वाले जलालुद्दीन ख़िलजी ने अनेक वर्षों तक बलबन के लिए कार्य किया था। उसका राजगद्दी संभालना मामलुक राजवंश के अंत और तुर्क गुलाम अभिजात-वर्ग के वर्चस्व का द्योतक था।

सुल्तान के सामने राज्य संबंधी गंभीर समस्याओं को सुलझाने की तुरंत आवश्यकता थी। सरयू नदी से लगे जिलों में विद्रोह के अलावा उसके सामने मंगोलों के हमले की समस्या भी थी, हालांकि मंगोल बिना युद्ध किए ही चले गए। इस्लाम स्वीकार करने वाले कुछ मंगोलों ने सुल्तान से, उन्हें भारत में रहने देने की प्रार्थना की, जिसे सुल्तान ने स्वीकार कर लिया।

जलालुद्दीन एक धर्मनिष्ठ मुसलमान था, जो *मुजाहिद फी सबीलिल्लाह* (ईश्वर की राह में संघर्षरत) के रूप में स्वीकारा जाना चाहता था। वह देश में इस्लामिक नियम व कानून लागू करने में अपनी असमर्थता को लेकर दुखी था। बरनी के अनुसार अपने खेद को वह इन शब्दों में अपने रिश्तेदार, मलिक अहमद चाप को व्यक्त करता है: "हम सुल्तान महमूद से अपनी तुलना नहीं कर सकते.... हिंदू.... हर दिन मेरे महल के नीचे से गुज़रते हैं, अपने ढोल और तुरही बजाते हुए और युमना नदी जाकर मूर्ति पूजा करते हैं....."

जलालुद्दीन ख़िलजी ने चौहानों की बढ़ती हुई शक्ति के विरुद्ध अभियान छेड़ा। उस समय चौहानों का केंद्र रणथंभौर था और उनका नेता हमीर देव था जो पृथ्वीराज द्वितीय का वंशज था। सल्तनत की सेनाओं ने हमला बोलकर मांडवार पर कब्ज़ा कर लिया, जो चौहानों की उत्तर में सुदूरतम चौकी थी। झैन का किला, जो कि चौहानों की राजधानी को जाने वाले रास्ते की रक्षा करता था, पर भी कब्ज़ा कर लिया गया। सैनिकों ने लूटपाट मचा कर माल जमा किया और मंदिरों को नष्ट किया। लेकिन सुल्तान ने सेना को होने वाली सैनिकों की क्षति को देखते हुए रणथंभौर पर हमला नहीं किया।

सुल्तान का भतीजा/भांजा और दामाद, भावी अलाउद्दीन खिजली, जिसे इलाहाबाद के निकट कड़ा मानिकपुर का शासक नियुक्त किया गया था, सुल्तान का स्थान लेने को उत्सुक था। अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए अलाउद्दीन ने सबसे पहले संसाधन संपन्न परमार राज्य मालवा पर हमला करने का निश्चय किया। कहा जाता है कि सुल्तान ने इस अभियान की इजाज़त दे दी, सोच समझ कर कम और उत्साह से ज़्यादा और 1292 में अलाउद्दीन ने चंदेरी के रास्ते भिलसा तक एक अभियान का नेतृत्व किया। वह विशाल खज़ानों और एक आधुनिक इतिहासकार के शब्दों में "कट्टरपंथी के पैरों तले अनिवार्य रूप से रौंदी जाने के लिए मूर्ति के साथ वापस लौटा।"

सन् 1295 में अलाउद्दीन ने स्वयं को और समृद्ध बनाने के लिए राम चंद्रदेव द्वारा शासित यादव राजधानी, देवगिरी पर अचानक हमला बोल दिया। तुर्क सेना द्वारा दक्षिण भारत पर यह पहला हमला था जिस पर तब चार शक्तिशाली राजवंशों का शासन था। देवगिरी के यादवों के अलावा, इनमें तेलंगाना के काकतीय, द्वारसमुद्र के होयसल व मदुरा के पांड्य शामिल थे।

यादव शासक इस अचानक हुए हमले के लिए तैयार नहीं था। उसकी सेना का एक विशाल हिस्सा उस समय उसके बेटे के साथ था, जो तीर्थयात्रा पर गया हुआ था। संघर्ष के बाद, जिसमें तुर्क सेना का पलड़ा भारी था, रामचंद्र देव ने समर्पण कर दिया और एक भारी रकम हरजाने के तौर पर देने के लिए राज़ी हो गया। सोने, चाँदी, मोती, बहुमूल्य पत्थर, गुलाम, हाथी और घोड़ों के रूप में लूटा गया माल इतना था, कि सामयिक पर्यवेक्षकों की दृष्टि में दिल्ली के किसी सुल्तान के पास उतना पहले कभी नहीं था। इसके तुरंत बाद सन् 1296 में अलाउद्दीन ने अपने चाचा को मारकर राजगद्दी हथिया ली।

अलाउद्दीन ख़िलजी

अलाउद्दीन ख़िलजी के सिंहासन संभालते समय, लगभग नब्बे वर्ष के शासन के बावजूद, तुर्क गुलाम अभिजात्य वर्ग भारत पर अपना कब्ज़ा जमाने में केवल आंशिक रूप से ही सफल रहा था। लाहौर से आगे पंजाब में अक्सर खोख्खर विद्रोह करते रहते। राजपूत राज्य किसी के आगे झुकने को तैयार नहीं थे। धार, उज्जैन और चंदेरी के अलावा वाघेलाओं के शासन में गुजरात में सदैव अस्थिरता बनी रही। दक्षिण भारत के राज्यों सहित बंगाल और बिहार भी दिल्ली के नियंत्रण से परे थे। इसके अलावा, बाहर से मंगोलों का खतरा तो सदैव ही बना था।

विजय

सन् 1299 में अलाउद्दीन ने शाही सेना को गुजरात पर हमला बोलने का आदेश दिया। हालांकि राज्य पर पहले भी हमले हो चुके थे, लेकिन अभी तक इसे तुर्कों द्वारा जीता नहीं जा सका था। वहाँ का शासक करण वाघेला, हमले के लिए तैयार नहीं था और उसने देवगिरी भागकर रामचंद्र देव से शरण माँगी। रामचंद्र देव की सहायता से उसने स्वयं को दक्कन से जुड़े गुजरात के एक राज्य, बगलाना में स्थापित किया।

सल्तनत की सेना ने गुजरात में भीषण लूटपाट और तोड़-फोड़ की। राज्य के खज़ाने और रानी कमला देवी शत्रुओं के हाथ पड़ गए। राजधानी अनहिलवाड़ और अन्य समृद्ध शहरों को लूट लिया गया। सोमनाथ का मंदिर भी, जिसका बारहवीं शताब्दी के मध्य में पुनर्निर्माण किया गया था, फिर से नष्ट कर दिया गया। इस घटना का उल्लेख अमीर खुसरो इन शब्दों में करता है, ''उन्होंने सोमनाथ के मंदिर को पवित्र काबा के आगे झुकने पर मजबूर कर दिया।'' इसके बाद शाही सेना खंभात की ओर बढ़ी और वहाँ के समृद्ध मुसलमान व्यापारियों से बहुमूल्य वस्तुएँ एकत्रित कीं। बंदी बनाए गए लोगों में एक गुलाम मलिक काफूर भी था, जिसने आगे जाकर सल्तनत के मामलों में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सन् 1301 में अलाउद्दीन ने अपनी सेनाओं को रणथंभौर को घेरने का आदेश दिया। सेना की असफलता के कारण सुल्तान को सारा काम अपनी निगरानी में करवाना पड़ा। उसके नेतृत्व में भी, लगभग एक वर्ष तक यह घेराबंदी चली। अंत में अलाउद्दीन ने छल द्वारा, इस गतिरोध का समाधान किया। उसने हमीर देव के प्रधानमंत्री को अपनी

ओर मिला लिया और इस प्रकार सफलतापूर्वक अभियान समाप्त किया। प्रमुख रानी सहित महिलाओं ने जौहर कर लिया, जबकि हमीर देव के नेतृत्व में आखिरी राजपूत तक लड़ता हुआ मारा गया।

सन् 1302 और 1303 के बीच अलाउद्दीन ने दो अभियान किए, एक वारंगल और दूसरा चित्तौड़ के विरुद्ध। तेलंगाना की राजधानी वारंगल पर तब प्रताप रुद्रदेव का शासन था। यह अभियान असफल रहा और सेना को वापस बुलाना पड़ा।

अलाउद्दीन ने स्वयं चित्तौड़ पर हमला किया। इल्तुतमिश के बाद वह पहला शासक था, जिसने चित्तौड़ पर कब्ज़ा करने का प्रयास किया। चित्तौड़ के साथ उस समय वहाँ के राजा रहे रतनसेन की सुंदर रानी पद्मिनी की कहानी जुड़ी है, जिसे मलिक मोहम्मद जायसी ने अपने प्रसिद्ध *पद्मावत* में अमर बना दिया है । लेकिन आधुनिक इतिहासकार इस कहानी को मात्र एक किंवदंती मानते हैं ।

चित्तौड़ पर पाँच महीने से अधिक समय तक घेरा पड़ा रहा। अमीर खुसरो कहता है कि सुल्तान ने आदेश दिया कि क्षेत्र के तीन हज़ार मुकद्दमों को मौत के घाट उतार दिया जाए। सुल्तान के बेटे और उत्तराधिकारी ख़िज्र खाँ के नाम पर चित्तौड़ का नाम बदलकर खिज़राबाद रख दिया गया। फ़रिश्ता लिखता है, अलाउद्दीन अपनी मृत्यु शैया पर था, ''चित्तौड़ के राय ने विद्रोह कर दिया। उसने किले में सुल्तान के अफ़सरों और आदमियों के हाथ तथा गर्दन बांध कर उन्हें प्राचीर से नीचे फेंक दिया।'' सदियों से चली आ रही राजपूत परंपरा के अनुसार चित्तौड़ एक बार फिर स्वतंत्र हो गया।

अलाउद्दीन ने सीवान और जालौर पर भी विजय प्राप्त की जो मारवाड़ का सबसे महत्त्वपूर्ण गढ़ था। अलाउद्दीन की राजपूत नीति पर टिप्पणी करते हुए, आधुनिक इतिहासकार कहते हैं कि, हालांकि वह किसी विद्रोही राजपूत शासक को झेलने के लिए तैयार नहीं था, लेकिन अलाउद्दीन ने स्वीकार किया कि राजस्थान पर कब्ज़ा एक अत्यंत लुभावना प्रस्ताव था।

अलाउद्दीन ने मालवा, उज्जैन, धार और चंदेरी पर विजय प्राप्त की। सन् 1306-07 में उसने दो अभियानों का बीड़ा उठाया, पहला राय करण और दूसरा देवगिरी के रामचंद्र देव के विरुद्ध, जिसने तीन वर्षों से लगान नहीं दिया था। दोनों में वह विजयी रहा।

सन् 1308 से 1311 के बीच अलाउद्दीन के गुलाम, मलिक काफ़ूर ने काकतीय, होयसल और पांड्यों के दक्षिण भारतीय राज्यों के विरुद्ध अनेक अभियान छेड़े। सन् 1308 में उसने पिछली हार का बदला लेने के लिए वारंगल पर धावा बोला और शासक को लगान देने के लिए बाध्य किया। सन् 1310 में उसने होयसल राज्य पर हमला किया, क्षेत्र में अनेक मंदिर लूटे और यहाँ के शासक वीर बल्लाल तृतीय को अपना मातहत बनने के लिए बाध्य किया। यहाँ से काफ़ूर ने पांड्य राज्य की ओर कूच किया। यह पहली बार था, जब सल्तनत की सेनाएँ मदुरै तक पहुँचीं। मलिक काफ़ूर ने मुख्य मंदिर को लूटा और नष्ट कर दिया, उत्तर दिशा में समुद्रतट की ओर बढ़ा, रामेश्वरम पहुँच कर, वहाँ के विशाल मंदिर को नष्ट कर एक मस्जिद बनाई, जिसका नाम उसने अलाउद्दीन के नाम पर रखा। सन् 1311 में वह दिल्ली लौटा। लूटे गए सामान में 312 हाथी, 20,000 घोड़े, 2,750 पाउंड सोना जिसका मूल्य दस करोड़ *टंका* था और आभूषणों के बक्से शामिल थे।

यद्यपि इन अभियानों को लेकर भारी उत्साह था, लेकिन इनका राजनीतिक लाभ सीमित था।

वारंगल और द्वारसमुद्र के शासकों ने बड़े-बड़े खज़ाने दिए तथा वार्षिक लगान देना स्वीकार किया, लेकिन यह स्पष्ट था, कि इन्हें प्राप्त करने के लिए वार्षिक अभियानों की आवश्यकता होगी। माबर में यह सीमित प्रबंध भी संभव नहीं हो सका, हालांकि काफ़ूर ने अनेक मंदिरों, जिनमें चिदंबरम के मंदिर भी शामिल थे, को नष्ट किया।

शुरू में अलाउद्दीन दक्षिणी राज्यों पर कब्ज़ा करने को इच्छुक नहीं था, लेकिन हालात ने उसे उस दिशा में धकेल दिया। सन् 1315 में रामचंद्र देव की मृत्यु के बाद उसके बेटों ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया, जिसके कारण सुल्तान को मलिक काफ़ूर को, फिर इस क्षेत्र पर नियंत्रण करने के लिए भेजना पड़ा। रामचंद्र का बेटा, शंकर देव मुठभेड़ में मारा गया लेकिन देवगिरी राज्य के अनेक सुदूर क्षेत्रों ने दिल्ली का नियंत्रण अस्वीकार कर दिया और कुछ रामचंद्र के उत्तराधिकारियों के पास ही रहे।

देवगिरी से काफ़ूर ने गुलबर्गा कूच कर, उस पर कब्ज़ा कर लिया। उसने रायचूर और मुद्गल में रक्षकसेना नियुक्त की, दाभोल और चौल के बंदरगाहों पर कब्ज़ा कर लिया तथा राज्य पर फिर से हमला बोल दिया।

अलाउद्दीन खिलजी के उत्तराधिकारी, मुबारक शाह खिलजी के काल में, देवगिरी पर एक बार फिर कब्ज़ा कर, उसे एक मुस्लिम शासक को सौंप दिया गया। वारंगल पर भी हमला कर, उसे लगान देने को बाध्य किया गया। मुबारक शाह के गुलाम, खुसरो खाँ ने माबर पर हमला किया, लेकिन उसे विजय हासिल नहीं हो सकी।

मंगोल

जिस वर्ष गुजरात पर हमला हुआ, उसी वर्ष चाघत्या मंगोल शासक, दुवा खाँ ने भारत के विरुद्ध अपनी सेना भेजी, जो पंजाब तक पहुँची। लेकिन अलाउद्दीन की सेनाओं ने उसे पराजित कर दिया। अलाउद्दीन का अन्य स्थानों पर ध्यान होने का फायदा उठाते हुए मंगोलों ने फिर से भारत पर हमला बोल दिया, लेकिन दिल्ली पर दो महीने घेरा डालने के बाद, वे वापस लौट गए।

उन्होंने दो और हमले किए, पहला 1305-06 में और दूसरा *1306-07* में। *1305-06* में उन्होंने शिवालिक पर धावा बोला, लेकिन दिल्ली की सेना के तीखे जवाब ने उन्हें आत्मसमर्पण करने पर विवश कर दिया। बरनी लिखता है, कि मारे गए मंगोलों के कम से कम 20,000 घोड़े सुल्तान के हाथ लगे।

अगले वर्ष मंगोल एक सेना के स्थान पर तीन अलग-अलग सेनापतियों के नेतृत्व में तीन रक्षक सेनाएँ लेकर लौटे। एक बार फिर, उन्हें पराजित होना पड़ा। दिल्ली की सेना ने सीमा तक उनका पीछा कर, जितनों को संभव था, मार गिराया। अत: मंगोल आतंक का अंत हुआ।

भूमि कर

कम लागत पर एक विशाल सेना को बनाए रखने के अलाउद्दीन के निश्चय ने उसे कर प्रणाली और मूल्य प्रक्रिया में अभिनव परिवर्तन करने को उकसाया।

इस्लामपूर्व भारत में कर की दर अधिकांशत: उत्पादन का एक-छठा हिस्सा होती थी और यह दिल्ली के सुल्तानों द्वारा उगाहे गए कर से कहीं कम थी। सल्तनत काल के प्रारंभ में भूमि पर कर नहीं लिया जाता था, इसके स्थान पर पराजित हिंदू शासकों पर लगान लागू कर दिया जाता था (इसे राइ या राना कहते थे)। हिंदू शासक अपने राज्य में गांव के प्रधान (खोत, चौधरी और मुकद्दम) से भूमि कर एकत्रित कर इस लगान को चुकाते थे, खराज

नामक इस्लामिक भूमि कर वास्तव में केवल पश्चिमी पंजाब के भूतपूर्व गज़नी क्षेत्रों में लागू किया गया और संभवत: तेरहवीं शताब्दी के अंत में इसे दिल्ली से जुड़े क्षेत्र में विस्तृत किया गया।

अलाउद्दीन के शासनकाल में उत्तर भारत के विशाल क्षेत्रों में भूमि कर के रूप में *खिराज* लिया जाता था। इसकी दर फ़सल का पचास प्रतिशत थी, सल्तनत में लागू इस्लामिक कानून की हनफ़ी शाखा द्वारा अधिकतम अनुमति प्राप्त थी।

अलाउद्दीन की आर्थिक नीतियों पर जानकारी का प्रमुख स्रोत - बरनी का इतिहास है। बरनी के अनुसार सुल्तान की नीतियाँ हिंदू सरदारों की शक्ति कम करने का प्रयास थीं। बाद में सुल्तान की यही नीतियाँ सुल्तान द्वारा कम कीमत पर एक विशाल सेना रखने की इच्छा का नतीजा थीं, जो कि मंगोल हमलों का मुकाबला करने के लिए आवश्यक थीं।

अलाउद्दीन के शासनकाल में भूमि कर प्रणाली की प्रमुख विशेषताएँ, ज़्यादा राजस्व की माँग, इसे लागू करने का तरीका और किसानों पर थोपे गए अतिरिक्त कर थीं। सुल्तान ने आदेश दिया कि कृषि हेतु सारी भूमि को प्रत्येक *बिसवा* (बीघा का बीसवां-भाग) के अनुसार नापा जाए। फसल को भी प्रत्येक *बिसवा* अनुसार नापा जाता था। किसी किसान की कुल पैदावार का हिसाब लगाने के लिए अनुमानित पैदावार को किसान के पास जितने बिसवा थे, से गुणा कर दिया जाता था। राज्य का हिस्सा इस अनुमानित पैदावार का आधा होता था।

भूमि कर का भुगतान अक्सर रकम में करना होता था, जिससे किसानों को मुद्रा बाज़ार में प्रवेश पर विवश होना पड़ा। बरनी लिखता है कि सुल्तान के प्रतिनिधियों की पकड़ इतनी मज़बूत थी कि किसानों को कर का भुगतान करने के लिए अपनी खड़ी फ़सल अन्न-व्यापारियों के हाथों बेच देनी पड़ी। दोआब क्षेत्र में *खिराज* को अन्न भंडारगृहों में रख दिया जाता था ताकि जब अन्न की कमी हो तो उसका इस्तेमाल किया जा सके। खिराज के अलावा, अलाउद्दीन किसानों से दो और कर भी लेता था, *चराई* (चरने पर कर) और गढ़ी (घरों पर कर)।

अलाउद्दीन की नीतियाँ न केवल कृषि-वर्ग के लिए कठोर थीं, बल्कि उनके कारण *खोत* और *मुक़दम* जैसे हिंदू मध्यस्थों की स्थिति कमज़ोर हो गई। पारंपरिक रूप से मध्यस्थ राज्य की ओर से किसानों से भूमि कर एकत्रित करते थे, जिसके बदले में उन्हें कुछ लाभ दिए जाते थे। लेकिन अलाउद्दीन मध्यस्थों से भी कृषकों की दर पर कर लेता था और उन्हें भी चराई और गढ़ी कर देने पड़ते थे। बरनी कहता है कि इन करों ने खोत और मुक़दम को इतना दरिद्र बना दिया कि "न सोना, न चाँदी, न टंका, न जीतल या अन्य कोई अनावश्यक वस्तु जो विद्रोह का कारण होती हैं, हिंदुओं के घरों में पाई जा सकती थीं।"

इसके अलावा, उनके द्वारा विद्रोह के ख़तरे को और कम करने के लिए अलाउद्दीन ने उन्हें घुड़सवारी और हथियार रखने की इजाज़त नहीं दी। लेकिन अलाउद्दीन की आर्थिक नीतियों को उसके उत्तराधिकारी, मुबारक शाह ने त्याग दिया।

बाज़ार विनियम

राज्य के अन्न भंडारों में अन्न संचय करने की अलाउद्दीन की नीति, सूखे में काम आने के अलावा उसकी मूल्य नियंत्रण नीति के लिए अत्यावश्यक थी। सुल्तान क्योंकि कम आय पर एक विशाल सेना रखना चाहता था इसलिए उसे यह सुनिश्चित करना जरूरी था कि आवश्यक वस्तुएँ कम दामों पर मिलें।

इसलिए उसने गुलाम, घोड़े, पशुधन के अलावा गेहूँ, जौ, चावल, दाल, कपड़ा, चीनी, गन्ना, फल, पशु वसा का अधिकतम मूल्य निर्धारित किया।

फ़रिश्ता के अनुसार यह मूल्य नियंत्रण सुल्तान द्वारा नियंत्रित अधिकांश क्षेत्रों पर लागू होते थे। लेकिन कुछ विद्वानों का मानना है कि इन्हें केवल राजधानी में ही लागू किया गया। दिल्ली में एक केंद्रीय अन्न बाज़ार (मंडी) स्थापित किया गया और शहर के हर मोहल्ले में कुछ छोटी-छोटी दुकानें। एक अलग बाज़ार (सराय-ए-अद्ल) में कपड़ा, चीनी, जड़ी-बूटियाँ, मेवे, मक्खन और चिराग के लिए तेल मिलता था, जबकि एक अन्य बाज़ार में घोड़े, गुलाम और गाय-बैल मिलते थे। बाकी सारी वस्तुएँ एक दूसरे बाज़ार में मिलती थीं।

राज्य द्वारा निर्धारित मूल्यों को कारगर रूप से लागू करने के लिए अलाउद्दीन ने एक बाज़ार अधीक्षक (शहना-ए-मंडी) नियुक्त किया, जिसकी सहायता एक गुप्तचर अधिकारी करता था। व्यापारियों की गतिविधियों पर कड़ी नज़र रखी जाती थी ताकि वे अनाज या अन्य वस्तुओं की जमाख़ोरी न कर सकें। राज्य के सभी व्यापारियों की सूची रखी जाती थी। इन व्यापारियों को लिखित आश्वासन देना होता था कि वे सराय-ए-अद्ल में बेचने के लिए निर्धारित मात्रा में वस्तुएँ लाएंगे। जासूसों का एक तंत्र सुल्तान को उसके आदेशों के उल्लंघन की जानकारी देता था। सुल्तान के आदेशों का उल्लंघन करने वालों को कड़ी सज़ा दी जाती थी, जिसमें जुर्माना, जेल, राजधानी से बाहर निकालना और चेहरे से मांस काटना शामिल था।

कहा जाता है कि अलाउद्दीन की नीतियों के फलस्वरूप कृषि उत्पाद का एक विशाल हिस्सा गाँवों से शहर और हिंदू सरदारों से मुस्लिम शासक वर्ग को अंतरित हुआ। इतिहासकारों ने अलाउद्दीन की आर्थिक नीतियों के पीछे छिपे सैन्य कारणों पर ज़ोर दिया है । एक विद्वान के अनुसार प्रायद्वीप के अधिकांश भाग पर मुस्लिम प्रभुता के विस्तार और अलाउद्दीन के प्रशासनिक सुधारों में स्पष्ट संबंध था, जिनके कारण सुल्तान कम आय पर विशाल संख्या में सेना खड़ी कर पाया।

स्थायी सेना

अलाउद्दीन स्थायी सेना का प्रबंध करने वाला दिल्ली का पहला सुल्तान था। फरिश्ता के अनुमान के अनुसार केंद्रीय सेना में 4,75,000 घुड़सवार और विशाल संख्या में पदाति थे। अपनी सैन्य व्यवस्था की कार्य क्षमता सुधारने के लिए सुल्तान ने उसके संघठन, साज-सामान और अनुशासन पर व्यक्तिगत रूप से अत्यधिक ध्यान दिया। उसने *दाग़* (घोड़ों को राजसी चिह्न से दागने की प्रथा) और *चेहरा* (सैनिकों के विस्तृत वर्णन) नामक दो प्रक्रियाएँ आरंभ की।

उत्तराधिकारी

सन् 1316 में अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद मलिक काफ़ूर ने सुल्तान के बड़े बेटों को नज़रअंदाज़ करते हुए एक छः-वर्षीय राजकुमार को राजगद्दी पर बिठाने का षड्यंत्र रचा। अलाउद्दीन के अंगरक्षकों ने जल्दी ही काफ़ूर को मार डाला और सुल्तान के सबसे बड़े बेटे मुबारक शाह को राजगद्दी पर बिठाया। अल्पकालीन शासन के बाद उसे उसके बेटे ख़ुसरो ख़ाँ ने सिंहासन से हटाकर स्वयं को शासक घोषित कर दिया।

ख़ुसरो ख़ाँ के बारे में विचारों पर मतभेद है, परवरी जाति से धर्मांतरित, कहा जाता है कि विजयनगर राज्य की स्थापना करने वाले हरिहर और बुक्का की

भाँति उसने भी पुन: अपने पूर्वजों का धर्म अपना लिया। उसके समय के मध्यकालीन लेखकों के अनुसार उसने स्वधर्म त्याग दिया था और वे लिखते हैं कि चारों तरफ इस बात को लेकर खुशी थी कि एक बार फिर दिल्ली पर हिंदुओं का शासन था। सिंहासन ग्रहण करते ही उसके अनुयायियों ने ख़िलजियों पर आतंक फैला दिया।

एक अन्य मत यह है कि तुर्क *अमीर* और *मलिक* खुसरो ख़ाँ से उसके कुल के कारण घृणा करते थे और इसलिए उन्होंने खुसरो ख़ाँ पर अपने महल में मूर्ति पूजा को बढ़ावा देने का आरोप लगाया। इस मत के अनुसार खुसरो ख़ाँ का शासनकाल भारतीय मुसलमानों द्वारा राजनीतिक प्रभुता हासिल करने का दूसरा प्रयास था। पहला प्रयास इमादुद्दीन रैहान ने किया था, जो मुश्किल से एक वर्ष तक ही प्रधानमंत्री रह सका और तुर्कों के हाथों पराजित हुआ।

सन् 1320 में ग़ियासुद्दीन तुग़लक़ के नेतृत्व में अफ़सरों के एक समूह ने विद्रोह कर खुसरो ख़ाँ को पराजित कर मार डाला और एक नए राजवंश का मार्ग प्रशस्त किया।

ख़िलजियों के शासनकाल में सरदार

ख़िलजियों के उदय से सल्तनत राज्य व्यवस्था में तुर्कों के वर्चस्व की स्थिति में बदलाव आया। ख़िलजी, बस्त और ज़मींदवार क्षेत्रों से ख़ानाबदोश थे जिनके पूर्वज संभवत: तुर्क थे लेकिन उन्हें तुर्कों से अलग माना गया। 'तुर्क' शब्द तुर्की गुलामों के लिए था जो ख़िलजियों के उदय पर हँसी उड़ाते थे।

जलालुद्दीन ख़िलजी ने अपने साथी ख़िलजी जाति के लोगों को महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया और साथ ही बलबन के सामंतों को भी बढ़ावा दिया। सामंतों के संघठन में अलाउद्दीन के शासनकाल में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ, जिसे विद्वान 'खिलजी विद्रोह' कहते हैं । जहाँ तक शासक वर्ग का प्रश्न है, बरनी अलाउद्दीन के शासनकाल को तीन कालों में विभक्त करता है । पहले काल में वे लोग समृद्ध हुए जिन्होंने उसकी राजगद्दी पाने में सहायता की; दूसरे में नौकरशाह; और तीसरे में उसका गुलाम सेनापति मलिक काफूर।

दो समूह जो अलाउद्दीन के शासनकाल में प्रमुख बनकर उभरे, वे थे अफ़ग़ान और सुल्तान के भारतीय गुलाम अधिकारी। कहा जाता है कि अलाउद्दीन के पास पचास हज़ार गुलाम थे, जिनमें से अधिकांश भारत के रहने वाले थे, जिन्हें स्थानीय राज्यों पर हमले कर हासिल किया गया था। भारतीय गुलाम अक्सर इस्लाम स्वीकार कर लेते थे और कुछ जैसे मलिक काफूर जो कि एक हिजड़ा था, को उच्च पदों पर नियुक्त किया गया। अपने शासनकाल के अंतिम वर्षों में अलाउद्दीन अपने गुलाम और हिजड़ों पर अत्यधिक आश्रित हो गया और उसने अनेक अनुभवी प्रशासकों को कार्य से हटा दिया।

तुग़लक़ (1320-1412 ई.)

ग़ियासुद्दीन तुगलक

सामयिक स्रोतों के अनुसार ग़ियासुद्दीन तुगलक क़रौना जनजाति से था। हालांकि क़रौना शब्द की उत्पत्ति के बारे में हमारे पास अधिक जानकारी नहीं है, यह शब्द संभवत: एक मिली-जुली प्रजाति की ओर इशारा करता था - मंगोल या तुर्की पिताओं और गैर-तुर्क माँओं के वंशज। राजगद्दी ग्रहण करने से पूर्व ग़ियासुद्दीन ने सल्तनत को मंगोल हमलों से बचाकर अपनी विशिष्ट पहचान बनाई थी और वह दिपालपुर में अनेक वर्षों तक अलाउद्दीन का *मुक्ता* भी रहा था।

शासन ग्रहण करने के बाद ग़ियासुद्दीन के सामने अनेक समस्याएँ आईं। देश के विशाल हिस्सों में न केवल शाही शासन को चुनौतियों का सामना करना पड़ा। बल्कि प्रशासनिक तंत्र भी बहुत कमज़ोर पड़ा। अपने अल्प अवधि के शासनकाल में उसने, इनमें से कुछ समस्याओं के समाधान का प्रयास किया।

विजय

ग़ियासुद्दीन ने दक्कन में सल्तनत का अधिकार पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया। उसने अपने बेटे, जौना ख़ान (भावी मुहम्मद बिन तुगलक) के नेतृत्व में वारंगल के काकतीय शासक के विरुद्ध दो अभियान भेजे। पहले अभियान में, काकतीयों ने बहुत बहादुरी के साथ लड़कर शत्रु सेना को पराजित कर दिया, लेकिन दूसरे अभियान में काकतीयों को आत्मसमर्पण पर विवश होना पड़ा। उपलब्ध दस्तावेज़ों से पता चलता है कि सन् 1323 में राजकुमार जौना ने माबर के विरुद्ध एक अभियान किया। इसके बाद उसने उड़ीसा राज्य पर भी एक हमला किया, जो उतना सफल नहीं रहा।

1324 ई. में सुल्तान ने स्वयं बंगाल पर एक अभियान का नेतृत्व किया, जो कि बलबन की मृत्यु के बाद से एक स्वतंत्र राज्य रहा था। इस अभियान में उसने पूर्वी और दक्षिणी बंगाल पर विजय प्राप्त की।

1325 ई. में ग़ियासुद्दीन के बेटे, मुहम्मद बिन तुगलक ने शासन संभाला। कुछ उल्लेखों के अनुसार जिस दुर्घटना में उसके पिता की जान गई, उसमें उसका हाथ था।

मुहम्मद बिन तुग़लक

मुहम्मद बिन तुगलक सल्तनत के इतिहास में सबसे अधिक विवादित व्यक्तियों में से एक है, जिसे उसके अव्यावहारिक कार्यों और उसके राज्य में हुए असंख्य विद्रोहों के लिए याद किया जाता है। सुल्तान की लगभग सभी सामयिक इतिहासकारों द्वारा भर्त्सना का कारण उसका हिंदुओं और जोगियों के साथ, सान्निध्य हो सकता है, जिसके कारण इसामी और बरनी जैसे इतिहासकारों ने उसे अधार्मिक घोषित कर दिया। यहाँ तक कि इसामी ने सुल्तान को काफ़िर घोषित कर उसके विरुद्ध युद्ध का आह्वान किया।

उलेमा, क़ाज़ी, खातीब (उपदेशक) और विधि वेत्ताओं सहित अनेक प्रभावशाली मुसलमानों ने सुल्तान के विरुद्ध विद्रोहों में भाग लिया। मुहम्मद ने अपने विरोधियों की निर्ममतापूर्वक हत्या कर दी, जिससे समुदाय के उच्च वर्ग के लोग उससे और भी रुष्ट हो गए।

राजधानी का स्थानांतरण

मुहम्मद बिन तुगलक को सबसे ज़्यादा उसके प्रारंभिक कार्यों में से एक राजधानी स्थानांतरण के लिए याद किया जाता है। बरनी के अनुसार 1326-27 में सुल्तान ने अपनी राजधानी दिल्ली से बदलकर दक्कन में देवगिरी (नाम बदलकर दौलताबाद) करने का निश्चय किया, क्योंकि उसकी स्थिति केंद्रीय थी। लेकिन इसामी का आरोप है कि सुल्तान दिल्ली के लोगों को शंका की दृष्टि से देखता था और इसलिए उनकी शक्ति को कम करने के लिए, उसने उन्हें महाराष्ट्र की दिशा में भेजने का निश्चय किया। कुछ आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार इस कार्य के पीछे सुल्तान की इच्छा दौलताबाद को इस्लामिक संस्कृति का केंद्र बनाना था क्योंकि दक्कन में मुसलमानों की संख्या कम थी।

मध्यकालीन इतिहासकारों का कहना है कि जब 1328-29 में योजना पर अमल शुरू हुआ, तो

सुल्तान ने उसका आदेश मानने वाले लोगों को सोना, नकद, और दक्कन में भूमि का अनुदान दिया। सन् 1335-36 में इस योजना को छोड़ दिया गया और सुल्तान ने, उन लोगों को जो लोग दिल्ली जाना चाहते थे, उन्हें इसकी अनुमति दे दी।

जिन दलों से दिल्ली छोड़ने को कहा गया और जिन्होंने ऐसा किया, उसको लेकर कुछ मतभेद हैं। बरनी के अनुसार, जनसंख्या का स्थानांतरण दो चरणों में हुआ। पहले चरण में सुल्तान की माँ, उनका परिवार और उनके पौत्र-पोत्रियाँ स्थानांतरित हुए। इसके बाद दिल्ली के आसपास के कस्बों के और राजधानी के निवासियों ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया।

जब मध्यकालीन इतिहासकार लोगों (खल्क़) का ज़िक्र करते हैं, तो उनका इशारा राजधानी के प्रमुख मुस्लिम परिवारों की ओर होता है, न कि पूरी जनता की ओर। उसी तरह दिल्ली के संदर्भ में शहर शब्द के दो अर्थ थे। जब बरनी दिल्ली का ज़िक्र करता है, तो उसका इशारा अक्सर पुराने शहर, ऐबक और इल्तुतमिश के क़िला राय पिथौरा की ओर होता है, न कि किलोखरी, सीरी, हज़ार सूतन और तुगलकाबाद की बस्तियों और महलों की ओर।

प्रतीकात्मक मुद्रा

सन् 1330-31 में खुरासान अभियान के लिए सुल्तान ने एक विशाल सेना खड़ी की, जिसमें अनुमानतः 4,70,000 से लेकर 3,70,000 तक सैनिक थे। यह स्थायी सेना के अतिरिक्त था। एक वर्ष बाद राजकोष द्वारा सेना की तनख्वाह दे पाने में असमर्थता ज़ाहिर करने के कारण सेना को भंग कर दिया गया। इतनी विशाल सेना को खड़ा करने की समस्या भुगतान के प्रकार में बदलाव करने से और भी विकट हो गई, जिसमें टुकड़ियों को अब राजस्व विभाग से सीधे तनख्वाह मिलती थी। इसी समय सुल्तान ने अपनी प्रतीकात्मक मुद्रा का प्रयोग भी आरंभ कर दिया।

बरनी के अनुसार मुहम्मद बिन तुगलक की विदेशी भूमि को जीतने की योजना और विदेशियों के प्रति उसकी असीमित उदारता ने राजकोष को काफी खाली कर दिया था, जिसके कारण प्रतीकात्मक मुद्रा के प्रयोग की आवश्यकता पड़ी। यह सभी ने स्वीकार कर लिया है, कि सुल्तान की खुरासान अभियान की योजना और उसके बाद कराचिल की असफलता से, सुल्तान के संसाधनों को काफी क्षति पहुंची। लेकिन कुछ इतिहासकारों का कहना है कि इनसे सुल्तान दिवालिया नहीं हुआ, क्योंकि जब मुद्रा प्रयोग असफल हुआ, तो उसने प्रतीकात्मक सिक्कों से हुई क्षति की सोने और चाँदी से भरपाई कर दी। इन विद्वानों का अनुमान है कि प्रतीकात्मक मुद्रा की योजना, विश्वभर में चाँदी की कमी का भी परिणाम हो सकती है ।

सुल्तान ने चाँदी के टंके के स्थान पर तांबे का सिक्का (जीतल) जारी किया और आदेश दिया, कि उसे टंके के बराबर ही समझा जाए। यह ताँबे के सिक्के लगभग 1329-1332 यानी तीन वर्ष तक प्रचलन में रहे, यह योजना बड़ी संख्या में नकली सिक्कों के प्रचलन के कारण असफल हो गई। शहर के बाहर हिंदू सरदार, इनका प्रयोग भूमि राजस्व दायित्व का निर्वाह करने के लिए करते थे, बरनी के उल्लेख के अनुसार, प्रत्येक हिंदू परिवार एक टकसाल बन गया। सरकार को आखिरकार इन सिक्कों को वापिस लेकर, इनके स्थान पर सोने और चाँदी के टंके जारी करने पड़े।

खुरासान और कराचिल परियोजनाएँ

खुरासान की सही भौगोलिक स्थिति को लेकर कुछ मतभेद हैं, बरनी के अनुसार यह इराक था; जबकि

फरिश्ता का कहना है, कि बड़ी संख्या में विदेशी अमीरों ने सुल्तान को इस बात के लिए राज़ी कर लिया था कि ईरान और तूरान पर विजय हासिल करना अत्यंत सरल होगा। कुछ आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार एशिया और फारस में एक राजनीतिक खालीपन था, जिसका फायदा मुहम्मद बिन तुगलक उठाना चाहता था। कुछ अन्य का मानना है कि खुरासान से तात्पर्य वर्तमान उत्तरी अफगानिस्तान के क्षेत्रों से है, जिन पर तब चाघत्या मंगोलों का कब्ज़ा था और इस अभियान का उद्देश्य मंगोल समस्या का समाधान ढूंढ़ना था।

दुवा खान के बाद तर्मशिरीन, चाघत्या मंगोलों का सबसे प्रमुख नेता था। उसने भारत पर हमला किया, लेकिन मुहम्मद बिन तुगलक के हाथों पराजित हुआ और इसके तुरंत बाद उसने इस्लाम धर्म में अपने को परिवर्तित कर लिया। कहा जाता है कि मुहम्मद बिन तुगलक और तर्मशिरीन में मित्रतापूर्ण संबंध बनने के बाद खुरासान योजना को त्याग दिया गया। मुहम्मद बिन तुगलक ने इल-खनिद मंगोलों के साथ भी मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित किए और जलालुद्दीन ख़िलजी की मंगोलों को नौकरी पर रखने की नीति को पुनर्जीवित किया।

बरनी के अनुसार, खुरासान सेना के एक हिस्से को कराचिल भेजा गया। लेकिन यह किस क्षेत्र की ओर इशारा करता है, इस पर कोई एक राय नहीं है। कुछ विद्वानों के अनुसार कराचिल, कुमाऊं और गढ़वाल क्षेत्रों को कहते हैं, जबकि अन्य का मानना है, कि इसका अर्थ कश्मीर है ।

गंतव्य चाहे जो भी रहा हो, इसमें कोई विवाद नहीं है कि पहाड़ों में सुल्तान की सेना को करारी हार झेलनी पड़ी और केवल कुछ ही सैनिक इस भयानक कहानी को सुनाने के लिए वापस लौटे।

दोआब में कर

खुरासान सेना के खर्च ने सुल्तान को दोआब में कर की दर बढ़ाने पर विवश कर दिया। क्योंकि वर्तमान *खिराज* फसल का आधा हिस्सा था, इसलिए बढ़ी हुई राजस्व की दर से किसानों के बीच अशांति फैल गई।

बरनी लिखता है कि "हिंदुओं ने अनाज के ढेरों पर आग लगाकर उन्हें नष्ट कर दिया और अपने घरों से पशुओं को खदेड़ दिया। सुल्तान ने *शिकदार* और *फौजदारों* (राजस्व एकत्रित करने वाले और सेनापति) को सब कुछ नष्ट कर देने का आदेश दिया। उन्होंने कई खोत और मुकद्दमों को मार डाला और अनेक को अंधा कर दिया। जो बच गए, वे दल बनाकर जंगलों में भाग गए; और देश नष्ट हो गया। ऐसे समय सुल्तान बरान जिले (आधुनिक बुलंदशहर) में गया और उसने आदेश दिया कि सारे बरान जिले को लूट कर नष्ट कर दिया जाए। सुल्तान ने स्वयं कन्नौज से लेकर दलमऊ तक लूटपाट की और तबाही मचाई। जो भी पकड़ा गया, उसे मार डाला गया। अधिकांश (किसान) जंगलों में भाग गए। उन्होंने (सुल्तान की सेना ने) जंगलों को घेर लिया और उन्हें जो कोई भी वहाँ मिला, उसे मार डाला"।

दिल्ली में, दोआब से अन्न न आने के कारण भोजन की भारी कमी हो गई और सूखा पड़ने से स्थिति और भी विकट हो गई। यह सूखा, मालवा और पूर्वी पंजाब में फैल गया। बरनी लिखता है कि दिल्ली के अधिकांश नागरिक या तो मारे गए या शहर छोड़कर भाग गए। सुल्तान ने कटिहार से अन्न लूटने का आदेश दिया, लेकिन इन क्रूर तरीकों से स्थिति संभल नहीं सकी। सुल्तान को दिल्ली छोड़कर अवध के उपजाऊ क्षेत्रों में जाने की अनुमति देनी

पड़ी और इब्नबतूता के अनुसार सुल्तान स्वयं अस्थाई रूप से (ढाई वर्ष के लिए) गंगा पर स्वर्गद्वारी चला गया। कहा जाता है कि यह सूखा सात वर्ष तक पड़ा रहा। सुल्तान ने पुनः खेतीबाड़ी शुरू करने के लिए किसानों को बड़ी मात्रा में धन दिया, लेकिन उसके प्रयासों को कुछ खास सफलता नहीं मिली।

बरनी लिखता है कि लालची आदमियों, जो कष्ट में थे और दुःसाहसिक व्यक्तियों ने तीन वर्ष के अंदर तीन लाख बीघा बंजर ज़मीन को उपजाऊ बनाने का बीड़ा उठाया। उन्हें सत्तर लाख टंके के बराबर ऋण (सोनधर) दिया गया, लेकिन उन्होंने सारा धन स्वयं पर खर्च कर दिया। लेकिन इससे पहले कि उन्हें अपने किए की सज़ा मिलती, सुल्तान की मृत्यु हो गई और वे बच गए।

विद्रोह

दोआब की उथल-पुथल से माबर, बंगाल और तेलंगाना जैसे दूरस्थ प्रांतों में विद्रोह की स्थिति पैदा हो गई। सुल्तान माबर को फिर से हासिल नहीं कर सका और कांपिली भी उसके हाथ से निकल गया, जहाँ दिल्ली की सेनाओं को पराजित करने के लिए एक शक्तिशाली आंदोलन शुरू हो गया था। इसका अंत 1336 में स्वतंत्र विजयनगर राज्य की स्थापना से हुआ। इस समय उसकी सेना में भीषण प्लेग फैल गया और आधे सेनापति और एक-तिहाई सेना इस महामारी की चपेट में आ गए। सन् 1334 के बाद हुए लगातार विद्रोहों का कारण शाही सेना की स्पष्ट कमज़ोरी थी।

सेना और राजस्व की कमी की दोहरी समस्या से मुहम्मद बिन तुगलक के शासन के अंतिम वर्षों में सल्तनत की स्थिति अत्यंत कमज़ोर हो गई। खेती कम होने के कारण राजस्व में आई कमी और अनेक प्रांतों के हाथ से निकल जाने से, सुल्तान को सल्तनत के अन्य क्षेत्रों से अधिक राजस्व माँगने को विवश होना पड़ा। लेकिन इन अवास्तविक ऊँचे लक्ष्यों को प्राप्त करने में असमर्थता के कारण जिन अधिकारियों को यह रकम उगाहनी थी, उन्होंने विद्रोह कर दिया।

अमीरन-ए-सदा के विद्रोह

मुहम्मद बिन तुगलक के शासन के अंतिम वर्षों में सौ गाँवों के विदेशी सामंतों, जिन्हें अमीरन-ए-सदा अथवा अमीर कहते थे, ने विद्रोह कर दिया।

कहा जाता है कि अमीरन-ए-सदा ने दक्कन पर शासन करने के सुल्तान की नई योजना के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, जिसके कारण उनका स्थान कोई और ले लेता और गुजरात और दक्कन के राजस्व पर ज़्यादा केंद्रीय नियंत्रण होता। सुल्तान ने यह कदम इसलिए उठाया क्योंकि वह सोचता था कि अमीर, केंद्रीय सरकार को राजस्व की बड़ी रकम नहीं दे रहे हैं । दक्कन और गुजरात के अमीरन-ए-सदा इस खबर को सुनकर और भी विचलित हो गए कि धार के शासक ने उनके अस्सी साथियों को मौत के घाट उतार दिया है ।

दौलताबाद के अमीरन-ए-सदा ने एक नया राजा चुनकर दक्कन के पहले स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। बहमनी राज्य के पूर्वगामी, इस राज्य का अगली डेढ़ शताब्दी तक दक्षिण के राजनीतिक परिदृश्य में वर्चस्व रहा।

बरनी को अपनी विवशता जताते हुए, सुल्तान कहता है, "मेरा राज्य रोगग्रस्त है और उस रोग की कोई दवा नहीं है । यदि वैद्य कटिवेदना का इलाज करता है तो ज्वर बढ़ जाता है; यदि वह ज्वर का इलाज करता है तो धमनियों में रुकावट आ जाती है । मेरे राज्य को एक ही समय में अलग-अलग बीमारियों ने जकड़ लिया है । यदि मैं एक जगह कुछ सही करता हूँ तो दूसरी जगह अव्यवस्था फैल

जाती है; मैं दूसरी जगह सही करता हूँ तो तीसरा स्थान अव्यवस्थित हो जाता है ।"

वह फिर विलाप करते हुए कहता है, "आजकल मैं लोगों से और लोग मुझसे नाराज़ हैं । लोग मेरे दिमाग को समझ गए हैं और मैं लोगों के दुष्ट और विद्रोही इरादों को समझ गया हूँ। मैं जो प्रयास करता हूँ असफल हो जाता है। विद्रोही, विरोधी, अवज्ञाकारी और बुरा चाहनेवालों का इलाज है तलवार। मैं तब तक अपनी तलवार चलाकर सजा देता रहूँगा, जब तक कि वह काट नहीं देती या चूक नहीं जाती। लोग जितना मेरा विरोध करेंगे, मेरी सज़ा उतनी ही ज्यादा होगी।"

सन् 1351 में मुहम्मद बिन तुगलक, अपने राज्य के अंतिम प्रमुख विद्रोही का पीछा करते हुए मारा गया। बरनी लिखता है, "अंततः लोगों को उससे मुक्ति मिली और उसे लोगों से।"

धार्मिक विचार

लोगों के सामने उसकी कठोर छवि के बावजूद मुहम्मद बिन तुगलक ने अपनी गैर-मुसलमान प्रजा और उनके धार्मिक नेताओं से अच्छा बर्ताव किया। उसने हिंदुओं को प्रश्रय दिया और उसने जिनप्रभ सूरी जैसे जैन विद्वानों का सम्मान किया, जो 1328 में दिल्ली में उसके दरबार आए। सुल्तान ने उन्हें अपने साथ बिठाया और उन्हें धन, भूमि और घोड़े दिए, जिन्हें लेने से संत ने इनकार कर दिया।

मुहम्मद बिन तुगलक ने भिक्षुओं के लिए एक नया विश्रामगृह, बसदि उपाश्रय, बनाने का भी आदेश दिया। कहा जाता है कि सुल्तान पालिथाना में शत्रुंजय मंदिर भी गया। मुहम्मद तुगलक जोगियों के अनेक समूहों से वाद-विवाद भी करता था। वह संभवतः होली के त्योहार में भाग लेने वाला पहला सुल्तान था।

लेकिन ऐसे ही कई कार्यों ने उलेमा और विदेशी सामंतों को नाराज़ कर दिया, हालांकि ये धर्म के मार्ग से उसे विमुख नहीं करते थे, जैसा कि इब्नबतूता लिखता है, "उसने आदेश दिया था कि प्रार्थना समूह में ही होनी चाहिए और इस आदेश का उल्लंघन करने वालों को कठोर सज़ा दी जाती थी।"

सुल्तान, शेख अलाउद्दीन का शिष्य था, जो कि शेख फरीदुद्दीन गंज-ए-शकर का पोता था। लेकिन वह सुल्तान शेख रुकनुद्दीन मुल्तानी के प्रति भी उतनी ही श्रद्धा रखता था। वह सल्तनत का पहला शासक था, जो अजमेर में शेख मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह और बहराइच में सालार मसूद गाज़ी के मकबरे में गया। इसके अलावा उसने बदायूँ में मीरन मुलहीम, दिल्ली में शेख निज़ामुद्दीन औलिया, मुल्तान में शेख रुकनुद्दीन, अजुधन में शेख मुल्तान और अन्य कई संतों की कब्र पर मकबरे बनवाए।

फिरोज़ शाह तुगलक

मुहम्मद बिन तुगलक का उत्तराधिकारी बना, उसका रिश्तेदार फिरोज़ शाह तुगलक। नया सुल्तान "एक अत्यंत सामान्य सेनापति भी नहीं था," और निश्चित रूप से "विजेताओं वाली तो कोई बात, उसमें थी ही नहीं।" पिछले शासन में हुई क्षेत्रों की विशाल हानि की भरपाई करना सुल्तान के लिए अत्यंत आवश्यक हो गया था। लेकिन फ़िरोज़ इस कार्य को कर पाने में असमर्थ रहा।

अभियान

सन् 1353 और 1359 में फ़िरोज़ तुगलक ने बंगाल में इकदला में दो अभियानों का नेतृत्व किया। दोनों ही मौकों पर उसे जल्दी सफलता मिल गई, लेकिन उसने बिना हमला किए ही संधि कर ली। लौटते हुए

वह रास्ता भूल गया और छः महीने बाद जाकर अपनी सेना से मिला।

फ़िरोज़ का सबसे लंबा अभियान थट्टा (सिंध) और गुजरात को था, जिसके दौरान उसने अपने सैनिकों के कष्ट से द्रविल होकर फिर से कभी भी युद्ध पर न जाने का निर्णय लिया। थट्टा अभियान को दिल्ली सल्तनत के इतिहास में सबसे अव्यवस्थित सैन्य कार्रवाई बताया गया है । थट्टा की लंबी घेराबंदी में शाही सेना के तीन-चौथाई घोड़े एक महामारी में मारे गए जबकि अन्न की कमी से मूल्यों में वृद्धि हुई, जिससे सैनिकों को भारी कष्ट का सामना करना पड़ा।

सुल्तान ने गुजरात की ओर बढ़ने और बाद में थट्टा लौटकर हमला जारी रखने का निर्णय किया। उसके सिंधी अंगरक्षकों ने सेना को जान-बूझकर कच्छ की खाड़ी की ओर पथभ्रष्ट कर दिया और अनेक कष्टों और जान-माल के भारी नुकसान के बाद ही, सेना गुजरात पहुँच सकी। संयोगवश थट्टा पर दूसरा हमला, हालांकि कठिन था, का अंत फ़िरोज शाह के पक्ष में हुआ।

फ़िरोज़ बाकी राज्यों के मामले में भी असफल रहा। उसने उड़ीसा के राजा पर हमला बोला, जगन्नाथ की मूर्ति को स्थान से हटा कर, मंदिर को अपवित्र कर दिया। फिर उसने समुद्र तट के निकट एक द्वीप पर घेरा डाला, जहाँ जाजनगर (उड़ीसा) के लगभग सौ हज़ार निवासियों ने शरण ली थी और "नास्तिकों को मौत के घाट उतार द्वीप को खून के तालाब में बदल दिया।" जब शासक ने शांति का प्रस्ताव रखा तो उसे काफ़ी सामान मिला और वह वार्षिक रूप से हाथी देने को भी राजी हुआ। राज्य में वर्तमान सत्ता समीकरणों में, बिना कोई परिवर्तन किए ही फ़िरोज़ पीछे हट गया।

उसका सबसे सफल अभियान नगरकोट के विरुद्ध था, जिसके शासक ने दिल्ली की प्रभुसत्ता को अस्वीकार कर दिया था। सुल्तान ने कई महीनों तक किले पर घेरा डाले रखा। अंततः राय ने आत्मसमर्पण कर दिया, कर देने के लिए राज़ी हो गया और उसने फ़िरोज शाह से आग्रह किया कि वह ज्वालामुखी तीर्थ को नष्ट न करे।

मंगोल

फ़िरोज़ तुगलक के शासनकाल में मंगोलों ने कोई हमले नहीं किए, क्योंकि अब सत्ता मंगोलों के हाथ से निकलकर बारलास तुर्कों के हाथ में आ गई थी। सन् 1370-1380 के बीच, मंगोलों के हाथ से विश्वभर में अपने लगभग तीन-चौथाई क्षेत्र निकल गए।

एक बारलास तुर्क, तैमूर ने चघत्या मंगोल राज्य के अवशेषों को एकत्रित कर, सन् 1398 में दिल्ली पर हमला किया। उसका विवाह चंगेज़ खान के शाही परिवार में हुआ था। बाबर और मुगल स्वयं को तैमूर का वंशज बताने में अत्यंत गर्व महसूस करते थे। मुगल वास्तव में बारलास तुर्क थे, न कि मंगोल हालांकि वे स्वयं को मंगोलों का भी वंशज बताते थे।

वंशानुगत कार्य

सामयिक इतिहासकारों के अनुसार फ़िरोज़ शाह के शासनकाल में केवल एक मुस्लिम सामंत ने विद्रोह किया। इसका एक कारण हो सकता है, सुल्तान द्वारा अमीरों को दी जाने वाली खुली छूट। उसने सल्तनत के एक विशाल हिस्से को उनके बीच इक्ता के रूप में बाँट दिया, उनकी तनख्वाह बढ़ाई और उनके पद, पदवी और इक्ता को दाययोग्य बनाया। वहीं उसने उनकी गतिविधियों पर सरकारी निरीक्षण को लगभग समाप्त कर दिया। इन कदमों से शासन

कमज़ोर हुआ, हालांकि ऐसा करने से सामंत प्रसन्न अवश्य हुए।

अफ़ीफ़ लिखता है कि फ़िरोज़ अपने अधिकांश सैनिकों को तनख्वाह के तौर पर ज़मीन देता था और उसने सेना में सभी पद वंशागत बना दिए, जिससे सेना की कार्यकुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। कहा जाता है कि सैनिकों के वंशज "सैनिक न रहकर पेंशनधारी हो गए जिन्हें निर्धारित गाँवों से भूमि राजस्व प्राप्त होता।" इसके अलावा ऐसा कोई नियम नहीं बनाया गया, जिससे प्रतिनिधि उन्हें मिली भूमि पर काम करने वाले किसानों से ज़्यादा कर न ले सकें और न ही प्राप्त कर केवल अपने पास रख सकें। सुल्तान की नीतियों के फलस्वरूप सेना में अनेक बुराइयाँ व्याप्त हो गईं।

फ़िरोज़ शाह के शासनकाल का मध्यकालीन भारत में सबसे भ्रष्ट शासनकाल के रूप में वर्णन किया गया है । युद्ध मंत्री, इमादुलमुल्क बशीर का मामला उस समय की स्थिति का सजीव वर्णन करता है । बशीर ने फ़िरोज़ के वंशागत गुलाम के रूप में काम शुरू किया और इस प्रकार काम करते हुए उसने तेरह करोड़ की संपत्ति एकत्रित की, जबकि राज्य की वार्षिक आय मात्र छः करोड़ और पचहत्तर लाख टंका थी। दूसरे शब्दों में उसकी निजी संपत्ति राज्य की दो वर्ष की कुल आय थी।

लोक निर्माण

फ़िरोज़ नई इमारतें खड़ी करने, पुरानी इमारतों को सुधारने और नहरों का निर्माण कराने में ज़्यादा रुचि लेता था। उसके द्वारा स्थापित महत्त्वपूर्ण शहरों में थे फतेहाबाद, हिसार, फिरोज़पुर, जौनपुर और फ़िरोज़ाबाद। उसने पाँच नहरों के निर्माण का आदेश दिया, जिनमें सबसे लंबी नहर यमुना से डेढ़ सौ मील लंबी थी। इन नहरों से फ़िरोज़ की आय लगभग दो लाख टंके प्रतिवर्ष थी, जो उसकी व्यक्तिगत आय का अंश मात्र थी। अफ़ीफ़ कहता है "दिल्ली के किसी भी निवासी की व्यक्तिगत संपत्ति फ़िरोज़ शाह जितनी नहीं थी; आखिरकार उसकी व्यक्तिगत संपत्ति का हिसाब रखने के लिए एक अलग विभाग स्थापित किया गया, जिसके अपने अधिकारी थे।"

धार्मिक स्थिति

मुहम्मद बिन तुगलक के शासनकाल में कुछ समय तक राज्य के मामलों में उलेमाओं का प्रभाव कम हो गया था, लेकिन फिरोज़ के शासनकाल में स्थिति पूर्ववत हो गई। उसके शासनकाल में जनता में धार्मिक भावनाएँ एक बार फिर मुखर हो गईं। कहा जाता है कि फ़िरोज़ का रवैया विशेष रूप से अपनी हिंदू प्रजा के प्रति कठोर था (उसकी माँ पंजाब के एक भट्टी सरदार की बेटी थी)।

फ़िरोज़ शाह ब्राह्मणों पर *जज़िया* लागू करने वाला पहला मुसलमान शासक था। अब तक ब्राह्मणों से कर नहीं लिया जाता था। इससे नाराज़ ब्राह्मणों ने सुल्तान के महल के बाहर एकत्रित होकर आत्मदाह की धमकी दी। सुल्तान ने जवाब दिया कि आत्मदाह द्वारा ही, वे इस कर से बच सकते थे। प्रमुख हिंदू नागरिकों ने ब्राह्मणों की ओर से यह कर चुकाकर इस स्थिति का हल निकालने का प्रयास किया।

सुल्तान ने अपने कई कार्यों का हिसाब रखा, जैसे मालवा, सलीहपुर और गोहना में तीन नए मंदिरों का विनाश। वह धर्म प्रचार को भी लेकर उत्सुक था, जैसा कि उसने अपनी आत्मकथा में कहा है। वह लिखता है, "मैंने अपनी नास्तिक प्रजा को पैगंबर का धर्म अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया, और मैंने

घोषणा की, कि जो भी मुसलमान बनेगा, उसे जज़िया या व्यक्ति कर अदा नहीं करना होगा। लोगों को जब यह जानकारी मिली तो बहुत संख्या में हिंदू वहाँ उपस्थित हुए और उन्हें इस्लाम धर्म में शामिल कर लिया गया।''

इतिहासकारों का कहना है कि सल्तनत काल के दौरान हिंदुओं से लगातार जज़िया नहीं लिया गया। उनके अनुसार, इसका मुख्य कारण यह था, कि राज्य के पास इतने बड़े कार्य के लिए प्रशासनिक ढांचे की कमी थी। सुल्तान की शक्ति अपने प्रमुख प्रशासनिक केंद्रों के अलावा अन्य स्थानों पर कम और केवल कहीं-कहीं पर थी। देहात में जज़िया को भूमि कर (खिराज) से मिला दिया गया और इसे अलग से एकत्रित नहीं किया जाता था।

सन् 1374-75 में बहराइच में सालार मसूद गाजी के मकबरे में जाकर, एक आधुनिक इतिहासकार के शब्दों में सुल्तान निश्चित रूप से 'कट्टर' हो गया। उसने अपने महल में भित्ति चित्रों को मिटाने, सोने और चाँदी के बर्तनों को गलाने और रेशम और कमखाब के वस्त्रों का प्रयोग रोकने का आदेश दिया।

इससे भी अधिक कट्टरपन का प्रदर्शन करते हुए, मुसलमान महिलाओं को घर से बाहर निकलने या दिल्ली शहर के बाहर मकबरे देखने जाने के लिए मना किया गया। शिया व इस्माइली जैसे भिन्न मतावलंबी इस्लामिक समूहों को दी जाने वाली सज़ा में वृद्धि हुई।

उत्तराधिकारी

1388 ई. में फ़िरोज़ की मृत्यु के बाद, एक के बाद एक कमज़ोर शासक उसके उत्तराधिकारी बने। उसके एक उत्तराधिकारी (महमूद तुगलक) के शासनकाल में तैमूर का विनाशकारी हमला हुआ, जिसने शीघ्र ही तुगलक वंश का अंत कर दिया।

तुगलकों के काल में सामंत

आधुनिक इतिहासकारों ने तुगलकों के शासनकाल में शासक वर्ग के संघठन का विस्तृत वर्णन किया है। गियासुद्दीन तुगलक के प्रारंभिक गुट में उसके रिश्तेदार, सीमा के साथी सेनापति और असहमत मंगोल शामिल थे। उसके समर्थन का आधार सीमित होने के कारण, उसे अपने प्रारंभिक वर्षों में अलाउद्दीन के सामंतों को अपने दरबार में शामिल करना पड़ा। लेकिन यह गठबंधन कुछ ही देर रहा और अंततः अनेक अलाई सामंतों को मौत के घाट उतार दिया गया। उनके स्थान पर सुल्तान ने उत्तर पश्चिम के अधिकारियों को पदोन्नति दी।

उसके बेटे मुहम्मद बिन तुगलक ने भी इस क्षेत्र के लोगों की ओर ही रुझान दिखाया। सिंहासन ग्रहण करते ही उसके द्वारा की गई नियुक्तियों में से लगभग पचास प्रतिशत लोग यहीं से थे। इनमें तुर्क, मंगोलिया के निवासी और फारसी शामिल थे। सुल्तान ने अरबों को शामिल करने के लिए अपने प्रतिनिधियों को फ़ारस की खाड़ी भेजा।

मुहम्मद बिन तुगलक ने अनेक गुलामों को नौकरी पर रखा, जिनमें हब्शी भी शमिल थे। इनमें से कम से कम एक आगे जाकर शासक बना। भारत में धर्म परिवर्तन करने वालों को भी वरिष्ठ पदों पर रखा गया। अज़ीज़ुद्दीन खम्मार को मालवा का शासक नियुक्त किया गया जबकि वारंगल अभिजात्य वर्ग के कवामुल मुल्क मकबूल, जिसका सुल्तान द्वारा धर्म परिवर्तन करवाया गया था, को मुल्तान, बदायूँ और गुजरात का राज्यपाल और अंततः नायब-वज़ीर नियुक्त किया गया। कांपिली के राय के बेटे जिसने इस्लाम स्वीकार कर लिया था, को भी उपयुक्त पद सौंपे गए।

सरकारी सेवा में अनेक हिंदुओं को शामिल किया गया। चुनार शिलालेख में साई राज नामक एक हिंदू वज़ीर का उल्लेख है । अन्य लोगों में शामिल हैं धारा, जिसे दक्कन का नायब वज़ीर नियुक्त किया गया और सहवान और गुलबर्गा के राज्यपाल रतन और भीरन राय। पुराने सामंत परिवार ऐसे पृथक लोगों की नियुक्ति के विरुद्ध थे और उनमें से अनेक ने तो सुल्तान की नीतियों के ख़िलाफ विद्रोह कर दिया। रतन और भीरन की हत्या कर दी गई।

फ़िरोज़ शाह को गुलाम हासिल करने का बहुत शौक था और उसने उन्हें अनेक पदों पर नियुक्त किया। कहा जाता है कि शाही गुलामों की संख्या 1,80,000 थी, जिसमें से कम से कम चालीस हज़ार या तो दरबार में या सुल्तान के परिजनों में शामिल थे। इस्लाम स्वीकार करने वाले भारतीय, जिनका सुल्तान से विवाह के कारण रिश्ता था, भी अभिजात्य वर्ग में शामिल थे और साथ ही कुछ स्थानीय राजकुमार भी।

अभ्यास

1. अलाउद्दीन खिलजी की राजपूत नीति का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. अलाउद्दीन खिलजी के भूमि कर सुधारों का वर्णन कीजिए। खोत, मुकद्दम और चौधरी के लिए वे किस सीमा तक हानिकारक सिद्ध हुए।
3. अलाउद्दीन के बाज़ार विनियमों की प्रमुख विशेषताएँ क्या थीं। उसकी विस्तार नीति से उनका क्या संबंध था।
4. खिलजियों के शासनकाल में सामंतों के संघटन का वर्णन कीजिए।
5. मुहम्मद बिन तुगलक द्वारा राजधानी के स्थानांतरण का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
6. मुहम्मद बिन तुगलक का प्रतीकात्मक मुद्रा प्रयोग क्या था और यह क्यों असफल हो गया।
7. फ़िरोज़ शाह तुगलक के सैन्य अभियानों का वर्णन कीजिए।
8. फ़िरोज़ शाह तुगलक के धार्मिक अनुकूलन का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
9. तुगलकों के शासनकाल में अभिजात्य वर्ग का संघटन किस प्रकार था।
10. संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए :
    (क) चित्तौड़ पर अलाउद्दीन का हमला
    (ख) मुहम्मद बिन तुगलक के खुरासान और कराचिल अभियान
    (ग) अमीरन-ए-सदा के विद्रोह
    (घ) फ़िरोज़ के शासनकाल में वंशानुगत नियुक्तियाँ
11. भारत के मानचित्र पर चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दिल्ली सल्तनत का विस्तार दिखाइए।

अध्याय 9
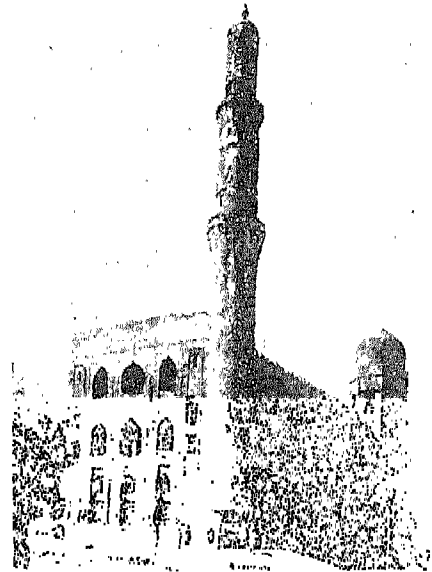
विजयनगर और बहमनी राज्य
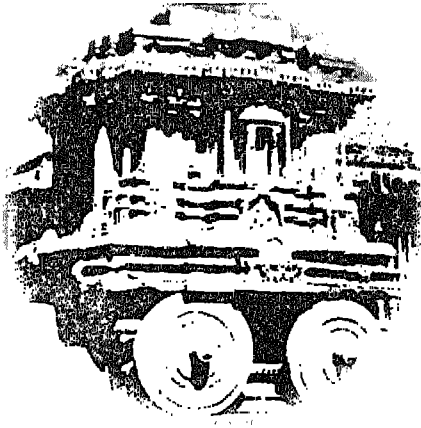
मुहम्मद बिन तुगलक के शासनकाल में दक्षिण में दो स्वतंत्र राज्यों का उदय हुआ - विजयनगर (1336 ई.) और बहमनी (1347 ई.)। विजयनगर साम्राज्य के उदय का कारण, चौदहवीं शताब्दी की तीसरी तिमाही में दक्षिण भारत में तुर्कों (तुरुष्क) के हमले को समझा जाता है । दिल्ली के सुल्तानों की पकड़ अपने पर से हटाने के लिए आंध्र के तटवर्ती ज़िलों में विजयनगर राज्य की स्थापना से पूर्व ही एक आंदोलन शुरू हो गया था। विलास अनुदान के अनुसार, प्रोलय नायक ने स्वयं को गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच के क्षेत्र का स्वामी बना लिया था और "ब्राह्मणों को उनके अग्रहार वापस लौटा दिए थे, जो कि भूतपूर्व राजाओं ने उन्हें अनुदान में दिए थे और जिन्हें उनसे उन गलत काम करने वालों (तुरुष्कों) ने ज़बरदस्ती छीन लिया था..." उसकी मृत्यु के बाद उसके रिश्तेदार कापय नायक ने उसका स्थान लिया।

सन् 1335 में माबर से एहसान शाह के विद्रोह ने मुहम्मद बिन तुगलक को दक्षिण में जवाबी हमले के बारे में सोचने पर विवश कर दिया, लेकिन उसके पड़ाव में फैले प्लेग ने उसे अभियान को अधूरा छोड़ने पर विवश कर दिया। कापय नायक ने स्थिति का फ़ायदा उठाते हुए तेलंगाना के मुसलमान शासक को खदेड़ कर वारंगल पर कब्ज़ा किया और आंध्रदेशाधीश्वर और आंध्रसुरात्रण की उपाधि ग्रहण की।

विजयनगर की स्थापना

अब यह विद्रोह कांपिली राज्य तक फैल गया, जहाँ की जनता ने, संभवत: सोमदेवराज के नेतृत्व में सल्तनत शासक के ख़िलाफ विद्रोह कर दिया। अपने सभासदों की राय पर मुहम्मद बिन तुगलक ने हरिहर और बुक्का, जो दोनों भाई थे, को दक्षिण भेजा। ये दोनों तब से उसके कब्ज़े में थे, जब से उसने कांपिली पर हमला किया था, और दोनों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया था। दोनों को कांपिली भेजने से पहले सुल्तान ने, उनसे निष्ठा की शपथ ली। स्थानीय लोगों ने अत्यंत उत्साह से दोनों भाइयों का स्वागत किया और उन्होंने जल्दी ही उस क्षेत्र में शांति स्थापित की।

कपालुरु और बागपल्ली अनुदानों के अनुसार सन् 1336 में महान संत और विद्वान विद्यारण्य की उत्प्रेरणा पाकर हरिहर और बुक्का ने विजयनगर की नींव रखी। विद्यारण्य आज भी एक रहस्य हैं। उनके बारे में कुछ अधिक पता नहीं है । कुछ विद्वान उनकी पहचान माधव से करते हैं, जो विजयनगर का पहला प्रधानमंत्री था, जबकि कुछ अन्य उन्हें शृंगेरी मठ के विद्या भारती से संबद्ध करते हैं ।

सामयिक मुसलमान विद्वानों के अनुसार कांपिली के पुराने राज्य से संबद्ध कुछ लोगों को मुहम्मद बिन तुगलक ने इस क्षेत्र में शांति स्थापित करने भेजा, जिन्होंने उसके विरुद्ध जाकर एक हिंदू

विजयनगर, पंपापति मंदिर, 1510 ई., पूर्वी गोपुरम

का प्रदर्शन किया। जब मदुरा के सुल्तान ने होयसल शासक, वीर बल्लाल तृतीय जिसे अक्सर दक्षिण में हिंदुओं का विजेता भी कहा जाता है, की हत्या कर दी तो होयसल राज्य बहुत कमजोर हो गया। सवाल था कि मदुरा और विजयनगर में से कौन उस पर कब्ज़ा करेगा। सन् 1346 तक विजयनगर ने संपूर्ण होयसल राज्य पर कब्ज़ा कर लिया।

लगभग चार दशक तक विजयनगर ने मदुरा के सुल्तानों से संघर्ष किया, जो कि दक्षिण में उनके प्रमुख विरोधी थे। इब्नबतूता ने मदुरा के चौथे सुल्तान द्वारा हिंदुओं के हत्याकांड का दिल दहलाने वाला वर्णन किया है । सन् 1356 ई. में हरिहर का उत्तराधिकारी उसका भाई बुक्का प्रथम बना, जहाँ उसने उत्तर में बहमनी सुल्तानों को व्यस्त रखा, उसके बेटे कुमार कंपन ने मदुरा राज्य को चुनौती दी और विजयी हुआ। यहाँ तक कि उसने उसके एक सुल्तान की हत्या भी कर दी। उसने कांची के राजसिंहेश्वर मंदिर और श्रीरंगम के रंगनाथस्वामी मंदिर की मूर्तियों को भी पुनर्स्थापित किया। अंततः, 1377 ई. तक मदुरा की सल्तनत पर विजय प्राप्त कर ली गई। अब विजयनगर साम्राज्य का विस्तार पूरे दक्षिण भारत में रामेश्वरम तक था और उसमें तमिल क्षेत्र व केरल भी शामिल थे।

साम्राज्य की नींव रखी। इसामी और बरनी भी कहते हैं कि दोनों भाइयों ने इस्लाम धर्म त्याग दिया।

हरिहर, बुक्का और उनके तीन अन्य भाई संगम के बेटे थे और उन्होंने जिस वंश की स्थापना की, उसे संगम वंश कहते हैं । तीन अन्य वंशों, सलुव, तुलुव और अरविडु ने विजयनगर पर शासन किया।

हरिहर और उसके भाइयों ने अपने राज्य की सीमाओं की रक्षा और विस्तार करने में अत्यंत उत्साह

विजयनगर–बहमनी संघर्ष

विजयनगर के उत्तरी विस्तार को 1347 ई. में स्थापित बहमनी साम्राज्य ने चुनौती दी। बहमनी साम्राज्य की एक स्थापना मुहम्मद बिन तुगलक के अफ़गान विद्रोही अधिकारी अलाउद्दीन हसन शाह बहमन ने की। दोनों राज्यों के बीच शत्रुता के तीन कारण थे, जिसके कारण उनके बीच लगातार संघर्ष होता रहा। विवाद के क्षेत्र तुंगभद्रा दोआब, कृष्णा–गोदावरी नदी घाटी और मराठा देश में कोंकण क्षेत्र थे। इससे पहले तुंगभद्रा दोआब पश्चिमी चालुक्य और चोलों तथा यादव व होयसलों के बीच वैमनस्य का कारण रह चुका था। कृष्णा–गोदावरी नदी घाटी और मराठा देश अत्यंत उपजाऊ क्षेत्र थे, जिनके समृद्ध बंदरगाह इस क्षेत्र में विदेशी व्यापार को नियंत्रित करते थे।

बुक्का प्रथम और तेलंगाना के राजा कापय नायक के अलाउद्दीन हसन शाह के बेटे और उत्तराधिकारी मुहम्मद शाह प्रथम के साथ हुए एक प्रारंभिक संघर्ष में, बुक्का प्रथम और कापय नायक हार गए। इससे अविचलित, तेलंगाना के शासक के बेटे, विनायक देव ने बहमनी साम्राज्य के साथ संघर्ष जारी रखा। इस अपमान का बदला लेने के लिए, बहमनी सुल्तान ने 1362 ई. में तेलंगाना पर हमला बोलकर राजकुमार को बंदी बना लिया और उसे क्रूरतापूर्वक मौत के घाट उतार दिया, लेकिन वापस लौटते हुए बहमनी सेना को एक क्रूर जवाबी हमला सहना पड़ा। लगभग दो–तिहाई सेना नष्ट हो गई। सुल्तान भी घायल हो गया। बदला लेने को आतुर सुल्तान ने तेलंगाना में अपनी सेना को छोड़ दिया। दो वर्ष तक बहमनी सेनाओं ने राज्य में लूटपाट मचाई। अंततः कापय नायक ने भारी हरजाना देकर शांति स्थापित की।

सन् 1367 में तुंगभद्रा दोआब को लेकर विजयनगर और बहमनी राज्यों में भयंकर संघर्ष हुआ। बुक्का प्रथम ने मुद्गल के किले पर कब्ज़ा कर लिया और एक आदमी को छोड़कर सारी रक्षकसेना को लड़ने भेज दिया। अति क्रोधित बहमनी सुल्तान फिर से मुद्गल पर कब्ज़ा कर बुक्का प्रथम की तलाश में निकला और उसने विजयनगर शहर के आसपास रहने वालों को मौत के घाट उतारने का आदेश दिया। कहा जाता है कि इस मुठभेड़ में पाँच लाख जानें गईं। इसके बाद शासकों ने आपस में समझौता किया कि आगामी युद्धों में आम नागरिकों को न मारा जाए। राजनीतिक समीकरणों में बिना ज़्यादा बदलाव के ये संघर्ष आगामी दशकों में भी जारी रहे।

सन् 1377 में बुक्का प्रथम की मृत्यु हो गई और उसका बेटा हरिहर द्वितीय उसका उत्तराधिकारी बना।

बुक्का प्रथम एक भीषण योद्धा और राजनेता था, जिसने लगभग पूरे दक्षिण भारत को विदेशी शासन से मुक्त कराया। उसने मंदिरों का पुनर्निर्माण और अग्रहारों को पुनर्जीवित किया। उसने अनेक विद्वानों को प्रश्रय दिया, जिनमें सबसे प्रमुख थे: सायणचार्य जिनकी वेदों पर विस्तृत व्याख्या का आज भी अत्यंत महत्त्व है। सायण का भाई, माधव, विजयनगर का प्रधानमंत्री था।

बुक्का के शासन के अंतिम वर्षों में विजयनगर की स्थिति का फरिश्ता ने जो वर्णन किया है, उसके अनुसार "बहमनी वंश के राजकुमारों ने अपनी श्रेष्ठता केवल अपनी शक्ति के बल पर बनाए रखी; क्योंकि शक्ति, संपत्ति और राज्य के विस्तार में बीजानगर के राजा उनसे कहीं आगे थे।"

सतत हमले

हरिहर द्वितीय के नेतृत्व में विजयनगर की सेनाओं के पूर्वी विस्तार को कोंडविडु के रेड्डियों ने रोका जो, स्वयं अपने राज्य का विस्तार करने का प्रयास

कर रहे थे। विजयनगर के पुराने मित्र कापय नायक की हत्या के बाद वेलम के राजा ने वारंगल पर कब्ज़ा कर तेलंगाना के विशाल हिस्सों को अपने नियंत्रण में ले लिया। वेलम शासकों ने विजयनगर के विरुद्ध बहमनी सुल्तानों से संधि कर ली, लेकिन पश्चिमी तट पर हरिहर ने बहमनी सुल्तानों से बेलगाम और गोवा छीन लिया।

हरिहर द्वितीय एक महान शासक था, जिसने शांति के दो दशकों में विजयनगर राज्य को सुदृढ़ कर, उसकी राजसी प्रतिष्ठा में वृद्धि की। वह विरुपाक्ष (शिव) का भक्त था, लेकिन उसने वैष्णवों और जैनों को भी उतना ही प्रश्रय दिया। *नानर्थ रत्नमाला* का लेखक इरुगपा जो कि एक जैन था, उसके प्रमुख सेनापतियों में से एक था।

हरिहर द्वितीय का उत्तराधिकारी उसका तीसरा बेटा देव राय प्रथम बना। उसके सिंहासन ग्रहण करते ही 1406-07 ई. में बहमनी राज्य के साथ युद्ध छिड़ गया, जिसमें उसे शांति स्थापित करने के लिए बहमनी सुल्तान से अपनी बेटी का विवाह करने के अलावा बंकापुर और भारी हरजाना देना पड़ा। इसके बाद के दशक में दोनों राज्यों में शांति रही। देव राय ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए रेड्डियों का सामना किया और चौल, दाभोल और कोरोमंडल पर कब्ज़ा कर लिया।

सन् 1417 में, बहमनी राज्य के साथ एक नया युद्ध आरंभ हुआ। अब देव राय ने वारंगल को बहमनी राज्य से अलग कर उसके साथ रेड्डी राज्य का विभाजन करने का समझौता किया जो, तब आंतरिक कलह से ग्रस्त था। वारंगल-बहमनी गठजोड़ के टूटने से दक्कन में राजनीतिक समीकरण बदल गए और सुल्तान फ़िरोज़शाह बहमनी की करारी हार हुई। देव राय ने कृष्णा नदी के उद्गम तक सारे प्रदेश पर कब्ज़ा कर लिया।

देव राय को उसकी जन कल्याण परियोजनाओं, जिनमें राज्य में सिंचाई को बढ़ावा देने के लिए तुंगभद्रा और हरिद्रा पर बांध बनाना शामिल है, के लिए याद किया जाता है । उसने मंदिर और पुजारियों को भी प्रचुर अनुदान दिए। इतालवी यात्री, निकोलो दि कोंती जो उसके शासनकाल में विजयनगर आया, लिखता है कि वह "भारत के अन्य राजाओं से अधिक शक्तिशाली था।"

संगम वंश का अंतिम महान शासक, देव राय का पोता, देव राय द्वितीय था, जिसने 1423 ई. में शासन संभाला। बहमनी सुल्तानों के साथ हुए प्रारंभिक संघर्षों से उसे विश्वास हो गया कि उसे अपनी सेना में बेहतर घोड़े और धनुर्धर शामिल करने चाहिए। इसलिए उसने दो हज़ार मुसलमानों को लिया और अपने हिंदू सैनिकों और अधिकारियों से उनसे धनुर्विद्या सीखने को कहा। फ़रिश्ता के अनुसार जल्दी ही उसके पास धनुर्विद्या में कुशल साठ हज़ार सैनिकों के अलावा आठ हज़ार घुड़सवार सेना और दो लाख पैदल सेना हो गई। इन सबसे सज्जित उसने तुंगभद्रा नदी पार कर बहमनी सुल्तान के साथ तीन भीषण युद्ध किए, जिनके अंत में दोनों सेनाएं वर्तमान सीमाओं को कायम रखने के लिए तैयार हो गईं।

देव राय द्वितीय संगम राजवंश के महानतम शासकों में था और उसे कभी-कभी इम्मादि देव राय भी कहते हैं । उसने न केवल विजयनगर की क्षेत्रीय संप्रभुता बनाए रखी बल्कि कोंडविडु राज्य पर विजय प्राप्त कर उसकी उत्तर-पूर्वी सीमा को भी सुरक्षित बनाया। पुर्तगाली लेखक नूनिज़ के अनुसार क्विलोन, सीलोन, पुलिकट, पेगु और तेनसेरिम के राजाओं ने उसे शुल्क अदा किया। हालांकि उसका झुकाव वीर शैववाद की ओर था, लेकिन वह सभी संप्रदाय व धर्मों के प्रति उदार था।

फारसी यात्री अब्दुर रज़्ज़ाक ने उसके राज्य के वैभव का वर्णन किया है । वह लिखता है "बीजानगर शहर ऐसा है, जैसा न आँखों ने देखा, न कानों ने सुना कि इस संसार में उसके जैसा कोई है...। राजा के महल में हौज़ जैसे अनेक कक्ष हैं, जो सोने-चाँदी से भरे हैं । इस देश के सभी निवासी, चाहे वे उच्च वर्ग के हों या निम्न वर्ग के, यहाँ तक कि बाज़ार के कारीगर भी अपने कान, गले, बाँह, हाथ के ऊपरी हिस्से और अपनी उँगलियों में मोती या बहुमूल्य पत्थर जड़ी अंगूठियाँ पहनते हैं...।"

बहमनी राज्य

इस काल में सबसे प्रमुख बहमनी शासक फ़िरोज़ शाह बहमनी था। एक-चौथाई शताब्दी (1397-1422) तक चले उसके शासन का अधिकांश भाग विजयनगर और उसके मित्र राज्यों के साथ युद्ध में गुज़र गया। उसने गोंड राजा खेरला के नरसिंह राय को पराजित कर बरार की ओर बहमनी राज्य के विस्तार की शुरुआत की। कृष्णा-गोदावरी नदी घाटी को नियंत्रण में करने के लिए फिर से संघर्ष आरंभ हुआ, लेकिन सन् 1419 में देव राय प्रथम के साथ हुए एक संघर्ष में फिरोज़ शाह पराजित हुआ और उसने अपने भाई अहमद शाह प्रथम के लिए सिंहासन त्याग दिया। अहमद शाह प्रथम ने बहमनी राजधानी गुलबर्गा से बीदर स्थानांतरित कर ली।

नए सुल्तान ने अपने शासनकाल की शुरुआत वारंगल से प्रतिशोध लेने के प्रण से शुरू की, जिसके द्वारा विजयनगर को दिए गए समर्थन ने उन्हें विजयी बनाया। अहमद शाह ने वारंगल पर हमला कर, उसके शासक को पराजित कर मार डाला और उसके अधिकांश क्षेत्रों पर कब्ज़ा कर लिया। इससे बहमनी साम्राज्य की शक्ति में अत्यधिक वृद्धि हुई। इसके बाद अहमद शाह ने मालवा, गोंडवाना और कोंकण पर अपनी शक्ति केंद्रित की।

बाद में एक ईरानी अप्रवासी, महमूद गवां, उसके राज्य का प्रधानमंत्री बना और उसने विजयनगर से गोवा और दाभोल बंदरगाहों पर कब्ज़ा कर राज्य का और विस्तार किया। उसने मालवा के शासकों के हमलों के चलते राज्य की उत्तरी सीमा को सुदृढ़ किया। अनेक प्रशासनिक सुधार, जिनसे बहमनी राज्य और शक्तिशाली हुआ, का श्रेय महमूद गवां को जाता है। उसने कला और शिक्षा को प्रश्रय दिया। उसने बहमनी राजधानी में जो मदरसा बनाया, उसमें एक साथ एक हज़ार शिक्षक और छात्र बैठ सकते थे और उसमें ईरान और इराक से भी विद्वान आते थे।

हालांकि राज्य के प्रति उसका योगदान प्रभावशाली रहा लेकिन दक्कनी (स्थानीय मुसलमान, अधिकांशतः सुन्नी) और अफ़ाकी (विदेशी मुसलमान, अधिकांशतः शिया) सामंतों के बीच शत्रुता के कारण, उसे नापसंद किया जाने लगा। सन् 1482 में सत्तर वर्ष की उम्र में सुल्तान मुहम्मद तृतीय के आदेश पर उसकी हत्या कर दी गई। इस घटना से आंतरिक संघर्ष और बढ़ा और बहमनी राज्य पाँच प्रदेशों में विभाजित हो गया - गोलकोंडा, बीजापुर, अहमदनगर, बरार और बीदर। अपने अस्तित्व के एक सौ पचहत्तर वर्षों में बहमनी राज्य पर अठारह राजाओं ने शासन किया, जिनमें से पाँच की हत्या कर दी गई, तीन को अपदस्थ कर दिया गया, दो को अंधा, जबकि तीन अत्यधिक मद्यसेवन का शिकार हुए।

विजयनगर का उत्कर्ष व पतन

देव राय द्वितीय की मृत्यु के बाद, विभिन्न प्रतिद्वंदियों में सिंहासन के लिए छिड़े युद्ध के कारण विजयनगर

में अव्यवस्था फैल गई। अंततः सलुव नामक एक नया राजवंश सत्ता में आया। इस राजवंश का शासन कुछ ही समय चला, जिसके बाद तुलुव राजवंश ने सत्ता संभाली, जिसका महानतम राजा कृष्ण देव राय (1509–1530) था।

कृष्ण देव राय को न केवल बहमनी राज्य व उड़ीसा के उत्तराधिकारी राज्यों से संघर्ष करना था, बल्कि पुर्तगालियों की बढ़ती हुई शक्ति का भी सामना करना था। पुर्तगाली समुद्र पर अपने नियंत्रण का प्रयोग तटीय क्षेत्रों में विजयनगर के अधीनस्थ राज्यों को डराकर उनसे अनुदान पाने के लिए करते थे।

उड़ीसा के शासकों से कृष्णा नदी तक सारे क्षेत्रों को अपने कब्ज़े में करने के बाद कृष्ण देव राय ने तुंगभद्रा दोआब को नियंत्रित करने के लिए फिर से संघर्ष की शुरुआत की। विजयनगर की सेनाएं रायचूर और मुद्गल को लूट कर बेलगाम तक पहुँच गईं। उन्होंने बीजापुर और गुलबर्गा में भी तबाही मचाई।
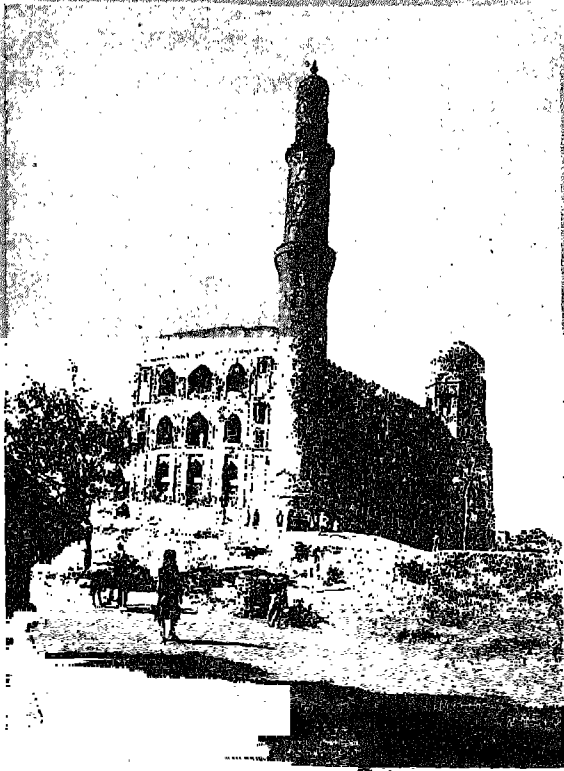
महमूद गवाँ का मदरसा, बीदर, 1481

कृष्ण देव राय विजयनगर के कुशलतम शासकों में था, जो अपने समकालीनों से कहीं श्रेष्ठ था। वह तेलुगु और संस्कृत में पारंगत विद्वान था और उसने तेलुगु, कन्नड़ और तमिल विद्वानों को प्रश्रय दिया। वह अपनी प्रजा के कल्याण को लेकर अत्यधिक चिंतित रहता था और उसने सिंचाई के उद्देश्य से राजधानी के निकट एक विशाल हौज़ का निर्माण कराया।

वह एक महान लोकोपकारक भी था। दक्षिण भारत में शायद ही ऐसा कोई प्रमुख मंदिर था, जिसे उसने अनुदान न दिया हो। उसने अपनी प्रजा को अपने धर्म का अनुसरण करने की पूरी स्वतंत्रता दी, जैसा कि बारबोसा के उल्लेख से स्पष्ट है । बारबोसा लिखता है, "राजा ने इतनी स्वतंत्रता दी है कि हर आदमी आ और जा सके और बिना किसी प्रकार की परेशानी झेले अपने धर्म का पालन कर सके,

अपनी रानियों के साथ कृष्णदेव राय, आंध्र प्रदेश, विजयनगर काल, सोलहवीं शताब्दी

चाहे वह ईसाई हो या यहूदी मूर हो या विधर्मी। न केवल शासक बल्कि लोग भी एक दूसरे से बराबरी और न्याय का वर्ताव रखते थे।"

कृष्ण देव राय की मृत्यु के बाद राम राज के नेतृत्व में एक त्रितंत्र ने शासन संभाला क्योंकि उसके सभी बेटे अवयस्क थे। राम राज ने दक्कनी राज्यों को एक दूसरे से भिड़ाने का प्रयास किया और पुर्तगालियों से भी एक समझौता किया, जिसके अनुसार उन्हें बीजापुर को घोड़ों की आपूर्ति तुरंत बंद कर देनी थी। अंततः दक्कनी राज्यों ने मिलकर 1565 में तालिकोटा में विजयनगर को करारी हार दी। इस युद्ध को उन दो गाँवों के नाम पर जिनके निकट यह लड़ा गया, राक्षस-टंगड़ी का युद्ध भी कहा जाता है। विजयनगर की सेनाओं को युद्ध में एक महत्त्वपूर्ण समय में अपने दो सेनापतियों के छोड़कर जाने से और दक्कनी सेनाओं द्वारा तोपों के कुशल प्रयोग से धक्का लगा।

लेकिन दक्कनी सुल्तानों की आपसी शत्रुता के कारण विजयनगर ने फिर से अपने कुछ क्षेत्रों पर कब्ज़ा कर लिया और इस युद्ध के लगभग सौ वर्ष बाद तक टिका रहा।

योगदान

विद्वानों के अनुसार विजयनगर युग दक्षिण भारत के मध्यकालीन इतिहास से आधुनिक भविष्य में परिवर्तन का द्योतक है । वे कहते हैं कि इस काल में दक्षिण भारतीय समाज में अनेक महत्त्वपूर्ण तरह से परिवर्तन आए।

प्रारंभिक सोलहवीं शताब्दी तक विजयनगर के राजाओं की दक्कन के आगे के क्षेत्रों में केवल कहने के लिए प्रभुसत्ता थी लेकिन इस्लाम से पैदा हुए खतरे का सामना करने के लिए अपनी सैन्य शक्ति को सुधारने की आवश्यकता ने उनकी राज्य व्यवस्था के स्वरूप को ही बदल दिया। सेना को बेहतर बंदूकों, घोड़ों और सैनिकों से सुधारने पर होने वाले खर्च को चुकाने के लिए कृष्ण देव राय ने चोल और पांड्य राजाओं के स्थान पर ब्राह्मण अधिकारियों और सेनापतियों (तेलुगु नायक) को रखा। अब इन्हें स्थानीय शासकों से खिराज एकत्रित करनी थी, जिन्होंने अब तक विजयनगर के राजा को कोई अदायगी नहीं की थी और केवल उसका प्रभुत्व स्वीकार किया था।

सैन्य आधुनिकीकरण ने मुद्रीकरण और अर्थव्यवस्था के नगरीकरण को बढ़ावा दिया, जो अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त होने वाली अधिक आय को प्रबलित करती प्रवृत्ति थी। साम्राज्य के पास

अनेक बंदरगाह थे। उसके हिंद महासागर के द्वीपों, मलय द्वीपसमूह, बर्मा, चीन, अरब, फारस, दक्षिण अफ्रीका और पुर्तगाल के साथ वाणिज्यिक संबंध थे।

मंदिरों ने नगरीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया। स्थानीय देवी-देवताओं का स्तर ऊँचा किया गया, जिससे तीर्थयात्रियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि और आसपास के क्षेत्रों का नगरीकरण हुआ। विजयनगर काल में कृषि का नदीय खेती से सूखे ऊपरी भागों की ओर विस्तार हुआ। समुद्रपार भारतीय वस्त्र की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए बड़ी संख्या में कपास और नील की खेती की गई।

अभ्यास

1. दिल्ली सल्तनत की दासता से मुक्त होने के दक्षिण भारत के निश्चय का एक आरंभिक उदाहरण दीजिए।
2. विजयनगर सम्राज्य की स्थापना में किन घटनाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।
3. विजयनगर पर शासन करने वाले विभिन्न राजवंशों के नाम बताइए।
4. विजयनगर और बहमनी राज्यों के बीच किन बातों को लेकर मतभेद था।
5. बुक्का प्रथम के शासनकाल में विजयनगर-बहमनी संघर्ष का वर्णन कीजिए।
6. देव राय द्वितीय के शासनकाल का मूल्यांकन कीजिए।
7. महमूद गवाँ ने बहमनी राज्य में क्या योगदान दिया।
8. कृष्ण देव राय के शासनकाल का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

अध्याय 10

संक्रमण काल
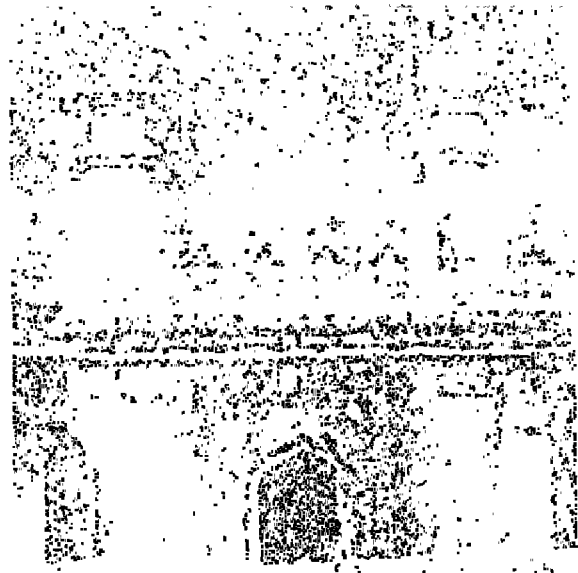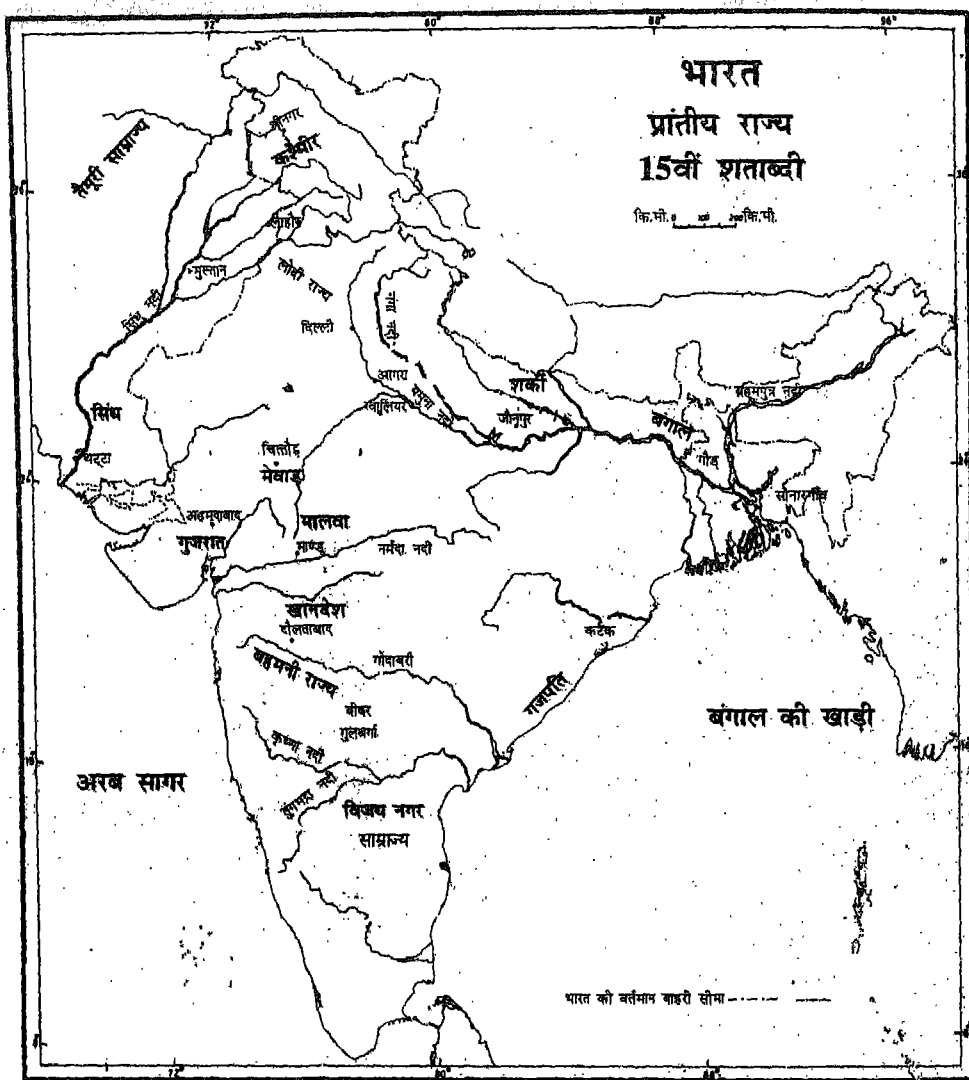
भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र में भारत का जनप्रदेश उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
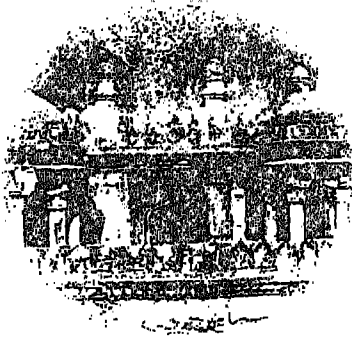
तैमूर का हमला

तुगलक काल के अंतिम वर्षों में मध्य एशियाई हमलावर तैमूर ने भारत पर हमले कर लूटपाट की। तैमूर ने अपने जीवनवृत्त *तुज़ुक-ए-तैमूरी* में अनेक बार यह लिखा है कि भारत पर हमला करने के पीछे उसके दो उद्देश्य थे। ''पहला, गैर-मुसलमानों पर हमले कर आने वाले जीवन में कुछ प्रतिफल कमाए।'' दूसरा ''इस्लाम की सेना गैर-मुसलमानों पर हमले कर कुछ रकम और बहुमूल्य वस्तुएँ लूट ले।''

दिल्ली जाते हुए तैमूर का जसरथ के नेतृत्व में खोखरों से कड़ा मुकाबला हुआ। झेलम के तट पर रहने वाले खोखर आरंभिक हमलावरों से मुकाबला करने के लिए जाने जाते थे और उन्होंने औरंगज़ेब के समय तक यह गतिरोध जारी रखा। राजधानी पहुँचने तक तैमूर ने असंख्य कस्बों और शहरों को लूटकर हज़ारों गैर-मुसलमानों की हत्या कर असंख्य को गुलाम बनाया। उदाहरण के लिए, दिपालपुर के किले पर अपने हमले का वर्णन करते हुए तैमूर अपनी आत्मकथा में लिखता है, ''थोड़े ही समय में किले में सभी लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया और एक घंटे के अंतराल में दस हज़ार गैर-मुसलमानों के सिर काट दिए गए। इस्लाम की तलवार गैर-मुसलमानों के खून से धो दी गई और किले में अनेक वर्षों से जमा की गई वस्तुएँ, खज़ाने और अन्न मेरे सैनिकों ने लूट लिए।''

तैमूर 1398 में दिल्ली पहुँचा। सैनिकों को आता हुआ देख मुहम्मद तुगलक, जो उस समय दिल्ली का सुल्तान था, अपने नागरिकों को लुटेरों की दया पर छोड़, शहर से भाग गया। एक सामयिक इतिहासकार, शराफुद्दीन अली यज़्दी, लिखता है - हिंदुओं के अनेक दल ''धृष्ट बनकर'' हमलावरों से ''लड़ने लगे'' जबकि अन्य लोगों ने अपनी पत्नी और बच्चों सहित अपने घरों को आग लगा दी, युद्ध में कूद पड़े और मारे गए।

तैमूर ने दिल्ली में हुए नरसंहार का सजीव वर्णन किया है। वह लिखता है, ''उस दिन, बृहस्पतिवार को और शुक्रवार को पूरी रातभर लगभग 15,000 तुर्क मारने, लूटने और नष्ट करने में लगे रहे। शुक्रवार को जब सुबह हुई तो मेरी सेना, जो अब काबू में नहीं थी, ने शहर में जाकर केवल मारने, लूटने और बंदी बनाने के अलावा कुछ नहीं सोचा। उस पूरे दिन लूटपाट सामान्य थी। अगले दिन, शनिवार सत्रह को सब उसी तरह गुज़रा और सबने इतना लूटा कि हर आदमी ने पचास से लेकर सौ आदमियों, औरत और बच्चों को बंदी बनाया। ऐसा कोई आदमी न था जिसने बीस से कम न लिए हों...। सैयद, उलेमा व अन्य मुसलमानों के रिहायशी इलाकों को छोड़ सारे शहर को लूटा गया।'' तैमूर के स्पष्ट कथन के बावजूद कुछ आधुनिक विद्वान मानते हैं कि यह मानने का कोई कारण नहीं है कि मुसलमान इस नरसंहार से बच गए।

सैयद (1414-1451)

भारत छोड़ने से पहले तैमूर ने खिज़्र खाँ, जो फ़िरोज़ तुगलक के एक प्रमुख अमीर का रिश्तेदार था, को बुलाया और कहा, "मैं तुम्हें दिल्ली और जो कुछ भी जीता है, सौंपता हूँ। इसलिए अनेक तुगलक सामंतों के विरोध के बावजूद सैयद नामक एक नए शासक वंश ने 1414 में दिल्ली का शासन संभाला।

तारीख-ए-मुबारक शाही के लेखक याह्या सरहिंदी का कहना है कि सैयद वंश का संस्थापक पैगंबर का वंशज था। इस परिवार का उदय संभवतः अरब में हुआ और ये मुल्तान चले गए जहाँ के शासक ने खिज़्र खाँ के पिता को अपने बेटे के रूप में गोद लिया। फिरोज़ शाह ख़िलजी ने खिज़्र खाँ को मुल्तान का शासक नियुक्त किया लेकिन उसे कुछ ही समय बाद उस प्रांत से निकाल दिया गया। तैमूर के हमले के समय वह फिर से राजनीतिक परिदृश्य पर उभरा जब वह उसके साथ मिल गया।

सल्तनत के सभी शासक वंशों में सैयद राजवंश का काल ख़िलजी के अतिरिक्त सबसे अल्प अवधि का था। इस राजवंश की कोई विशिष्टता नहीं थी सिवाय इसके कि यह सल्तनत के विघटन में महत्त्वपूर्ण साबित हुआ।

खिज़्र खाँ और उसके उत्तराधिकारियों, मुबारक शाह (1421-34), मुहम्मद शाह (1434-45) और अलाउद्दीन आलम शाह (1445-50), का शासनकाल कटिहार, बदायूँ, इटावा, पटियाली, ग्वालियर, बयाना, कांपिल, चंदावर, नागौर, मेवात और जौनपुर जैसे शरकी क्षेत्र जिनकी दिल्ली के सिंहासन पर नज़र थी, को नियंत्रित करने में गुज़र गया। सभी सैयद शासकों को वीर जसरथ के नेतृत्व में खोखरों से कड़ा मुकाबला करना पड़ा।

लोदी (1451-1526)

लोदी, सल्तनत काल का अंतिम और अफ़गानों के नेतृत्व वाला पहला शासक परिवार था। इस राजवंश के तीन शासक, बहलोल, सिकंदर और इब्राहिम राज्य का गौरव लौटाने में असफल रहे। उन्हें बाचगोती और भदौरिया जैसे विभिन्न राजपूत वंशों और जौनपुर के शरकी तथा सदैव विद्रोही ग्वालियर से निरंतर खतरा बना रहा।

बहलोल लोदी के शासनकाल की प्रमुख घटना थी-जौनपुर राज्य पर कब्ज़ा। इसके उत्तराधिकारी सिकंदर जो कि गुजरात के महमूद बेगड़ा और मेवाड़ के राणा सांगा का समकालीन था, का काल और भी यादगार रहा।

अपनी मूल परंपराओं के विरुद्ध सिकंदर ने अफगान सामंतों की तुलना में अपनी स्थिति सुधारने का अत्यधिक प्रयास किया। अफगान राज्य-व्यवस्था, जो कि विभिन्न जनजातियों का समावेश थी, का स्वरूप अत्यंत समतावादी था। सभी अफ़गान प्रमुख स्वयं को अफ़गान सुल्तान के बराबर मानते थे, जिसका पद अन्य लोगों के बराबर ही था।

इस परंपरा को बदलने के अलावा, सिकंदर साथ ही साथ प्रशासनिक व्यवस्था में भी नई जान फूँकना चाहता था। उसने अपना कुछ ध्यान वस्तुओं का मूल्य नियंत्रित करने में लगाया। उसके शासनकाल में तैयार की गई किराए की सूची शेर शाह सूर (शेर शाह सूरी के नाम से भी प्रसिद्ध) के शासनकाल में बनाई गई सूची का आधार बनी। उसने आगरा शहर के निर्माण का स्थान चुना। सिकंदर ने जजिया लागू किया और मंदिरों का विध्वंस किया।

लोदी राजवंश को बहलोली सिक्के, जो कि अकबर के शासनकाल तक प्रचलित रहे और

गज़-ए-सिकंदरी नामक माप के आधार, जो मुगल काल तक प्रचलन में रहा, के लिए याद किया जाता है।

इस राजवंश का अंतिम शासक पानीपत के युद्ध में मारा गया। *तारीख-ए खान-ए-जहानी* के अनुसार वह भारत का एकमात्र सुल्तान था जो युद्धक्षेत्र में मारा गया।

सल्तनत के अंत का सार बताते हुए एक विद्वान कहता है, "दिल्ली की सल्तनत जिसका 1192 में तराइन के युद्धक्षेत्र में जन्म हुआ, ने 1526 ई. में कुछ मील दूर पानीपत के युद्धक्षेत्र में अंतिम साँस ली।"

सल्तनत का विघटन

तुगलक शासनकाल के अंतिम वर्षों में दिल्ली सल्तनत का विघटन आरंभ हो गया था। तैमूर के हमले से इस प्रक्रिया में तेजी आई। इसके फलस्वरूप अनेक प्रांतीय शासक और स्वतंत्र प्रदेश स्वयं को स्वतंत्र घोषित करने लगे। दिल्ली से स्वयं को स्वतंत्र घोषित करने वाले राज्यों में बंगाल, सिंध, मुल्तान और दक्कनी राज्य सर्वप्रथम थे। गुजरात, मालवा और जौनपुर के शासकों ने भी यही किया। राजस्थान के राज्यों और उड़ीसा ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम रखा, जबकि कश्मीर चौदहवीं शताब्दी के मध्य तक हिंदू राज्य रहा।

पश्चिम में गुजरात, मालवा और मेवाड़ में प्रभुसत्ता के लिए संघर्ष चलता रहा, जबकि पूर्व में बंगाल को जौनपुर के शरकी और उड़ीसा के गजपति का सामना करना पड़ा। दिल्ली के शासक गंगा-यमुना क्षेत्र पर नियंत्रण के लिए जौनपुर से संघर्ष करते रहे। लोदियों द्वारा उस राज्य पर नियंत्रण करने के लिए मालवा के विघटित होते राज्य को लेकर गुजरात और मेवाड़ में कड़ा संघर्ष छिड़ गया।

पूर्वी क्षेत्र

बंगाल, कामरूप, उड़ीसा

तुगलकों के शासनकाल में बंगाल के शासक, शम्सुद्दीन इलियास खाँ ने दिल्ली से दूरी और केंद्रीय शासकों की व्यस्तता का फायदा उठाते हुए स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया। सुल्तान फ़िरोज़ तुगलक के दो अभियान भी दिल्ली की प्रभुसत्ता को बनाए रख पाने में असफल रहे, जिसके बाद बंगाल लगभग दो शताब्दियों तक स्वतंत्र रहा। इस दौरान बंगाल पर अनेक राजवंशों ने शासन किया।

इलियास खाँ परिवार के शासकों ने अनेक इमारतों का निर्माण किया और अपनी राजधानी पांडुआ और गौड़ में पत्थर व ईंट की अनेक सुंदर इमारतें बनवाईं, जिनमें क्षेत्र की वास्तुशिल्प शैली स्पष्ट थी। इस समय के प्रमुख बंगाली लेखकों में *श्रीकृष्ण विजय* के संकलनकर्ता मालधर बसु और उनका बेटा शामिल हैं जिसे सत्यराज खान की पदवी दी गई।

अलाउद्दीन हुसैन शाह (1493-1519) के शासनकाल की विशेषता थी—उच्च पदों पर आसीन हिंदुओं की बड़ी संख्या, जिसमें वज़ीर और मुद्रा के नियंत्रक शामिल हैं। प्रसिद्ध वैष्णव भाई, रूप और सनातन राज्य की नौकरी पाने वाले लोगों में शामिल थे।

इन वर्षों के दौरान बंगाल को ब्रह्मपुत्र घाटी में अपनी सत्ता का विस्तार करने में कुछ सफलता प्राप्त हुई। इस क्षेत्र में दो प्रमुख राज्य थे: पश्चिम में कामत (कामरूप) और पूर्व में अहोम। पंद्रहवीं शताब्दी में खेन ने कामरूप पर अपना शासन स्थापित किया। बंगाल के शासकों के कामत पर शुरुआती हमलों के मिश्रित परिणाम मिले और अलाउद्दीन हुसैन शाह के समय में राज्य पर बंगाल

ने कब्ज़ा किया। सुल्तान ने अपने बेटे को जीते गए क्षेत्र का शासक नियुक्त किया और क्षेत्र में शांति बनाए रखने के लिए कुछ अफ़गानों को भी यहाँ बसा दिया।

कुछ समय बाद, कोच जनजाति का विषसिन्हा, कामरूप के शासक के रूप में उभरा। इस जनजाति के एक अन्य शासक, नर नारायण के शासनकाल में राज्य का दो भागों में विभाजन हो गया—कूच बिहार और कोच हाजो।

तेरहवीं शताब्दी के आरंभ तक अहोम, जो कि शान जनजाति के थे, ने असम पर कब्ज़ा कर लिया। इस राजवंश का श्रेष्ठतम शासक अहोम राजा सुहुंगमुंग था। हिंदू रीति-रिवाज़ों को अपनाकर उसने अपना नाम बदलकर स्वर्ग नारायण रख लिया। महान सुधारक शंकरदेव के प्रयासों से वैष्णववाद ने इस क्षेत्र में बहुत प्रगति की। अलाउद्दीन हुसैन के बेटे के हमले को अहोम शासक ने नाकाम कर अपने राज्य का विस्तार किया। दिल्ली सल्तनत के काल में अहोमों ने कामरूप पर विजय प्राप्त की और उस पर तथा असम पर अपना कब्ज़ा जमाए रखा।

बंगाल को उड़ीसा का भी कड़ा सामना करना पड़ा। गंग राजवंश के राजाओं ने सल्तनत काल में भी राधा (दक्षिण बंगाल) और लखनौती पर हमले किए थे। गजपतियों के शासनकाल में मिदनापुर और हुगली ज़िले के विशाल भाग उड़ीसा में सम्मिलित हो गए। उड़ीसा के शासकों ने भागीरथी तक अपनी शक्ति का विस्तार करने का प्रयास किया लेकिन बंगाल के सुल्तानों ने उनके प्रयास को विफल कर दिया। सुल्तानों ने उड़ीसा पर जवाबी हमले किए लेकिन वे शासकों को हटाने में नाकाम रहे।

पश्चिम भारत

गुजरात

हालांकि गुजरात ने तैमूर के हमले के तुरंत बाद अपनी स्वाधीनता घोषित कर दी थी, लेकिन 1407 में ज़फर खाँ (इस्लाम में धर्म परिवर्तन करने वाले एक राजपूत का बेटा) ने मुज़फ्फर शाह की पदवी लेकर स्वयं को औपचारिक रूप से शासक घोषित कर दिया। जल्दी ही गुजरात राज्य का मालवा के साथ एक लंबा युद्ध छिड़ गया। उसके शासक, हुशंग शाह को मुज़फ़्फ़र शाह ने बंदी तक बना लिया था, लेकिन इस क्षेत्र को काबू करने में आने वाली कठिनाइयों के कारण उसे फिर से गद्दी पर बिठा दिया गया। मालवा ने इस अपमान का बदला लेने का निश्चय किया, जिसके कारण दोनों राज्यों के बीच विनाशकारी युद्ध छिड़ गया।

मुज़फ्फर शाह के पोते, अहमद शाह प्रथम (1411-43) ने अपने राज्य का काफी विस्तार किया, प्रशासन का पुनर्गठन किया और पुराने शहर असावल के स्थान पर नई राजधानी अहमदाबाद की स्थापना की। उसने अनेक मस्जिदों, मदरसों और महलों का निर्माण कराया, जिनमें क्षेत्रीय परंपरा की छाप है। अहमद शाह ने सौराष्ट्र, गुजरात और राजस्थान सीमा पर अनेक राजपूत राज्यों में संघर्ष किया। वह गिरनार (सौराष्ट्र में) के किले पर कब्ज़ा कर पाने में सफल रहा लेकिन उसने उसके शासक को हरजाना दिए जाने की शर्त पर शासन वापस कर दिया। उसने झालावाड़ और डुंगरपुर के राजपूत राज्यों पर भी कब्ज़ा कर लिया।

अहमद शाह ने सिद्धपुर के हिंदू तीर्थ स्थल को नष्ट कर उसके अनेक सुंदर मंदिरों का विनाश किया। वह पहला सुल्तान था, जिसने गुजरात के हिंदुओं से जज़िया लिया।

गुजरात का सबसे प्रसिद्ध सुल्तान महमूद बेगड़ा (1459-1511) था। उसे यह नाम इस लिए मिला था क्योंकि उसने दो दुर्जेय गढ़ों – सौराष्ट्र में गिरनार और दक्षिण गुजरात में चांपानेर पर कब्ज़ा किया था। अंततः महमूद बेगड़ा ही सौराष्ट्र के धनी व समृद्ध क्षेत्र पर कब्ज़ा कर पाने में सफल रहा। गिरनार में उसकी जीत का कारण प्रतिद्वंद्वी राजा के मंत्री द्वारा विश्वासघात है। हालांकि संख्या में वह काफी पीछे था, लेकिन राजा ने कड़ा मुकाबला किया, जिसके बावजूद वह असफल रहा। किले पर कब्ज़े के बाद उसने इस्लाम स्वीकार कर लिया और सुल्तान की सेवा में शामिल हो गया। सुल्तान ने किले के निकट मुस्तफाबाद शहर की स्थापना की।

महमूद बेगड़ा ने जगत (द्वारका) पर इस बहाने से हमला किया कि वहाँ के लोग मक्का जाने वाले तीर्थयात्रियों को परेशान कर रहे थे। उसने इस क्षेत्र में अनेक मंदिर नष्ट किए। चंपानेर के किले की उसके राजा और उसके आदमियों ने बड़ी बहादुरी से प्रतिरक्षा की। उन्होंने अंतिम आदमी तक युद्ध किया जबकि महिलाओं ने जौहर कर लिया। महमूद बेगड़ा ने इसके साथ एक नए नगर-क्षेत्र, मुहम्मदाबाद का निर्माण किया। लेकिन मिस्र के शासक के साथ महमूद बेगड़ा के पुर्तगालियों को रोकने के प्रयास असफल रहे। गुजरात का अंतिम महान शासक उसका पोता, बहादुर शाह था, जिसने मालवा पर कब्ज़ा, चित्तौड़ पर हमला और मुगल सम्राट हुमायूँ के साथ युद्ध किया। वह पुर्तगालियों के हाथों मारा गया।

मालवा

केंद्र में स्थित मालवा क्षेत्र, जो कि उत्तर और दक्षिण के अलावा गुजरात और उत्तर भारत के बीच दोनों व्यापार मार्गों को नियंत्रित करता था, ने तैमूर द्वारा हमला करने पर दिल्ली का अपने पर से नियंत्रण हटा दिया। पंद्रहवीं शताब्दी में राज्य की राजधानी धार से मांडू स्थानांतरित हो गई, जहाँ चमकीली खपरों (टाइल) से सजी अनेक इमारतें खड़ी की गईं।

मालवा के प्रारंभिक सुल्तानों में हुशंग शाह था, एक ऐसा शासक जो अपनी सहिष्णुता की नीति और राजपूतों को अपने राज्य में बसने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए जाना जाता था। लेकिन मालवा के सुल्तानों में सबसे शक्तिशाली था महमूद ख़िलजी, जिसने पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य में शासन किया। वह एक प्रबल योद्धा था और उसने लगभग सभी पड़ोसी राज्यों से संघर्ष किया, हालांकि उसे केवल दक्षिणी राजपूताना और मेवाड़ से मुख्यतः मतलब था। उसने अनेक मंदिरों को नष्ट किया।

मेवाड़

पंद्रहवीं शताब्दी में मेवाड़, राजपूताना के एक प्रमुख राज्य के रूप में उभरा। आठवीं शताब्दी ई. में स्थापित मेवाड़ राज्य सल्तनत काल के दौरान विरोध का केंद्र रहा। राणा कुंभा के नेतृत्व में यह एक बार फिर उत्तर भारतीय राजनीति में एक महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में उभरा। राणा के शासनकाल में मालवा और गुजरात में अनवरत संघर्ष चला, पर उसने इतने शक्तिशाली राज्यों के हमले सहन कर लिए। गुजरात ने अनेक बार कुंभलगढ़ पर घेरा डाला, जबकि महमूद खिलजी, अजमेर तक पहुँच गया। राणा ने इन हमलों का सफलतापूर्वक सामना किया और अपने द्वारा जीते गए अधिकांश क्षेत्रों पर अपना कब्ज़ा बनाए रखा।

एक कुशल योद्धा होने के अलावा राणा कुंभा ने शिक्षा को प्रश्रय दिया और स्वयं अनेक किताबें भी

लिखीं। जलाशयों और मंदिरों के अलावा उसने चित्तौड़ में प्रसिद्ध विजय स्तंभ का निर्माण कराया। उसका पोता प्रसिद्ध राणा सांगा था, जिसका वर्णन 'सैनिक का अंश' के रूप में किया गया है, जिसके शरीर पर अस्सी से अधिक घाव थे। उसने सफलतापूर्वक मालवा, गुजरात और दिल्ली के विरुद्ध युद्ध किया।

राणा कुंभा की मृत्यु और राणा सांगा के उदय के बीच के वर्षों में सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी मालवा का पतन। उसकी समस्याएँ महमूद द्वितीय और पूर्वी मालवा के शक्तिशाली राजपूत नेता, मेदिनी राय के बीच विरोधों के कारण बढ़ीं। जहाँ मालवा के शासक ने गुजरात से मदद माँगी, वहीं मेदिनी राय ने राणा सांगा से। राणा ने महमूद द्वितीय को पराजित किया और उसे बंदी बनाकर अपने साथ चित्तौड़ ले गया। हालांकि उसने उसे बाद में रिहा कर दिया, लेकिन राणा सांगा के उत्तराधिकारी के शासनकाल में यह वैमनस्य जारी रहा। आखिरकार मालवा राज्य पर गुजरात ने कब्ज़ा कर लिया।

मेवाड़ की बढ़ती हुई ताकत से लोदी शासक, इब्राहिम घबरा गया था, जिसने राज्य पर हमला बोला था। उसका यह हमला नाकाम रहा। इस दौरान बाबर ने भी भारत में घुसने के प्रयास शुरू कर दिए थे।

मारवाड़

राजस्थान के एक अन्य प्रमुख राज्य मारवाड़ पर राठौरों का कब्ज़ा था, जो राष्ट्रकूटों के वंशज माने जाते थे। इसका आधुनिक इतिहास चुंदा से आरंभ होता है, जिसने चौदहवीं शताब्दी के अंत में सिंहासन संभाला। उसके उत्तराधिकारी जोधा ने जोधपुर का किला बनाया और वहाँ एक शहर भी बसाया, जो जल्दी ही राज्य की राजधानी बन गया। उसके एक बेटे बीका ने मध्य-पंद्रहवीं शताब्दी में बीकानेर राज्य की स्थापना की। इस काल में मारवाड़ का सबसे प्रमुख शासक था मालदेव, जिसका शेर शाह के साथ संघर्ष हुआ।

आंबेर

आंबेर पर कछवाहा राजपूतों का शासन था जो स्वयं को भगवान रामचंद्र के दूसरे बेटे, कुश का वंशज मानते थे। कुछ आधुनिक विद्वान उन्हें ग्वालियर के कच्छपघातों का वंशज मानते हैं, जिनके पूर्वज पूर्वी भारत से आए थे। जेम्स टॉड के अनुसार राज्य की स्थापना दसवीं शताब्दी के आसपास हुई। इसके आरंभिक वर्षों में इसने मेवाड़ की प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली, हालांकि इसका राजनीतिक महत्त्व चौदहवीं शताब्दी से ही बढ़ा। अन्य राजपूत शासकों की भांति, आंबेर के राजा पृथ्वीराज, जिसने 1502 ई. में सिंहासन ग्रहण किया, ने खनवा में राणा सांगा के नेतृत्व में युद्ध किया।

उत्तर-पश्चिम और उत्तर भारत

जौनपुर

शरकी, जिनकी राजधानी जौनपुर (पूर्वी उत्तर प्रदेश) में थी, ने दिल्ली सल्तनत के अफसरों के रूप में अपने कार्यकाल की शुरुआत की। इस वंश का संस्थापक, मलिक सरवर, फ़िरोज़ तुगलक के शासनकाल में वज़ीर रह चुका था। जिसके बाद उसे मलिक-उस-शर्क (पूर्व का स्वामी) की पदवी देकर पूर्वी क्षेत्र में नियुक्त किया गया। इस पदवी के नाम पर उसके उत्तराधिकारी शरकी कहलाए। शरकियों का शासनकाल एक शताब्दी से कम समय तक चला, जिसकी विशेषता थी दिल्ली के साथ किए गए निरर्थक युद्ध, जिससे उसके संसाधनों में कमी आई। अंततः बहलोल लोदी ने इस राज्य पर कब्ज़ा कर लिया।

इस वंश का महानतम शासक इब्राहिम था, जिसके शासनकाल में जौनपुर शिक्षा का एक प्रमुख केंद्र बन गया और 'भारत का शिराज़' के नाम से जाना गया।

शरकी उत्साही निर्माता थे और उन्होंने अपनी राजधानी को एक विशिष्ट वास्तु-शैली से सजाया, जिसमें विशाल दरवाज़े और मेहराब थे। उनकी सबसे प्रसिद्ध इमारत थी अटाला मस्जिद। उनके राज्य में मलिक मुहम्मद जायसी रहते थे।

कश्मीर

कश्मीर का पहला मुसलमान शासक शम्सुद्दीन शाह एक साहसिक व्यक्ति था, जो राज्य के अंतिम हिंदू शासक के अधीन कार्य करता था। अंतिम हिंदू शासक की मृत्यु के बाद उसने 1339 में सिंहासन पर कब्ज़ा कर लिया। उसके पोते सिकंदर ने यद्यपि इस्लामिक शिक्षा को प्रश्रय दिया, लेकिन वह एक कट्टर था, जिसने अपनी हिंदू प्रजा का दमन किया। उसने या तो अधिकांश ब्राह्मणों का धर्म परिवर्तन कर दिया या उन्हें राज्य से भगा दिया।

ज़ैनुल आबिदीन कश्मीर का महानतम सुल्तान था। वह एक उदार और प्रबुद्ध शासक था। उसने अनेक शांतिकर कदम उठाए और कश्मीरी पंडितों को राज्य वापस लौटने की अनुमति दी। जहाँ कहीं भी संभव था, मंदिरों का पुनर्निर्माण किया गया, जज़िया को हटाया गया और गोहत्या पर प्रतिबंध लगाया गया। ज़ैनुल आबिदीन स्वयं भी विद्वान था और उसे फारसी, कश्मीरी, संस्कृत और तिब्बती का अच्छा ज्ञान था। वह कला का संरक्षक था और उसने घाटी के विशेष शिल्पों को प्रोत्साहन दिया। उसने *महाभारत* और *राजतरंगिणी* का फारसी में और अनेक अरबी और फारसी साहित्य का हिंदी में अनुवाद करने का आदेश दिया। उसने अपनी प्रजा की आर्थिक भलाई के लिए अनेक कदम उठाए; जैसे करों में कमी, वस्तुओं के मूल्य पर नियंत्रण, बाज़ार पर नियंत्रण और मुद्रा में सुधार।

मध्य सोलहवीं शताब्दी में बाबर के एक रिश्तेदार ने कश्मीर पर विजय प्राप्त की, लेकिन उसे भगाकर चक जनजाति ऊपर उठी। अंततः कश्मीर पर अकबर ने कब्ज़ा किया।

अभ्यास

1. तैमूर की सेना द्वारा दिल्ली के विध्वंस का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. बंगाल द्वारा पूर्वी भारत में अपनी सत्ता का विस्तार करने के प्रयासों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
3. पंद्रहवीं शताब्दी में मेवाड़ के उदय का संक्षेप में विवरण दीजिए।
4. संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए :
   (क) सिकंदर लोदी
   (ख) अहमद शाह
   (ग) महमूद बेगड़ा
   (घ) महमूद ख़िलजी
   (ङ) ज़ैनुल आबिदीन
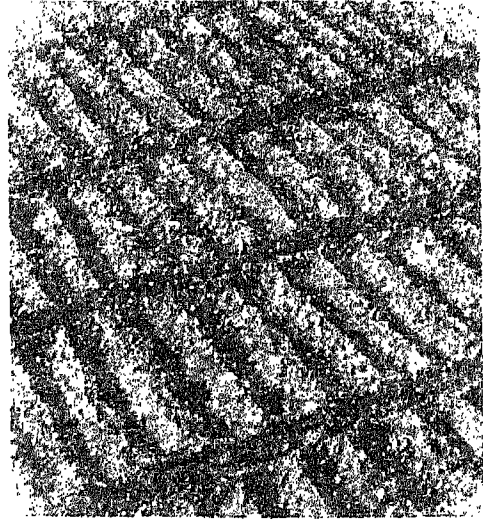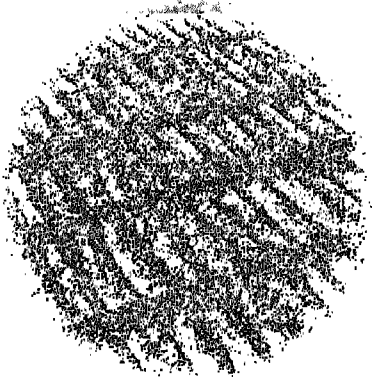
अबुल फ़ज़ल की *आइन-ए-अकबरी* जो मुगल साम्राज्य की अर्थव्यस्था के बारे में जानकारी का भंडार है, की भांति सल्तनत काल में कोई दस्तावेज नहीं है इसके बावजूद सामयिक इतिहासकारों के वर्णनों के आधार पर इतिहासकारों ने इस काल में अर्थव्यवस्था की स्थिति की तस्वीर बनाई है।

कृषि उत्पादन

कृषि का आधार किसानों द्वारा व्यक्तिगत खेती थी जिसमें कुएँ कृत्रिम सिंचाई के प्रमुख स्रोत थे, हालांकि कहीं-कहीं नहरों का भी उल्लेख है। सबसे विशाल संख्या में नहरों का निर्माण फ़िरोज़ तुगलक के आदेश पर किया गया। उसने यमुना से दो नहरें निकलवाई, एक सतलुज और एक घग्गर से, इसके अलावा उसने अनेक छोटी नहरें भी खुदवाईं।

प्राचीनकालिक अरघट्ट को पिन, ड्रम और गीयर के साथ जोड़कर कुओं और नहरों से पानी निकाला जाता था और इस प्रणाली में पशु शक्ति का प्रयोग होता था। इससे सिंधु नदी घाटी में सिंचाई का विस्तार हुआ। गेंहू और गन्ने जैसी फसलें जो कृत्रिम सिंचाई पर निर्भर थीं, उन फसलों की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण थीं जो वर्षा के पानी पर निर्भर थीं।

रेशम उत्पादन यानी कि असली रेशम के लिए शहतूत रेशम-कीट को पालने की कला चौदहवीं और पंद्रहवीं शताब्दी में चीन से भारत पहुँची, लेकिन पुराने समय से ही भारत में तसर और मूगा सिल्क का उत्पादन हो रहा था। फलों में आम का विशेष महत्त्व था। अंगूर कुछ ही क्षेत्रों में उगाए जाते थे, हालांकि फिरोज़ तुगलक के निर्देश पर दिल्ली के आसपास 1200 फलोद्यान लगाए गए जिनमें अंगूरों की सात किस्में उगाई गईं।

ग्रामीण वर्ग

मध्यकालीन भारत में भूमि की बहुलता ने सुनिश्चित किया कि संघर्ष भूमि स्वामित्व को लेकर नहीं बल्कि पैदावार के कारण था। किसान के पास तब तक भूमि का अहस्तांतरणीय अधिकार था जब तक वह उसकी खेती करता और राज्य को राजस्व का हिस्सा देता। किसानों की उच्चतम श्रेणी *खोत* और *मुकद्दम* (मुखिया) थी जिन्होंने भूमि कर एकत्रित करने में अधिकारियों की सहायता की। इसके बदले में उन्हें कुछ रियायतें दी जातीं, जिसमें कुछ करों में छूट शामिल है। अलाउद्दीन ख़िलजी की नीतियों ने इस वर्ग की शक्ति को काफी घटाया।

ग़ियासुद्दीन तुगलक ने खोत और मुकद्दम को भूमि और मवेशी पर कर देने से छूट देकर उन पर दबाव को कम किया, क्योंकि उसने महसूस किया कि राजस्व एकत्रित करने के लिए वे अत्यावश्यक थे। कहा जाता है कि उसने कहा "इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि मुखिया के कंधों पर काफी ज़िम्मेदारी है।" लेकिन उसने इस बात पर भी ज़ोर दिया कि ''मुखिया को ऐसी स्थिति

में रखा जाना चाहिए कि वह सरकार के महत्त्व को भूलकर विद्रोही और अत्यधिक समृद्धि के कारण हठीला न हो जाए।"

खोत और मुकद्दम के ऊपर पराजित हिंदू प्रमुख (राय और राणा) और गाँवों के कुछ मुखिया थे। इतिहासकारों के अनुसार, मध्य चौदहवीं शताब्दी में चौधरी उच्चतम ग्रामीण व्यक्ति था, जिस पर राज्य को भू-राजस्व देने की ज़िम्मेदारी थी। उनके अनुसार, तब तक ग्रामीण जनसंख्या दो श्रेणियों में विभक्त थी - किसान और ज़मींदार। ज़मींदार शब्द का अर्थ अब राजस्व एकत्रित करने के लिए ज़िम्मेदार ग्रामीण वर्ग था, लेकिन सल्तनत काल में किसान और ज़मींदार आसानी से राजस्व अदा नहीं करते थे और मध्यकालीन स्रोतों में उन्हें ''कहने के लिए ही प्रजा'' कहा गया है जो ''सेना और तलवार के भय से ही राजस्व अदा करते थे।''

कृषि संबंधी कर

अलाउद्दीन खिलजी के समय से औपचारिक रूप से एकत्रित किए जाने वाले भूमि कर को आधुनिक इतिहासकार 'अत्यधिक और अपवर्ती' बताते हैं।

बरनी कहता है कि गियासुद्दीन तुगलक ने वास्तविक उपज के आधार पर, न कि संभावित पैदावार के आधार पर, खिराज एकत्रित किया। मुहम्मद बिन तुगलक ने अलाउद्दीन खिलजी से भी ज़्यादा कड़े कदम उठाए। अब तक दोआब तक सीमित दमनकारी कर प्रणाली का गुजरात, मालवा, दक्कन और बंगाल में विस्तार किया गया। दूसरा, कर की दर का भी अत्यधिक विस्तार किया गया। चाहे सुल्तान ने अतिरिक्त कर लगाए हों या वर्तमान करों का इस प्रकार पुनः हिसाब किया हो कि वह किसानों के हित में न हो, इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि इतनी कड़ी कर उगाही के कारण जगह-जगह पर किसानों ने विद्रोह कर दिया।

फ़िरोज़ तुगलक ने घरी और चराई को समाप्त कर खिराज के अतिरिक्त कुल करों को चार प्रतिशत तक सीमित कर दिया। इतिहासकारों का कहना है कि यह संभव है कि छूट के साथ जज़िया को भूमि कर सहित एक अतिरिक्त कर के रूप में लिया जाता था। अब तक जज़िया को भूमि कर के रूप में लिया जाता था जिसे *खिराज-जज़िया* कहते थे। लोदी राजवंश के समय में भूमि कर पूर्ववत रहा लेकिन अब इसे नकद के स्थान पर वस्तु के रूप में लिया जाता था।

इक्ता

कुछ इतिहासकारों ने दिल्ली सुल्तानों के शासन का वर्णन भूमि संबंधी शोषण को व्यवस्थित करना और प्राप्त राजस्व के अत्यधिक केंद्रीकरण के रूप में किया है। उनका कहना है कि सल्तनत का अधिकारी तंत्र समाज का प्रमुख शोषक वर्ग था जो किसानों के लगभग सारे अधिशेष पर कब्ज़ा कर लेता था।

राजस्व संसाधन सुल्तान और उसके सामंतों के बीच वितरित कर दिए जाते थे। जिन क्षेत्रों का राजस्व सीधे सुल्तान को जाता था वे *खालिसा* कहलाए जाते थे जबकि जो क्षेत्र सामंतों के बीच बांटे जाते थे उन्हें *इक्ता* कहा जाता था।

इतिहासकारों ने सल्तनत काल में इक्ता के इतिहास को तीन चरणों में विभाजित किया है। पहले चरण में सुल्तान ने अपने सेनापतियों को विभिन्न क्षेत्र *इक्ता* के रूप में सौंपे, जिन्हें उससे प्राप्त राजस्व से स्वयं का और अपनी टुकड़ियों का रखरखाव करना पड़ता था। ऐसे समय इक्तादार (इक्ता के धारक) राज्यपाल के रूप में भी कार्य करते थे। कर एकत्रित करना और इक्ता का प्रशासन उनकी ज़िम्मेदारी थी

लेकिन, इक्ता एक व्यक्ति से दूसरे को अंतरित किए जा सकते थे।

दूसरे चरण में खिलजी और तुगलकों के शासनकाल में, इक्तादारों को अब तक राजस्व मामलों में मिली स्वतंत्रता पर अंकुश डालने का प्रयास किया गया। अब उन्हें एकत्र किए गए राजस्व और अपने खर्चे का लेखा सौंपकर शेष राजस्व को राजकीय कोष में जमा कर देना होता था।

तीसरे और अंतिम चरण में फिरोज़ तुगलक के शासनकाल में दूसरे चरण में अपनाई गई केंद्रीकरण की नीति के विपरीत इक्तादारों को अनेक रियायतें दी गईं। सभी संभावनाओं के साथ इक्ता भी वंशानुगत हो गए। फ़िरोज़ शाह द्वारा उठाए गए कदम लोदी राजवंश के अंतर्गत भी जारी रहे।

इक्ता के अलावा, सुल्तानों ने अपने राजस्व का एक हिस्सा मुसलमान धर्मतत्त्वज्ञ, विद्वान और शिक्षाविदों के लिए रखा। इन कर-मुक्त भूमि अनुदानों को *इनाम* या *मदद-ए-माश* कहा जाता था, जबकि मुसलमान धार्मिक संस्थानों को दिए जाने वाले अनुदान *वक्फ़* कहलाए जाते थे। इन अनुदानों का एक हिस्सा बंजर भूमि के रूप में होता था, जिसे प्राप्तकर्ताओं को कृषि योग्य बनाना होता था। फ़िरोज़ शाह के शासनकाल में इस प्रकार छोड़े गए राजस्व का मूल्य सरकारी हिस्से का पाँच प्रतिशत से अधिक होता था। यह अनुदान वंशानुगत थे, लेकिन सुल्तान किसी भी समय इन्हें वापस ले सकता था।

गैर-कृषि उत्पादन

हालांकि सल्तनत के आर्थिक संसाधनों के बारे में विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है, लेकिन सामयिक स्रोतों से गैर-कृषि उत्पादन के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त होती है।

सांभर झील में बड़ी मात्रा में नमक का उत्पादन होता था। उच्च स्तर का खनिज लोहा खदानों से निकालकर विश्व प्रसिद्ध दमिश्की इस्पात बनाया जाता था। भारतीय धातु-विज्ञान को उच्च स्तर का माना जाता था और मध्य-पूर्व को लोहे और इस्पात का निर्यात करने में दक्कन प्रमुख था। राजस्थान में ताँबे की खदानें थीं, सोने और चाँदी का कम मात्रा में उत्खनन किया जाता था, जबकि हीरे दक्कन और गोंडवाना से प्राप्त होते थे।

वस्त्रोद्योग सबसे बड़ा स्थानीय उद्योग था। चरखे के कारण कातने वालों की कुशलता में काफी वृद्धि हुई थी। जबकि जुलाहों की मशीनें ज़्यादा कपास साफ़ करने लगीं। इसके फलस्वरूप बुने हुए कपड़े में अत्यधिक वृद्धि हुई, जो पहले से कहीं सस्ता हो गया। सिलहट और देवगिरी में खुरदरे कपड़े से लेकर मलमल की बारीक किस्मों के सूती वस्त्रों का उत्पादन किया गया। गुजरात वस्त्र उत्पादन का एक प्रमुख क्षेत्र था और रेशम की कताई के लिए प्रसिद्ध था जबकि कश्मीर अपनी शालों के लिए मशहूर था।

निर्माण उद्योग शहरों में नौकरी का एक प्रमुख स्रोत था। हमलावर उत्साही निर्माता थे, जिन्होंने अनगिनत गढ़, महल, मस्जिद और अन्य इमारतों का निर्माण किया। इनमें हज़ारों कारीगरों को काम मिला। इस दौरान भारत में कागज़ का निर्माण आरंभ हुआ।

वाणिज्य

चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुद्रा अर्थव्यवस्था में अत्यधिक वृद्धि हुई। किसानों ने मुद्रा बाज़ार में प्रवेश किया क्योंकि अब उन्हें भूमि राजस्व नकद में अदा करना पड़ता था। शहरों की विशाल संख्या के कारण भी वाणिज्यिक गतिविधि में तेज़ी आई।

शहरों को बनाए रखने के लिए गाँवों के उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा नगरीय केंद्रों में पहुँचने लगा। *कारवानी* नामक व्यापारी शहरों की जनसंख्या तक अन्न पहुँचाते थे।

घोड़े आयात की एक प्रमुख वस्तु थे, जबकि गुलामों का विशाल संख्या में निर्यात किया जाता था। विदेशों में नील की भी माँग थी। मुल्तान व्यापार का एक प्रमुख केंद्र था जहाँ से अधिकांश आयातित वस्तुएँ दिल्ली पहुँचती थीं। राजधानी में प्रायद्वीप के अनेक हिस्सों से सामान पहुंचता था; अमरोहा से अन्न, अलीगढ़ से शराब, धार से पान के पत्ते, देवगिरी से मलमल और बंगाल से धारीदार कपड़ा। आंतरिक व्यापार व्यापारियों के हाथों में था, जिनमें से अनेक मुल्तान से थे और मुल्तानी कहे जाते थे।

दास प्रथा

सल्तनत काल की अर्थव्यवस्था पर विचार-विमर्श दास प्रथा पर टिप्पणी किए बगैर अधूरा है। इसके आँकड़े आश्चर्यजनक हैं।

कुतबुद्दीन ऐबक ने गुजरात पर हमले के दौरान बीस हज़ार और कलिंजर पर हमले के दौरान पचास हज़ार गुलाम हासिल किए। कहा जाता है कि रणथंभौर पर अपने हमले के दौरान बलबन ने "अनगिनत घोड़े और गुलाम" हासिल किए। अलाउद्दीन खिलजी के पास पचास हज़ार गुलाम थे; फ़िरोज़ शाह के शासनकाल में यह संख्या बढ़कर एक लाख अस्सी हज़ार हो गई। सामंतों के पास भी बड़ी संख्या में गुलाम होते थे। हालांकि सल्तनत राज्य-व्यवस्था में कुछ गुलाम ऊँचें पदों तक भी पहुँचे लेकिन अधिकांश घरेलू कामकाज के लिए ही रखे जाते थे।

गुलामों को खुलकर चल-संपत्ति के रूप में बेचा जाता था। अलाउद्दीन के बाज़ार नियमों में विभिन्न प्रकार के गुलामों का मूल्य भी शामिल था, जो घटिया किस्म के घोड़ों और दुधारू गाय के समकक्ष थे।

जब तैमूर ने भारत पर हमला किया उसके सैनिकों और खेमे के अनुयायियों ने एक लाख स्थानीय लोगों को बंदी बना लिया लेकिन दिल्ली पर हमले से पूर्व उन सबको इस डर से मार डाला कि वे विद्रोह कर कार्रवाई में रुकावट पैदा करेंगे। दिल्ली पर कब्ज़े के बाद वहाँ के निवासियों को तैमूर के सामंतों के बीच गुलामों की तरह बाँटा गया ताकि उनके पिछले नुकसान की भरपाई हो सके। गुलाम बनाए गए लोगों में कई हज़ार कारीगर और कुशल व्यक्ति थे।

मुद्रा

सुल्तानों ने सोने, चाँदी और तांबे में तीन धातु की मुद्रा का चलन आरंभ किया। सल्तनत की मुद्रा हिंदू राज्यों और मंदिरों से प्राप्त खज़ाने को वित्तीय चलन में लाने की परिचायक थी। फरिश्ता कहता है कि सुल्तान बनने से पहले देवगिरी पर अपने हमले में अलाउद्दीन ख़िलजी ने 7.7 मीट्रिक टन सोना और 12.8 मीट्रिक टन चाँदी हासिल किया। बरनी कहता है कि मलिक काफूर के माबार पर हमले में उसने 241 मीट्रिक टन सोना लूटा, जो अतिश्योक्ति हो सकती है।

भारी मात्रा में हासिल सोने ने सोने-चाँदी के अनुपात पर असर डाला और बंगाल के हाथ से निकलने के कारण चाँदी की कमी और बढ़ गई। चौदहवीं शताब्दी के मध्य तक सुल्तानों द्वारा स्थापित मुद्रा-प्रणाली का पतन होने लगा और लगभग शुद्ध चाँदी के *टंके* का स्थान एक निम्न दर्जे के सिक्के ने ले लिया। पंद्रहवीं शताब्दी में

सल्तनत में ताँबे में कम से कम चाँदी के साथ मिश्रित धातुओं का प्रयोग आरंभ हो गया।

मुद्रा के प्रचलित मूल्यवर्गों में शामिल थे : टंका, जीतल, डांग और दिरम। भारत में सोना पश्चिम अफ्रीका की सोने की खदानों से, मिस्र और सीरिया के रास्ते आया, हालांकि इसमें से काफी मात्रा का प्रयोग मध्य-पूर्व से आयातित घोड़ों का मूल्य चुकाने में ही खर्च हो जाता था।

अभ्यास

1. सल्तनत काल में सिंचाई के प्रमुख स्रोतों का विवरण दीजिए।
2. खोत, मुकदद्म और चौधरियों के क्या कर्तव्य थे?
3. गि़यासुद्दीन तुगलक ने कृषि संबंधी कर-प्रणाली में क्या परिवर्तन किए?
4. मुहम्मद बिन तुगलक द्वारा भू-राजस्व व्यवस्था में किए गए बदलाव का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
5. *इक्ता* प्रणाली के विकास के तीन चरणों का विवरण दीजिए।
6. सल्तनत काल में प्रमुख गैर-कृषि उत्पाद का विवरण दीजिए।
7. सल्तनत अर्थव्यवस्था के लिए दास प्रथा का क्या महत्त्व था?
8. सल्तनत में प्रचलित मुद्रा प्रणाली का विवरण दीजिए।

अध्याय 12
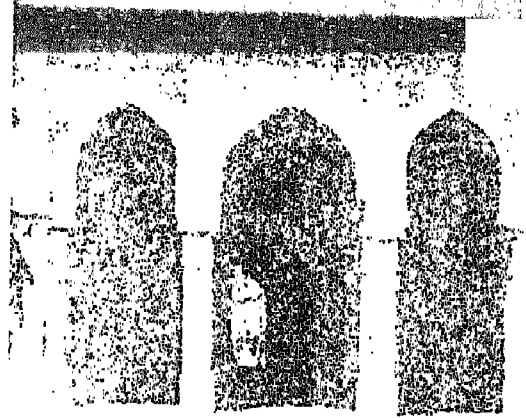
सांस्कृतिक और धार्मिक प्रवृत्तियाँ
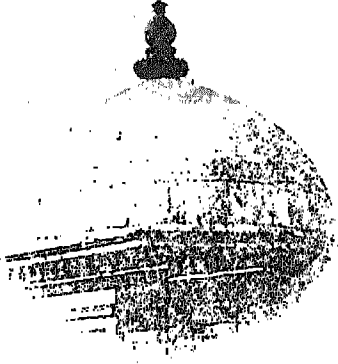
दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ ही उपमहाद्वीप में इस्लामिक सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का भी बड़ी संख्या में आगमन हुआ। वास्तुशिल्प एक ऐसा क्षेत्र था जिसमें नए शासकों की सुरुचि सर्वप्रथम प्रकट हुई। मुस्लिम वास्तुकला में धार्मिक और अन्य इमारतें शामिल थीं। पहली श्रेणी में मस्जिद और मकबरे शामिल थे जबकि दूसरी श्रेणी में आम जनता द्वारा प्रयोग की जाने वाली इमारतें; जैसे – मंडप, नगर द्वार और महल द्वार शामिल थे। भारत के स्थानीय वास्तुशिल्प में रिक्त स्थान में शहतीरों को आयताकार लगाया जाता था जबकि इस्लामिक वास्तुशिल्प में खाली स्थान को मेहराबों के माध्यम से भरा जाता था। हिंदू मंदिरों के शिखर के विपरीत गुंबद मस्जिदों की एक प्रमुख विशेषता थे।

सल्तनत वास्तुशैली

मस्जिद इस्लामिक शैली की एक प्रमुख विशेषता है। मस्जिद का ढाँचा काफी सरल होता है, जिसमें चार ओर से छत्ते से घिरा एक खुला अहाता था और नमाज़ से पूर्व प्रक्षालन के लिए एक हौज़ होता है। मक्का की ओर पश्चिमी दिशा में एक बड़ा कक्ष है, जिसमें मेहराब अंतर्विष्ट है और जो नमाज़ की दिशा इंगित करता है। इसके दाहिनी ओर एक मंच है जहाँ से इमाम उपदेश देता है। मस्जिद में एक मीनार भी होती है जहाँ से नमाज़ के लिए अज़ान दी जाती है। जिस मस्जिद में मुसलमान शुक्रवार (जुम्मा) को सामूहिक नमाज़ के लिए एकत्रित होते हैं, उसे जामा मस्जिद कहते हैं।

इस्लाम उपमहाद्वीप में एक और नई इमारत लाया – मकबरा। मुसलमानों के मकबरे प्रभावशाली इमारतें थीं जो चारों ओर विशाल बागों से घिरे थे और जिनमें विशाल प्रवेश द्वार होते थे। महत्त्वपूर्ण धार्मिक व्यक्तियों के मकबरों को दरगाह कहा जाता था, यह फारसी का एक शब्द है ज़िसका अर्थ है दरबार या महल।

विद्वानों ने भारत में इस्लामिक वास्तुकला के तीन अलग चरणों की पहचान की है। प्रारंभिक चरण जो विनाशकारी था, के बारे में सामयिक इतिहासकार हसन निज़ामी लिखता है, "प्रत्येक किले और गढ़ पर विजय के बाद वहाँ की नींव और खंभों को भयकर और विशाल हाथियों के पैरों तले रौंदने का रिवाज़ था।"

दूसरे चरण में, इमारतों को ध्वस्त कर नई इमारतों के लिए तैयार सामान मिलता था। हाथियों का शहतीरों और खंभों को नए स्थानों में ले जाने के लिए प्रयोग किया जाता था। इस नीति के फलस्वरूप उत्तर भारत लगभग पूरी तरह से हिंदू वास्तुकला से विहीन हो गया। निर्माण की इस प्रक्रिया पर टिप्पणी करते हुए हसन निज़ामी लिखता है "पहाड़ियों से खोदकर पत्थर निकाले गए और सामान प्राप्त करने के लिए नास्तिकों के मंदिरों को तोड़ दिया गया।"

तीसरे चरण में, इस्लामिक इमारतों का एक विशेष प्रकार से तैयार पत्थर से निर्माण किया गया।

प्रारंभिक इमारतें

भारत में सबसे पुराने इस्लामिक स्मारक सिंध में थट्टा के निकट बंभोर में स्थित हैं। यह स्थान, जो इस्लाम के जन्म के कुछ समय बाद अस्तित्व में आया, संभवत: दक्षिण एशिया में पहली अरब बस्ती है।

लेकिन तेरहवीं शताब्दी से ही भारत में इस्लामिक वास्तुशिल्प की सही तारीख दी जा सकती है। कुतबुद्दीन ऐबक ने राजपूतों के गढ़ किला-ए-राय पिथौरा पर कब्ज़ा कर उसे अपनी राजधानी बना लिया। उसने एक नए युग की शुरुआत के उपलक्ष्य में जामा मस्जिद बनाने का निर्णय किया और किले के बीच बने एक विशाल मंदिर को ध्वस्त करने का आदेश दिया। उसके चबूतरे को बड़ा कर उस पर एक मस्जिद बना दी गई। कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद को समीपवर्ती सत्ताईस हिंदू और जैन मंदिरों की सामग्री से बनाया गया। छ: सौ साल से भी अधिक समय से मथुरा में खड़े प्रसिद्ध लौहस्तंभ को वहाँ से उखाड़कर यहाँ मस्जिद के सामने रख दिया गया, लेकिन उसके ऊपर लगी विष्णु के वाहन, गरुड़ की मूर्ति को हटा दिया गया।

क्योंकि कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद में हिंदू तत्त्वों की झलक स्पष्ट थी, इसलिए उसके आगे मेहराबों की एक दीवार बनाकर खंभों को ढकने का प्रयास किया गया। लेकिन उसके निर्माण में लगे हिंदू कारीगरों को इस्लामिक इमारतों में लगने वाले असली मेहराब की जानकारी नहीं थी, इसलिए उन्होंने उसके स्थान पर एक कामचलाऊ तकनीक का इस्तेमाल किया। ऐबक ने अजमेर में भी अढ़ाई-दिन-का झोंपड़ा नामक एक मस्जिद को इसी तरह से बनवाया। ऐबक द्वारा निर्मित सबसे प्रभावशाली इमारत थी साथ में बनी कुतुबमीनार जिसका उद्देश्य इस्लाम की प्रभुसत्ता घोषित करना था।

इल्तुतमिश के समय में उसके बेटे, सुल्तान घरी, का मकबरा एक भूमिगत कक्ष के रूप में बनाया
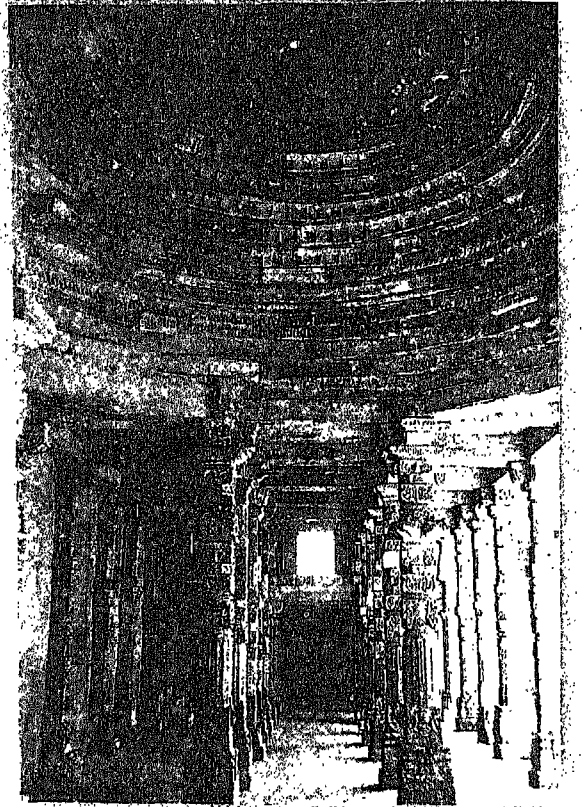
दिल्ली, कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद

गया। यह एक अनोखी संरचना है जिसका कारण संभवतः मौजूदा राजनीतिक अव्यवस्था थी। स्वयं इल्तुतमिश का मकबरा एक साधारण इमारत थी लेकिन उसके अंदर काफी सजावट थी और उसमें कुरान से आयतें लिखी गईं थीं। उसके गुंबद का *स्क्विंच* नामक तरीके से निर्माण किया गया।
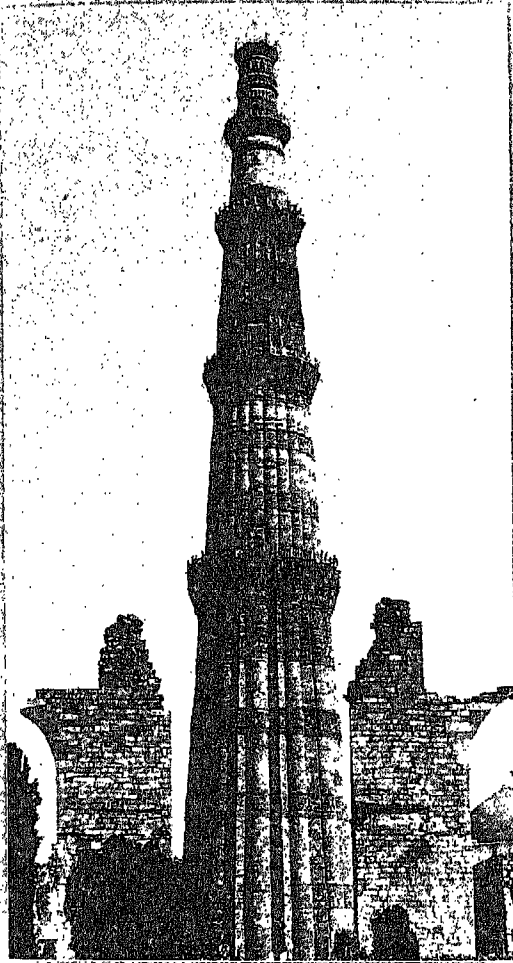
कुतुब मीनार

वास्तुकला की दृष्टि से बलबन के समय की एकमात्र महत्त्वपूर्ण इमारत कुतुब परिसर के निकट स्थित उसका मकबरा थी, जिसमें भारत में असली मेहराब का पहली बार प्रयोग किया गया।

तुगलक और ख़िलजी शासनकाल में वास्तुकला

अलाउद्दीन ख़िलजी अपने वास्तुशिल्प के केवल कुछ ही हिस्से को साकार कर सका। इसमें शामिल था अलाई दरवाज़ा, उसके द्वारा बनाए जाने वाली भव्य मस्जिद का दक्षिणी प्रवेशद्वार। उसकी परिष्कृत झलक का कारण था सेल्जुक साम्राज्य के पतन के कारण भारत में मुस्लिम कारीगरों और शिल्पकारों का आगमन।

गियासुद्दीन तुगलक ने दिल्ली के तीसरे शहर, तुगलकाबाद की स्थापना की। इसकी सबसे प्रसिद्ध विशेषता है एक छोटे गढ़ की तरह बना शासकों का मकबरा, जो संभवतः शासक परिवार की असुरक्षा का परिचायक है। लाल बलुआ पत्थर के बने मकबरे के ऊपर सफेद संगमरमर का गुंबद है और इसकी विशेपता है ढलवां बाहरी दीवारें।

मुहम्मद बिन तुगलक ने दिल्ली के चौथे शहर का निर्माण किया। उसके पास पहली और दूसरी राजधानियों के बीच मोटी दीवारों से घिरी खाली जगह थी। जिन हिस्सों को जोड़ा गया वे जहाँपनाह कहलाए।

फ़िरोज़ शाह तुगलक की इमारतें देखने में अपरिष्कृत और तैयार लगती हैं। इसका कारण संभवतः मुहम्मद बिन तुगलक द्वारा राजधानी के स्थानांतरण के कारण कुशल कारीगरों का अभाव और धन की कमी रहा होगा। फ़िरोज के शासनकाल की प्रमुख इमारतों में चार किलानुमा शहर और पाँचवा दिल्ली शहर है, जिसमें आम जनता के लिए

एक कक्ष और जामा मस्जिद है। अशोक का एक स्तंभ जो फ़िरोज शाह ने अंबाला के निकट उसके स्थान से उखाड़ा था, को भी यहाँ लगाया गया।

इस काल में निर्मित मस्जिदों में काली मस्जिद, बेगमपुरी मस्जिद, खिड़की मस्जिद और कलां मस्जिद शामिल हैं। महत्वपूर्ण मकबरों में स्वयं सुल्तान का मकबरा और उसके प्रधानमंत्री का मकबरा शामिल है।

बाद की इमारतें

सैयद और लोदी शासकों ने केवल मकबरे बनवाए। दिल्ली के पड़ोस में ही सौ से अधिक मकबरे मिले हैं। मकबरे दो प्रकार के थे, अष्टभुजाकार और चौकोर। अष्टभुजाकार मकबरे शासकों के थे जबकि आयताकार मकबरे सामंतों के। सभी लोदी शासकों को बाग़-ए-जुड में दफनाया गया, जिसे आज लोदी उद्यान के नाम से जानते हैं। यहाँ पर बड़ा गुंबद नामक एक छोटी मस्जिद भी है, जिसका निर्माण सिकंदर लोदी के आदेश पर किया गया।

सल्तनत के पतन के समय जिन प्रांतीय शासकों का उदय हुआ, उन्होंने भी महल, मस्जिद और मकबरे बनवाए। यद्यपि इनकी वास्तुकला दिल्ली से मिलती-जुलती थी, लेकिन इस पर उस क्षेत्र का प्रभाव स्पष्ट था, जिसमें इसका विकास हुआ।
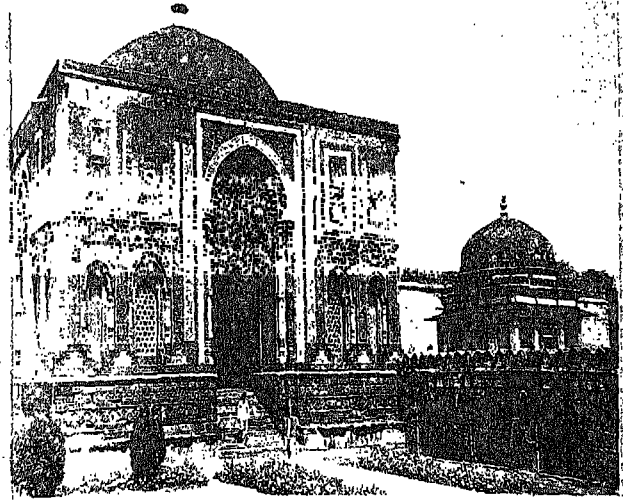
अलाई दरवाज़ा
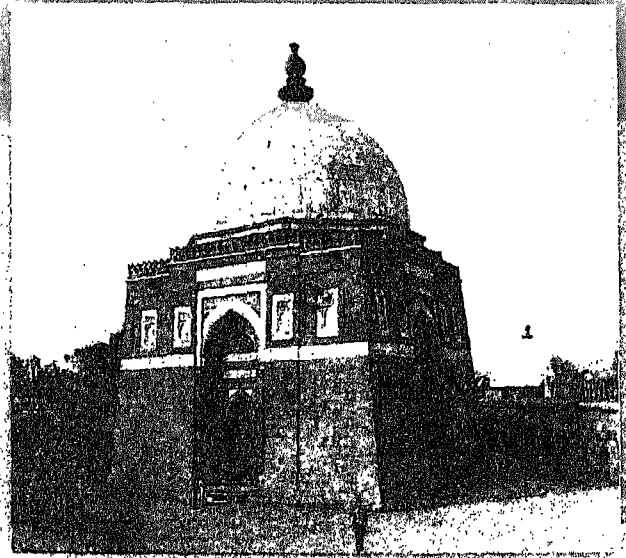
तुगलकाबाद

भाषा और साहित्य

फारसी साहित्य

यद्यपि सल्तनत शासक सदैव सैन्य गतिविधियों में व्यस्त रहे लेकिन उन्होंने इस्लामिक शिक्षा और कला को प्रश्रय दिया। इस काल के बारे में जानकारी का प्रमुख स्रोत है इस दौरान लिखे गए अनेक ऐतिहासिक वर्णन। इनमें शामिल हैं: हसन निज़ामी का *ताज-उल-मासिर*, मिनहाज सिराज का *तबकत-ए-नासिरी*, ज़ियाउद्दीन बरनी का *तारीख़-ए-फ़िरोज़शाही* और *फ़तवा-ए-जहांदरी*, अफीफ़ का *तारीख़-ए-फ़िरोज़शाही*, इसामी का *फ़ुतुह-उस-सलातीन* और याह्या सरहिंदी का *तारीख़-ए-मुबारक शाही*।

मुबारक सैयद का मकबरा, दिल्ली

इस काल में कुछ संस्कृत साहित्य का फारसी में अनुवाद किया गया, जिसमें प्रमुख है 1330 ई. में ज़िया नक्शाबी द्वारा लिखी गई बावन लघु कथाएँ जो *तूतीनामा* नामक पुस्तक में संकलित हैं। फ़िरोज़ तुगलक ने संस्कृत से चिकित्सा शोध-प्रबंधों के अनुवाद का आदेश दिया।

इसके अलावा खगोल विज्ञान और ज्योतिष शास्त्र पर एक सार-संग्रह और संगीत एवं मल्ल-युद्ध पर संकलन का भी अनुवाद किया गया, लेकिन फारसी साहित्य का संस्कृत या किसी स्थानीय भाषा में अनुवाद नहीं किया गया।

सिकंदर लोदी का मकबरा, दिल्ली

कश्मीर के सुल्तान ज़ैनुल आबिदीन (1420-70) ने *महाभारत* और *राजतरंगिणी* का कश्मीरी और चिकित्सा और संगीत पर अनेक संस्कृत कार्यों के अनुवाद का आदेश दिया। इस काल के प्रमुख कवियों में थे
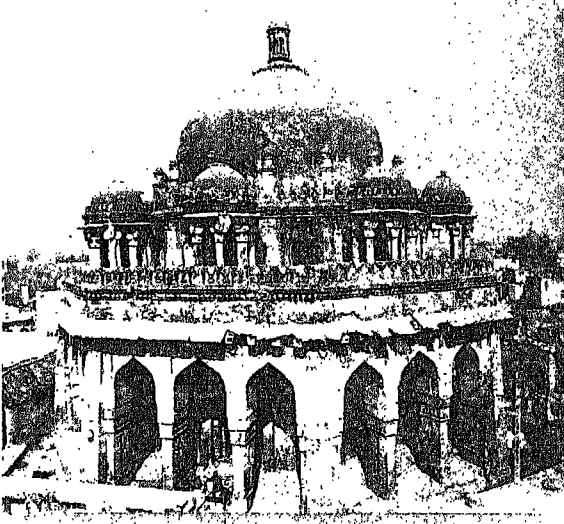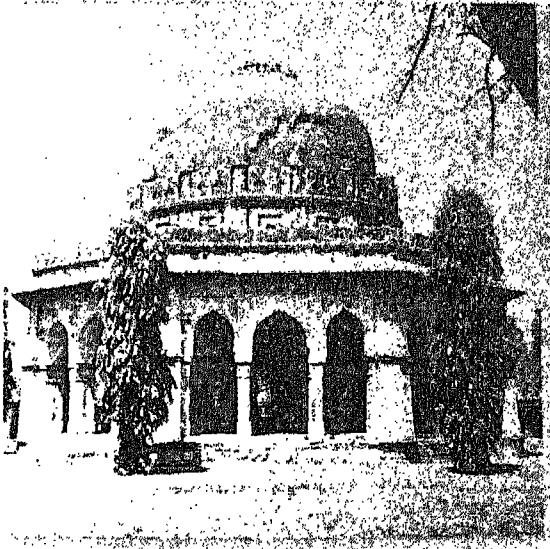
अमीर खुसरो, अमीर हसन दिहलवी और मलिक मुहम्मद जायसी।

सल्तनत काल के दौरान अनेक सूफी कार्यों की रचना की गई। अनेक सूफी शिक्षकों के वार्तालाप और कथनों को उनके छात्रों ने एकत्रित किया, जिससे इन रहस्यवादी व्यक्तियों के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

संस्कृत और हिंदी साहित्य

अनेक विद्वानों का कहना है कि इस काल में संस्कृत साहित्य हिंदू धार्मिक और बौद्धिक चेतना का माध्यम रहा और इसने इस्लाम की मौजूदगी को लगभग पूरी तरह से नकार दिया। संस्कृत साहित्य का विकास विशेष रूप से राजस्थान और दक्षिण भारत के राज्यों और उड़ीसा में हुआ। इस काल में रचित धार्मिक कार्यों में *पुराण* और *धर्मशास्त्र* पर व्याख्या और दार्शनिक निबंध हैं। रामानुज ने *ब्रह्मसूत्र* पर अपनी व्याख्याएँ लिखीं, पार्थसारथी ने *कर्म मीमांसा* पर जबकि जयदेव ने प्रसिद्ध *गीत गोविंद* की रचना की। प्रमुख नाटककारों में जयदेव, जय सिंह सूरी, रवि वर्मन, विद्यानाथ, वर्मन भट्ट बाण, गंगाधर और रूप गोस्वामी शामिल हैं।

विज्ञानेश्वर ने *मिताक्षरा* की रचना की जो कि हिंदू न्याय पर प्रमुख निबंधों में से एक है। जीमूतवाहन ने *दायभाग* की रचना की। इस काल में प्रसिद्ध खगोलशास्त्री भास्कराचार्य भी हुए।

योग, वैशेषिक और न्याय दर्शनशास्त्र पर अनेक व्याख्याओं की रचना की गई। बौद्ध और जैन लेखकों ने तर्कशास्त्र पर अनेक कार्यों की रचना की। इस काल का महान जैन तर्कशास्त्री देव सूरी था। विजयनगर राज्य ने संस्कृत शिक्षा को प्रश्रय दिया; सायण उनके राज्य का प्रमुख विद्वान था।

इस काल में हिंदी साहित्य ने प्रगति की। पृथ्वीराज का दरबारी कवि चंदबरदाई जिसने प्रसिद्ध *पृथ्वीराज रासो* की रचना की, हिंदी में लिखने वाले सबसे पहले लेखकों में था। सारंगधर ने रणथंभौर के दुर्दमनीय हमीर देव पर दो महान कविताएँ लिखीं।

अमीर खुसरो और मलिक मुहम्मद जायसी (1493–1542) ने भी हिंदी में लिखा। जायसी की *पद्मावत* को सही मायनों में एक प्रमुख साहित्यिक उपलब्धि माना गया है।

क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों में की गई रचनाओं से आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास हुआ। इस प्रक्रिया में तुलसीदास, सूरदास, नानक, कबीर, बासव, नानैया और टिक्कण जैसे भक्ति संतों ने अत्यधिक योगदान दिया। तेरहवीं व चौदहवीं शताब्दी में मलयालम और *चांपुस* और *संदेश काव्य* शैलियों का विकास हुआ। सरल दास ने *महाभारत* का उड़िया में अनुवाद किया।

असमिया काव्य शंकरदेव के अंतर्गत अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा, जिसने *रामायण* और *भागवत पुराण* के कुछ हिस्सों का अनुवाद किया। बांग्ला में पहला प्रमुख कार्य *चार्यपद* था, जिसकी रचना दसवीं शताब्दी में की गई। इसके पश्चात् इस क्षेत्र में समृद्ध धार्मिक साहित्य का विकास हुआ। यहाँ पर विशेष रूप से *मंगल काव्य* का उल्लेख किया जाना चाहिए। सन् 1185 ई. के आसपास पहले गुजराती साहित्यिक कार्य *भारत बहुहोली रस* की रचना की गई, जिसके रचयिता थे शालिभद्र।

ललित कला

तुर्कों के आगमन के साथ ही रबाब जैसे अनेक नए वाद्य यंत्र और संगीत के नए नियम भारत आए। तुर्कों ने बदले में अरबों से एक समृद्ध परंपरा प्राप्त

की। फ़िरोज़ शाह तुगलक के शासनकाल में भारतीय शास्त्रीय व्याख्या, *राग दर्पण*, का फारसी में अनुवाद किया गया। अनेक सूफी संगीत में पारंगत थे।

राज्यों में संगीत के प्रश्रयकर्ताओं में जौनुपर के सुल्तान हुसैन शरकी और ग्वालियर के राजा मानसिंह का उल्लेख आवश्यक है। कश्मीर राज्य में भी संगीत का विकास हुआ। प्राप्त तथ्यों के अनुसार सत्रहवीं शताब्दी के अंत में संभवतः तबले का विकास हुआ।

सांस्कृतिक विकास

उपमहाद्वीप में इस्लाम का आगमन एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। एक राजनीतिक अस्तित्व के रूप में इस्लाम के आगमन से पूर्व भारतीय-यूनानी, शक, भारतीय-पार्थियन और कुषाणों का उपमहाद्वीप के विशाल हिस्सों पर शासन था, लेकिन पुरातन काल और मध्यकाल के आक्रमणों की प्रकृति में भारी अंतर था।

शुरू में आए विदेशियों का कोई स्पष्ट धर्मविश्वास नहीं था और आने पर उन्होंने यहाँ के आध्यात्मिक लोकाचार को स्वीकार कर लिया। दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व में यूनानी राजदूत हेलियोडोरस ने वासुदेव के प्रति श्रद्धा स्वरूप बेसनगर स्तंभ की स्थापना की। मेनांडर, कैडफिसस प्रथम और कनिष्क ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया, जबकि अन्य शिवभक्त बन गए। संस्कृत में पहला शिलालेख, जूनागढ़ शिलालेख, शक रुद्रदामन का है।

वहीं इस्लाम एक पूर्ण विकसित धर्म था जिसमें निष्ठा, भाषा, लिपि, कानून, रीति यहाँ तक कि राज्य की अवधारणा भी शामिल थीं। जब इस्लाम ने अरब से बाहर कदम रखा और मध्य पूर्व में उसका प्रभाव बढ़ा तो जिन क्षेत्रों में इसने प्रवेश किया वहाँ क्रांति आ गई। इस्लाम पूर्व राज्यों की भाषा, लिपि, संस्कृति और इतिहास का स्थान इस्लामिक प्रकार ने ले लिया। नई पहचान इतनी प्रबल थी कि इस्लाम पूर्व सभ्यताओं के नामोनिशान लोगों के दिमाग से मिट गए। प्राचीन संसार के अजूबे, भव्य पिरामिड, मिस्र में धर्म परिवर्तन करने वालों में गर्व की अनुभूति जगाने में असफल रहे जो कि अपने महान शासकों तक को भूल गए।

भारत में इस्लाम को स्थानीय आस्था का सामना करना पड़ा, जिसने अपनी वंशानुगत भूमि में किसी और धर्म का स्थान लेने का विरोध किया। इसके फलस्वरूप, पैदा हुए गतिरोध का आने वाली कई शताब्दियों तक हल नहीं किया जा सका। कुछ आधुनिक इतिहासकारों का मत है कि इस काल के लिए 'हिंदू' और 'मुसलमान' शब्दों का प्रयोग अनुपयुक्त है क्योंकि अब तक पहचान इतनी शक्तिशाली नहीं हुई थी कि इन श्रेणियों का प्रयोग किया जाए। लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि हमलावर स्थानीय जनता से स्वयं को अलग समझते थे, जो कि जजिया कर लागू करने से स्पष्ट है। विदेशी सामंतों ने धर्म परिवर्तन करने वाले भारतीय मुसलमानों द्वारा राजनीतिक शक्ति में हिस्सा बाँटने के प्रयासों को विफल कर दिया। इसके फलस्वरूप इस काल में *उम्माहों* के बीच जातीय, सांप्रदायिक और आर्थिक विभाजन प्रबल रहे।

खलीफा के साथ संबंध

दुनिया के अन्य हिस्सों में मुसलमान शासकों की भांति दिल्ली के सुल्तानों की भी यह इच्छा थी कि खलीफा उनके शासन का अनुमोदन करे। खलीफा की शक्ति स्वीकारने की परंपरा महमूद गज़नी के

साथ आरंभ हुई और उसके उत्तराधिकारियों तक जारी रही। सोमनाथ पर हमले के बाद महमूद गज़नी को खलीफा से अनेक पदवियाँ और सम्मान मिले। अब्बासी खलीफाओं का नाम उसके उत्तराधिकारियों के सिक्कों पर लिखा गया। मुहम्मद गौरी को भी खलीफा से सम्मान प्राप्त हुआ।

इल्तुतमिश के सिक्कों में उसका खलीफा के मददगार के रूप में वर्णन सहित खलीफा का भी नाम था। अंतिम खलीफा की मृत्यु के बाद और 1258 में मंगोलों द्वारा बगदाद पर कब्ज़े के साथ अब्बासी खलीफाओं के अंत के बाद भी दिल्ली के सुल्तानों के सिक्कों पर उसका नाम जारी रहा। अन्य लोगों में नसीरुद्दीन महमूद, बलबन, मुइज़ुद्दीन कैकूबाद और अलाउद्दीन खिलजी के सिक्कों में अंतिम खलीफा का नाम उकेरा गया।

गियासुद्दीन तुगलक ने इस परंपरा को जारी रखा। उसका बेटा मुहम्मद बिन तुगलक खलीफा की अनुमति के बिना शासन करने वाले राजाओं को अपहारक मानता था। फ़िरोज़ तुगलक उससे सहमत था। उसने कहा, ''उसकी (खलीफा की) अनुमति से ही राजा की सत्ता सुनिश्चित है और कोई भी राजा तब तक निश्िंचत नहीं है जब तक वह स्वयं को खलीफा को नहीं सौंप देता।''

क्षेत्रीय मुसलमान शासक जो दिल्ली सल्तनत से अलग हो गए, ने भी अब्बासी खलीफाओं के नाम पर सिक्के बनवाए। इसी प्रकार अधिकांश सैय्यद व लोदी शासक स्वयं को खलीफ़ा का प्रतिनिधि मानते थे।

धर्म परिवर्तन

भारत में सीरिया, ईरान, इराक और मिस्र की भांति बड़ी संख्या में धर्म परिवर्तन नहीं हुए। सल्तनत काल में धर्म परिवर्तन आम तौर पर सांसारिक कारणों से होते थे और ये कुछ शहरी व्यावसायिक समूहों तक ही सीमित थे।

जाति प्रथा की क्रूरता को कभी-कभी धर्म परिवर्तन का कारण समझा जाता है, लेकिन धर्म परिवर्तन के बाद किसी भी निचली जाति की स्थिति में सुधार का कोई उदाहरण नहीं है। खोंडकर फज़ली रूबी के अनुसार धर्म परिवर्तन करने वाले व्यक्ति की सामाजिक स्थिति धर्म परिवर्तन से पूर्व उसकी स्थिति जैसी ही रहती थी। एक धर्म होने के बावजूद भी विदेशी सामंत हिंदूधर्म परिवर्तन करने वालों को हीन दृष्टि से देखते थे। यह अति जातिवाद बलबन के शासनकाल में अपनी पराकाष्ठा तक पहुँचा और सत्रहवीं शताब्दी तक ये भावनाएँ प्रबल रहीं।

इस्लाम का जातिवादी क्रूरता के विरुद्ध समानता का दावा वास्तव में उन्नीसवीं शताब्दी में छिड़ा विवाद था। अपने शासन के दौरान मुसलमानों ने केवल दोनों धर्मों के विभिन्न धार्मिक परिप्रेक्ष्यों की बात की - इस्लामिक एकेश्वरवाद के विरुद्ध हिंदू बहुदेववाद, न कि उनकी विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाएँ। अंग्रेज़ों के आगमन के बाद यह पहली बार विचार किया गया कि इस्लाम सामाजिक समानता बढ़ाता है न कि धार्मिक।

सूफियों ने स्थानीय जनता के धर्म परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। यह माना जाता है कि सूफियों द्वारा धर्म का प्रचार पूर्णत: शांतिप्रिय था, लेकिन, ''योद्धा सूफ़ियों'', ने भारत व अन्य स्थानों पर सीमा पर युद्ध में सक्रिय रूप से हिस्सा लिया। कहा जाता है कि सन् 1296-1347 तक वे दक्कन में सक्रिय थे। बंगाल पर भी मुस्लिम सैनिकों ने नहीं बल्कि *बड़ा औलिया* नामक बारह प्रसिद्ध मुस्लिम सैन्य संतों ने विजय प्राप्त की। गुलामों के

व्यापार ने इस्लाम का अनुसरण करने वालों की संख्या में वृद्धि की, क्योंकि अधिकांश गुलामों का धर्म परिवर्तन कर दिया जाता था।

विद्वानों का मत है कि इस्लाम को सबसे अधिक लाभ पश्चिमी पंजाब और पूर्वी बंगाल में हुआ। ये दोनों क्षेत्र आबाद कृषि क्षेत्र की परिधि में थे। जब इस्लाम का उपमहाद्वीप में आगमन हुआ तो शिकार कर जीवनयापन करने वाले और पशुओं को चराने वाले जो स्थायी खेतीबाड़ी की ओर मुड़ रहे थे, ने दोनों क्षेत्रों में नए धर्म को स्वीकार कर लिया।

भक्ति आंदोलन

भक्ति आंदोलन को अधिकांशतः इस्लाम के समानतावादी संदेश और निम्न जातियों में उसके विस्तार के खिलाफ हिंदुओं का जवाब समझा जाता है। लेकिन यह आकलन अपूर्ण है क्योंकि हिंदू व्यवस्था में भक्ति, साधना का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। यह *श्वेताश्वतर उपनिषद* और *भगवद् गीता* में लिखा है जिसमें भगवान कृष्ण कहते हैं कि एक आम भक्त भी उन तक भक्ति के रास्ते पहुँच सकता है।

छठी शताब्दी ई. में भक्ति आंदोलन की शुरुआत तमिल क्षेत्र से हुई जो कर्नाटक और महाराष्ट्र में फैल गई और पंद्रहवीं शताब्दी के आसपास यह उत्तर भारत और बंगाल पहुँची। इसकी विशेषता थी भक्त और उसके स्वयं के भगवान के बीच एक प्रेमपूर्ण संबंध पर ज़ोर। इसके लोकप्रिय कवि संतों ने क्षेत्रीय भाषाओं में भक्ति पदों की रचना की और सभी वर्गों को मुक्ति का आश्वासन दिया। भक्ति आंदोलन के नेता समाज के सभी वर्गों से थे।

इस आंदोलन का विकास बारह अलवार वैष्णव संतों और तिरसठ नयनार शैव संतों ने किया। कहा जाता है कि शैव संत अप्पार ने पल्लव राजा, महेंद्रवर्मन को शैवधर्म स्वीकार करवाया। अन्य महान संत थे समबंदर और मणिक्कवसागर। इन संतों की रचनाएं *तिरुमुराई* में संकलित हैं, जिसे *तमिल वेद* कहा जात है। इस संग्रह में बाद में जोड़ी गई बारहवीं पुस्तक है *पेरीय पुराणम्* जिसकी रचना सेक्कीलर ने चोल राजा, कुलोत्तुंग प्रथम के शासनकाल में की।

भक्ति आंदोलन को अक्सर शंकराचार्य का प्रत्युत्तर माना जाता है, लेकिन शंकर ने स्वयं अनेक भक्तिपूर्ण कार्यों की रचना की। इस आंदोलन के विशिष्ट नेताओं में से एक रामानुज थे जो श्री वैष्णववाद के संस्थापक के रूप में लोकप्रिय हैं। दक्षिण में भक्ति आंदोलन के प्रमुख प्रचारकों में माधव (1199-1278) का भी नाम है।

वरकरी पंथ

भक्ति कवि-संतों को संत कहा जाता था और उनके दो समूह थे। तेरहवीं से अठारहवीं शताब्दी के बीच वैष्णव संत महाराष्ट्र में लोकप्रिय हुए। वे भगवान विठोबा के भक्त थे। दूसरा समूह पंद्रहवीं शताब्दी से पंजाब और राजस्थान के हिंदीभाषी क्षेत्रों में सक्रिय था और इसकी निर्गुण भक्ति (हर विशेषता से परे भगवान की भक्ति) में आस्था थी।

विठोबा पंथ के संत और उनके अनुयायी वरकरी या तीर्थयात्री-पथ कहलाते थे क्योंकि वे हर वर्ष पंढरपुर की तीर्थयात्रा पर जाते थे। पाँच सौ वर्ष तक चले इस पंथ के कम से कम पचास संत हैं, जिनमें सबसे प्रमुख हैं: ज्ञानेश्वर (*ज्ञानेश्वरी* के लेखक जो गीता पर एक व्याख्या है और इस पंथ की पहली पुस्तक है); नामदेव (1270-1350); एकनाथ (1548-1600); तुकाराम (1598-1649) और उनके समकालीन रामदास जिनकी शिक्षा से शिवाजी प्रभावित हुए। महाराष्ट्र के भक्ति आंदोलन

ने मराठाओं को एक योद्धा समुदाय बना दिया, जिसने मुगलों को चुनौती दी।

सगुण भक्ति

उत्तर में भक्ति आंदोलन का प्रचार रामानंद ने किया जो रामानुज के वंशज माने जाते हैं। रामानंद चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी में बनारस में रहते थे और उन्होंने रामानंदी संप्रदाय की स्थापना की, जो राम को सर्वोच्च भगवान के रूप में पूजते थे। उत्तर भारत के प्रारंभिक संत जिनमें सेन, पीप, धन्ना, सधना और रैदास शामिल हैं, रामानंद के शिष्य थे।

रामानंद की शिक्षा से दो संप्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ, सगुण जो पुनर्जन्म में विश्वास रखता है और निर्गुण जो भगवान के निराकार रूप को पूजता है। निर्गुण संप्रदाय के सबसे प्रसिद्ध प्रतिनिधि थे कबीर, जिन्हें सभी भावी उत्तर भारतीय पंथों का आध्यात्मिक गुरु माना गया है।

सगुण संप्रदाय के सबसे प्रसिद्ध व्याख्याताओं में थे तुलसीदास और नाभादास जैसे राम भक्त और निम्बार्क, वल्लभाचार्य, चैतन्य, सूरदास और मीराबाई जैसे कृष्ण भक्त। तुलसीदास(1532-1623) ने प्रसिद्ध *रामचरित मानस* की रचना की, जिसे हिंदू समाज पर उसके प्रभाव के रूप में वाल्मीकि रामायण के समकक्ष ही समझा जाता है। तुलसीदास अकबर के शासनकाल में रहे, लेकिन उन्हें राजकीय प्रश्रय मिलने का हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है।

निम्बार्क और वल्लभ दो दक्षिण भारतीय ब्राह्मण जिन्होंने मथुरा में बसकर कृष्ण और राधा की भक्ति की। निम्बार्क के बारे में हमारे पास अधिक जानकारी नहीं है, हालांकि प्राप्त तथ्यों के अनुसार 1479-1531 तक वल्लभ का जीवनकाल है और उन्होंने राधा-कृष्ण की भक्ति में समर्पित वल्लभाचार्य संप्रदाय की स्थापना की।

बंगाल में भी कृष्ण भक्ति की लहर चली, जहाँ उसके प्रारंभिक प्रतिपादकों में विद्यापति ठाकुर और चंडीदास थे। लेकिन वल्लभ के समकालीन, चैतन्य (1485-1533) निश्चित रूप से कृष्ण भक्ति के सबसे प्रसिद्ध प्रतिपादक थे। नभद्वीप में एक ब्राह्मण परिवार में जन्मे चैतन्य को स्वयं कृष्ण का अवतार माना जाता था। संन्यासी बनने के बाद वे बंगाल छोड़कर उड़ीसा में पुरी चले गए, जहाँ उन्होंने दो दशक तक भगवान जगन्नाथ की उपासना की। कहा जाता है कि उन्होंने *गौड़* के हुसैन शाह के मुख्यमंत्री और मुख्य मुंशी सहित अनेक लोगों का धर्म परिवर्तन किया।

राजपूत राजकुमारी, मीरा बाई जो जोधपुर के संस्थापक की पोती थीं और जिनका विवाह मेवाड़ के राजपरिवार में हुआ था, कृष्ण की अनन्य भक्त थीं, जिन्हें वह गिरधर-गोपाल के रूप में पूजती थीं। गुजरात में नरसिंह मेहता और सूरदास (1478-1583) जैसे अन्य प्रमुख भक्ति संतों ने अपने समय के भक्ति साहित्य में भारी योगदान दिया। सूरदास द्वारा रचित *सूर सागर* में कृष्ण के जीवन के बारे में लिखा गया है।

शैववाद में भी अनेक लोकप्रिय संप्रदायों का उदय हुआ, जिनमें उत्तर भारत में सर्वप्रमुख है कश्मीर शैववाद, जिसकी स्थापना प्रारंभिक नवीं शताब्दी ई. में वसुगुप्त ने की। माना जाता है कि कश्मीर शैववाद पर महायान बौद्ध धर्म का प्रभाव था। उसका सबसे लोकप्रिय प्रतिपादक ग्यारहवीं शताब्दी में अभिनवगुप्त था। चौदहवीं शताब्दी में मुसलमानों के कश्मीर पर हमले में कश्मीर शैववाद अपने जन्मस्थान से लगभग पूरी तरह मिट गया।

दक्षिण भारत में शैव–सिद्धांत मत और लिंगायत संप्रदाय का उदय हुआ। शैव-सिद्धांत का उदय नयनार के समय में हुआ, हालांकि इसने तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दियों में ही अपना पूर्ण रूप प्राप्त किया। लिंगायत आंदोलन के संस्थापक थे, बासव जो बारहवीं शताब्दी में कल्याणी के कल्चुरि राजा के दरबार में एक मंत्री थे। लिंगायतों को अपना नाम उस छोटे लिंग से मिला है, जो इस संप्रदाय के सभी अनुयायी अपने साथ रखते हैं।

गोरखनाथ ने शैववाद नामक एक नया आंदोलन चलाया; उनके अनुयायी गोरखनाथ जोगी कहलाए। सूफी साहित्य में अक्सर उनका जिक्र किया जाता है और पंद्रहवीं शताब्दी तक वे काफी प्रभावशाली हो गए थे। उनका केंद्र था सिंध सागर दोआब में गोरखनाथ का टीला, हालांकि अन्य स्थानों पर भी उनके मठ थे। इसके अनुयायी अक्सर कर्णफूल पहनते थे और कर्णफटा (जिसका कान कटा हो) जोगियों के नाम से भी जाने जाते थे। वे निरंतर आग जलाकर रखते थे और सभी निवासियों की सामूहिक रसोई होती थी।

सिखधर्म का उदय

गुरु नानक सिख पंथ के संस्थापक थे। सन् 1469 में पंजाब में तलवंडी में एक खत्री परिवार में जन्मे गुरु नानक का शुरू से ही दार्शनिक स्वभाव था और उन्हें संतों के सान्निध्य में आनंद आता था। तीस वर्ष की उम्र में एक रहस्यमय अनुभव के बाद उन्होंने 'उदासी' नामक धर्म प्रचारक यात्रा आरंभ की।

गुरु नानक ने भारतीय उप महाद्वीप के अंदर और उसके बाहर अनेक यात्राएँ कीं। वे मध्यकाल के एक व्यापक भ्रमण करने वाले संत थे। उनके एक
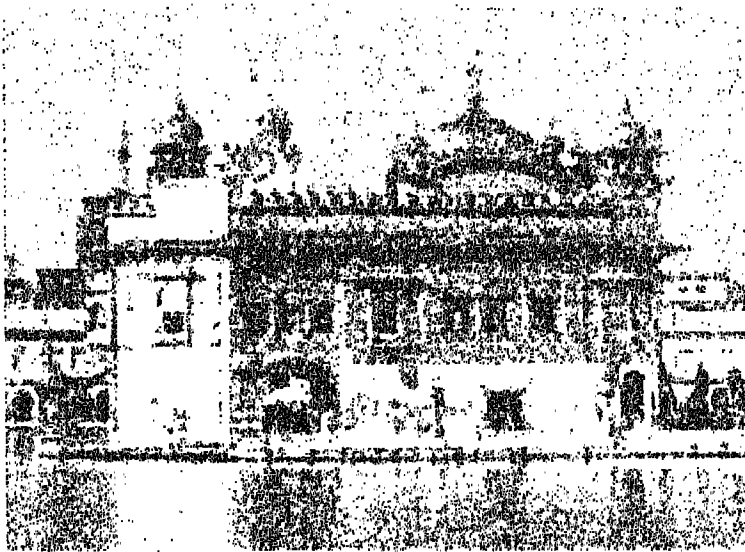
स्वर्ण मंदिर

छंद में 'संसार के नौ क्षेत्रों' (नौ खंड) में उनकी यात्राओं का उल्लेख है। यह लगभग निश्चित है कि उन्होंने अनेक हिंदू बौद्ध व मुस्लिम तीर्थ स्थानों की यात्रा की और उस समय की सभी प्रमुख धार्मिक आस्थाओं के प्रतिपादकों के साथ विचार-विमर्श किया।

अंततः गुरु नानक रावी के दाहिने किनारे पर करतारपुर में बस गए और वहां आने वाले सभी लोगों को शिक्षा (सीख) दी। गुरु का लंगर स्थापित किया गया और जाति, धर्म और स्थिति की परवाह न करते हुए हर किसी का पवित्र भोजन में स्वागत किया गया। सन् 1539 में सत्तर वर्ष की उम्र में गुरु नानक की मृत्यु हुई।

गुरु नानक ने ईश्वर और मानव जाति की एकता का प्रचार किया और कर्मकांडों के स्थान पर भक्ति का समर्थन किया। कबीर की भांति उनका विश्वास था कि एक ईश्वर की भक्ति जाति, मत या संप्रदाय के अनपेक्ष मुक्ति दिलाएगी। उन्होंने मध्य मार्ग का प्रचार किया जिसमें आध्यात्मिक जीवन गृहस्थ के कर्तव्यों में सम्मिलित हो जाता है।

गुरु नानक के पहले उत्तराधिकारी, गुरु अंगद ने संस्थापक की रचनाओं को भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने के लिए गुरमुखी लिपि का विकास किया। उन्होंने गुरु नानक की शिक्षा का प्रचार करने के लिए केंद्रों की स्थापना की। अन्य तीन गुरु थे गुरु अमर दास, गुरु राम दास और गुरु अर्जुन। गुरु राम दास ने एक सरोवर खुदवाया, जो आज भी अमृतसर में है। सरोवर के बीच में हरमंदिर साहिब का निर्माण किया गया जो आज स्वर्ण मंदिर के नाम से जाना जाता है। गुरु अर्जुन ने इसकी नींव का पत्थर रखने के लिए एक सूफ़ी संत, मियाँ मीर को बुलाया। गुरु अर्जुन ने दूसरे गुरु द्वारा शुरू किए गए संकलन के कार्य को ज़ारी रखा, जिसमें उन्होंने अनेक हिंदू व मुस्लिम संतों की रचनाओं को भी शामिल किया। यह आदिग्रंथ, सिखों का पवित्र धर्मग्रंथ बना।

अन्य संप्रदाय

अन्य भक्ति संप्रदायों में अहमदाबाद के एक जुलाहे, दादू दयाल द्वारा स्थापित दादूपंथी हैं। उन्होंने ब्रज-भाषा और राजस्थानी में अनेक छंदों की रचना की। उनके शिष्य सुंदरदास ने प्रसिद्ध *सुंदर विलास* की रचना की। सतनामी संप्रदाय की स्थापना बीर भान ने की।

विद्वानों का मत है कि संत भारत की असनातनी धार्मिक परंपरा के करीब होते हुए वैष्णव भक्ति और शैव नाथ योगियों की परंपरा का संश्लेषण थे।

कुछ विद्वानों के अनुसार भगवान कृष्ण को समर्पित *भागवत पुराण,* जो कि महान *पुराणों* में से एक समझा जाता है, की रचना दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में हुई।

सूफ़ी आंदोलन

भारत में सूफ़ी आंदोलन को अक्सर हिंदू रहस्यवाद का इस्लामिक प्रतिपक्ष समझा जाता है, हालांकि यह सही है कि सूफ़ी आंदोलन इस्लाम में रहस्यवाद का सूचक है, लेकिन यह एक ऐसा आंदोलन है जो मुसलमानों में स्वतंत्र रूप से शुरू हुआ, न कि हिंदू धर्म से उसके संपर्क के फलस्वरूप। जब सूफ़ीवाद हिंदू और बौद्ध रहस्यवादी विचारों के संपर्क में आया तब तक उसकी प्रमुख विचारधारा का विकास हो चुका था।

सूफ़ीवाद और बौद्धधर्म के बीच प्रारंभिक संपर्क उत्तर-पश्चिम फ़ारस और मध्य एशिया में हुआ। बाद में ऑक्सियाना के परे बौद्धधर्म ने संभवतः सूफ़ीवाद को प्रभावित किया। साँस रोकना

जैसे कुछ सूफ़ी अभ्यास बौद्धधर्म के मार्ग से योगिक प्राणायाम से लिए गए। विद्वानों का मानना है कि मध्य एशिया में कुछ ज़ियारत (कब्र या अवशेष) बौद्ध स्तूपों के अवशेषों पर खड़े हैं। उदाहरण के लिए, बल्ख, जो कि एक बौद्ध मठ केंद्र था, बाद में एक सूफ़ी गढ़ बन गया।

बारहवीं शताब्दी तक अल-गज़्ज़ाली, अल-हल्लज और इब्न अल-अरबी के प्रयासों के फलस्वरूप सूफ़ीवाद पूरी तरह से कट्टर इस्लाम में सम्मिलित हो गया। भारतीय परिप्रेक्ष्य में सूफ़ियों ने उलेमा के साथ अपने मतभेदों को अच्छी तरह से सुलझाकर *शरियत* का पालन करने की आवश्यकता पर बल दिया।

भारत में विभिन्न सूफ़ी विचारधाराओं में चिश्ती और सुहरावर्दी विचारधाराएँ (सिलसिला) प्रमुख थीं। भारत में चिश्ती विचारधारा की स्थापना मुइनुद्दीन चिश्ती ने की जो 1192 ई. में भारत पहुँचे और अजमेर में अपना केंद्र स्थापित किया। भारत में अन्य प्रमुख सूफ़ी संत थे शेख कुतबुद्दीन बख्तियार काकी, शेख हमीदुद्दीन, शेख़ फरीदुद्दीन मसूद गंज-ए-शकर और प्रसिद्ध शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया। सूफ़ियों ने, जिस क्षेत्र में रहे, वहाँ की स्थानीय भाषा अपना ली। उदाहरण के लिए, पंजाब में बाबा फ़रीद ने क्षेत्र के लोगों में अपने संदेश का प्रचार करने के लिए पंजाबी में छंदों की रचना की।

भारत में सुहरावर्दी विचारधारा के प्रमुख संतों में शेख बहाउद्दीन ज़कारिया शामिल हैं, जिनका मुल्तान में *खानकाह;* एक प्रमुख तीर्थ केंद्र बन गया।

पंद्रहवीं शताब्दी में भारत में कादिरी सिलसिले की स्थापना हुई, जबकि सल्तनत काल में भारत में शत्तरी और फ़िरदौसी सिलसिले का आगमन हुआ। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में नक्शबंदी संप्रदाय का प्रभाव बढ़ा। इसके प्रमुख सदस्यों में ख्वाजा बकी बिल्लाह और शेख अहमद सरहिंदी थे, जो अकबर के शासनकाल के अंतिम वर्षों में काबुल से भारत में आए।

अभ्यास

1. मस्जिद की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. भारत में मुस्लिम वास्तुकला के विकास के विभिन्न चरणों का वर्णन कीजिए।
3. भारतीय परंपरा में भक्ति का क्या स्थान था?
4. अलवार और नयनार संतों की सामाजिक संरचना क्या थी?
5. आप रामानंद के महानतम अनुयायियों में किन्हें मानते हैं और क्यों?
6. बंगाल में भक्ति आंदोलन के विकास का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
7. महाराष्ट्र के प्रमुख भक्ति संत कौन थे और उनका क्या राजनीतिक महत्त्व है?
8. इस्लाम में सूफ़ीवाद किस तरह से गहराई से जुड़ा है।
9. सूफ़ीवाद और बौद्धधर्म के बीच संपर्कों का वर्णन कीजिए।
10. सूफ़ीवाद और कट्टर इस्लाम के बीच संबंध का वर्णन कीजिए।

11. संक्षिप्त टिप्पणी कीजिएः
    (क) कुव्वत-उल-इस्लाम
    (ख) अलाई दरवाज़ा
    (ग) तुगलकाबाद
    (घ) सैयद व लोदी मकबरे
12. सही या गलत बताइए :
    (क) जयदेव ने *गीत गोविंद* की रचना की।
    (ख) चंदबरदाई ने *पद्मावत* की रचना की।
    (ग) जायसी ने *पृथ्वीराज रासो* की रचना की।

अध्याय 13
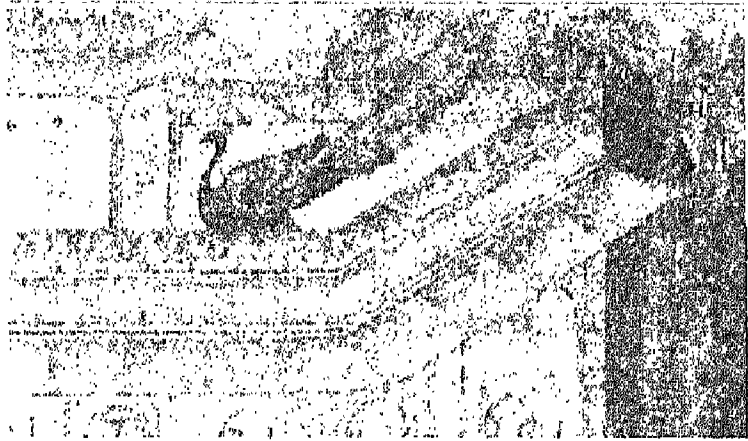
मुगल शासन की स्थापना

मुगल काल को भारत में मुस्लिम शासन के इतिहास में एक नई शुरुआत के रूप में देखा जाता है। सल्तनत काल की अव्यवस्था से परे जब राज्य एक युद्ध क्षेत्र की भांति था तब मुगल काल को एक ऐसे समय के रूप में देखा जाता है जब धर्म और राजनीति जैसे विवादास्पद मसलों को पीछे छोड़ दिया गया और राजतंत्र का वैभव केंद्र बन गया।

मुगल काल वास्तव में राजसी वैभव का काल था जो कि शाही व्यक्तियों के जीवन से बड़े चित्रांकन, राजकीय दरबारों के वैभव, शाही इमारतों की भव्यता और शासक वर्ग की आडंबरपूर्ण जीवनशैली में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। ठाट-बाट और शक्ति का जनता के सामने ऐसा दिखावा शायद ही भारत में पहले कभी हुआ था।

बाबर (1526-1530)

मुगल साम्राज्य की स्थापना तैमूर की पाँचवीं पीढ़ी के एक वंशज ज़हीरूद्दीन मुहम्मद बाबर ने की। चौदहवीं शताब्दी के अंत में तैमूर दिल्ली को लूटकर और वहाँ रहने वालों का नरसंहार कर अपने साथ असीमित संपत्ति ले गया। तैमूर की मृत्यु के बाद निचली वोल्गा से सिंधु नदी के तट तक फैला उसका राज्य, जिसमें आधुनिक तुर्की, ईरान, ट्रांसऑक्सियाना, अफ़गानिस्तान और पंजाब के कुछ भाग शमिल थे, का विघटन हो गया क्योंकि इसका समय-समय पर इसके उत्तराधिकारियों के बीच तुर्की उत्तराधिकार नियमों के अनुसार बँटवारा होता रहता था।

बाबर ने ट्रांसऑक्सियाना के एक छोटे से राज्य, फरगना का 1494 में बारह वर्ष की उम्र में सिंहासन ग्रहण किया। उसके और तैमूरी राजकुमारों के बीच संघर्ष के फलस्वरूप अनेक नई शक्तियों ने तैमूर के साम्राज्य की ढलती शान का स्थान लेने का प्रयास किया। इनमें प्रमुख थे उज़बेक, एक मंगोल जनजाति जिसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था लेकिन तैमूरी राजकुमार इन्हें असभ्य ही मानते थे और सफ़ाविद जो स्वयं को पैगंबर मुहम्मद का वंशज मानते थे। उज़बेक क्योंकि सुन्नी मुसलमान थे और सफ़ाविद शिया, इस कारण भी उनके संघर्षों में एक सांप्रदायिक रंग आ जाता था। एक अन्य उदीयमान शक्ति थे ओटोमन तुर्क, जो सुन्नी इस्लाम को मानते थे।

बाबर को अपने वंश पर बड़ा अभिमान था इसलिए वह समरकंद पर कब्ज़ा करना चाहता था, जो उसके तैमूरी पूर्वजों की सांस्कृतिक केंद्रभूमि थी। उसने दो बार शहर पर विजय प्राप्त की, लेकिन उज़बेकों ने उसे मात दे दी, जिसके कारण उसे सफ़ाविदों की मदद लेनी पड़ी। हालांकि वह उनकी सहायता से समरकंद पर पुनः कब्ज़ा करने में सफल रहा, लेकिन बाबर जो कि एक सुन्नी था, लंबे समय तक शिया सफ़ाविदों के प्रतिनिधि के रूप में काम करने के लिए तैयार नहीं था। जब उज़बेकों ने एक बार फिर उसे समरकंद से निकाल दिया तो उसने

अपनी मातृभूमि छोड़कर स्वयं के लिए काबुल में एक नया क्षेत्र बनाया। इस उजाड़ भूमि में बसे बाबर की दृष्टि जल्दी ही भारत की ओर मुड़ी जो दूध और शहद की भूमि के नाम से प्रसिद्ध था और इससे पहले अनेक हमलावरों को अपनी ओर आकर्षित कर चुका था।

[illegible]

भारत की राजनीतिक स्थिति बाबर के पक्ष में थी। तुगलकों के पतन के बाद अफ़गान भारत में सबसे प्रभावशाली विदेशी मुसलमान दल के रूप में उभरे। निवर्तमान लोदी शासक सुल्तान इब्राहिम का राजतंत्र की शक्ति का विस्तार करने का प्रयास जो कि गहरे तक बैठी समानतावादी परंपरा के विरुद्ध था, ने साथी अफ़गान प्रमुखों को क्रोधित कर दिया। इनमें सर्वप्रमुख था पंजाब का शक्तिशाली शासक दौलत खाँ लोदी, जिसके अपने शासक से अप्रिय संबंध लोदी साम्राज्य के पतन का कारण बने।

दौलत खाँ को अपने क्षेत्र का विस्तार करने के प्रयासों के फलस्वरूप शुरुआत में बाबर के साथ संघर्ष करना पड़ा जो खुद भी अपने क्षेत्र का विस्तार करने में लगा था। ये प्रारंभिक संघर्ष अनेक सीमा क्षेत्रों को लेकर हुए, जो कभी एक तो कभी दूसरे के अधीन होते थे।

सन् 1520-21 में सिंधु के पार अपने एक धावे में बाबर ने सियालकोट और लाहौर पर कब्ज़ा कर हिंदुस्तान पर अपनी जीत का मार्ग खोला लेकिन अपने राज्य में हो रहे विद्रोहों के फलस्वरूप उसे पीछे हटना पड़ा। अपने राज्य का मसला सुलझाकर बाबर ने एक बार फिर हिंदुस्तान पर नज़र डाली। इसी समय असंतुष्ट दौलत खाँ ने उसे इब्राहिम लोदी को अपदस्थ करने का आमंत्रण दिया, लेकिन पेशावर पहुँचकर बाबर को पता चला कि दौलत खाँ ने उसे सहायता देने से इनकार कर दिया अतः उसने उससे युद्ध करने का निश्चय किया। बाबर की आगे बढ़ती सेना को देखकर दौलत खाँ की सेना पीछे हट गई और बाबर ने पंजाब पर कब्ज़ा कर लिया।

[illegible]

इसके फलस्वरूप दिल्ली के शासक इब्राहिम लोदी से संघर्ष होना निश्चित था। अप्रैल 1526 में दोनों सेनाएँ पानीपत के ऐतिहासिक युद्धक्षेत्र में मिलीं जहाँ दोनों सेनाओं ने दो और महत्त्वपूर्ण युद्ध लड़े। बाबर द्वारा तोप गोले और तोड़ेदार बंदूक के प्रयोग ने उसकी छोटी सेना की सफलता सुनिश्चित की। भारत के अन्य शासकों की भांति, लोदी सुल्तान अग्नि शस्त्रों को अपनी सेना में सम्मिलित कर पाने में असफल रहा और इसलिए मुगलों का सामना नहीं कर पाया। इब्राहिम लोदी, पंद्रह हज़ार से भी अधिक सैनिकों के साथ युद्ध क्षेत्र में मारा गया।

हालांकि पानीपत के युद्ध क्षेत्र के महत्त्व को कम नहीं समझा जा सकता, लेकिन इससे बाबर को हिंदुस्तान पर एकाएक ही विजय प्राप्त नहीं हुई। अफ़गानों ने भारत के अनेक हिस्सों, विशेषकर पूर्व, में अपनी जड़ें जमा ली थीं और उन्होंने हर प्रतिद्वंद्वी का डटकर सामना किया। इसके अलावा बाबर को राजपूतों पर भी विजय प्राप्त करनी थी जो भारतीय परिदृश्य पर उसके आगमन से पूर्व अफ़गानों को चुनौती देने वालों में प्रमुख थे। दक्षिण की ओर विजयनगर साम्राज्य उस समय भारत में सबसे शक्तिशाली था लेकिन इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि पानीपत की जीत ने बाबर को भारत में सत्तासंघर्ष में एक प्रबल दावेदार बना दिया।

लेकिन बाबर के अनेक आदमी भारत में रहकर आगामी युद्धों को नहीं लड़ना चाहते थे। उन्हें भारत

का मौसम अपने अनुकूल नहीं लगा, विशेषकर यहाँ की भीषण गरमी का मौसम। स्थानीय लोगों की लड़ाकू प्रवृत्ति उन्हें हतोत्साहित करने का दूसरा कारण थी। बाबर को स्वयं किसानों की 'असाधारण शत्रुता' पर ध्यान देना पड़ा, जिन्होंने उसकी सेना के आगमन पर अपना घर छोड़ दिया।

बाबर भी अपने आदमियों की भांति भारत को लेकर विशेष रूप से उत्साहित नहीं था। यह उसकी आत्मकथा *तुज़ुक-ए-बाबरी* से स्पष्ट है, जिसमें वह लिखता है कि 'भारत में कुछ ही आकर्षण थे। लेकिन बाबर के मन में यह भी स्पष्ट था कि उसका भविष्य गरीबी से ग्रस्त काबुल में नहीं था।

खनवा

अनुनय और दृढ़ता से बाबर ने अधिकांश सैनिकों को अपना साथ देने और मेवाड़ के नेता राणा संग्राम सिंह, जो राणा सांगा के नाम से लोकप्रिय थे, के साथ महत्त्वपूर्ण युद्ध लड़ने के लिए राज़ी कर लिया। इस युद्ध में लगी भारी बाज़ी को ध्यान में रखकर लगभग सभी प्रमुख राजपूत नेताओं ने राणा को सैन्य समर्थन दिया। वास्तव में राजपूत ही बाबर की आकांक्षाओं के पूरा होने के मार्ग में बाधक सिद्ध हुए। अनेक अफ़गानों ने दिल्ली के सिंहासन को वापस पाने की आशा में राजपूत राजा का साथ दिया। इतनी शक्तिशाली सेना और राणा सांगा की सैन्य प्रतिष्ठा ने मिलकर बाबर के आदमियों को डरा दिया।

अब बाबर ने स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया कि उनका युद्ध एक गैर-मुसलमान भूमि पर इस्लाम की पताका फहराए रखने के लिए एक धार्मिक युद्ध अर्थात् जिहाद है। बाबर ने नाटकीय तरीके से एकत्रित टुकड़ियों के समक्ष मदिरा के बर्तन तोड़कर मदिरापान छोड़ने की घोषणा की। उसने मुसलमानों पर से *तमगा* (मुद्रांक शुल्क) भी हटा दिया।

धार्मिक भावना से उत्साहित सेना ने सन् 1527 में खनवा की ओर कूच किया, जहाँ बाबर की बंदूकों और मध्य एशियाई घुड़सवार फौज (जिसे तुर्की में ताबड़ जंगी कहते थे) के आगे विरोधी सेना को हार माननी पड़ी। राजनीतिक आशय के अलावा इसका परिणाम अन्य कारणों से भी महत्त्वपूर्ण था। बाबर द्वारा तोपों और घुड़सवार धनुर्धरों के कुशल प्रयोग ने तब तक भारत में जारी हाथियों पर युद्धप्रणाली का काफी हद तक महत्त्व कम कर दिया।

बाबर ने अत्यंत प्रसन्नतापूर्वक अपनी डायरी में इस घटना का उल्लेख किया है। उसने लिखा, "इस्लाम की खातिर मैं जंगलों में घूमा, गैर-मुसलमानों और हिंदुओं के साथ युद्ध की तैयारी की और एक शहीद की मृत्यु की इच्छा रखी। अल्लाह का शुक्र है कि मैं गाज़ी बन गया।"

राणा सांगा और अन्य प्रमुख राजपूतों की मृत्यु ने उत्तर भारत में राजपूत पुनरुत्थान की संभावना को किसी हद तक कम कर दिया। बाबर का अगला कदम था मालवा में चंदेरी पर हमला, जो तब राणा सांगा के एक राजपूत मित्र का गढ़ था। राजपूतों का अंतिम आदमी तक वीरगति को प्राप्त हुआ और उनकी स्त्रियों ने जौहर कर लिया। दिल्ली-आगरा क्षेत्र में अपनी स्थिति मज़बूत करने के बाद बाबर ने आगरा के पूर्व में अनेक किलों को जीतने का बीड़ा उठाया, जिनमें प्रमुख थे ग्वालियर और धौलपुर।

एक बार फिर अफ़गान

लेकिन बाबर के कदमों को पूर्वी उत्तर प्रदेश के अफ़गानों ने रोक लिया। हालांकि उन्होंने बाबर के प्रति राजभक्ति प्रकट की थी, लेकिन वे मुगल शासन को नापसंद करते थे और फिर से स्वतंत्र होना

चाहते थे। उन्हें बंगाल के शासक, नुसरत शाह ने प्रोत्साहित किया जिसने इब्राहिम लोदी की एक बेटी से विवाह किया था। अफ़गानों ने इस क्षेत्र से बाबर के अधिकारियों को निकालकर कन्नौज तक कूच किया। इब्राहिम लोदी के भाई महमूद लोदी ने बिहार तक पहुँचकर इस आंदोलन की बागडोर संभाली।

सन् 1529 के आरंभ में बाबर ने अफ़गानों की चुनौती का मुकाबला करने के लिए पूर्व की ओर कदम बढ़ाए। उसने घाघरा के निकट अफ़गानों और नुसरत शाह की एकीकृत सेनाओं का सामना किया, लेकिन असफल रहा। अधिकांश बिहार अफ़गान सरदारों के पास ही रहा। बाबर वापस आगरा लौट गया जहाँ कुछ ही समय बाद उसकी मृत्यु हो गई। उसने लिखित निर्देश छोड़ रखे थे कि उसे काबुल में ही दफ़नाया जाए। कुछ समय के लिए उसके शरीर को आगरा में आराम बाग में रखा गया जहाँ पर आज ताजमहल है। सन् 1539 और 1544 के बीच उसके अवशेषों को काबुल में उसके द्वारा चुने गए स्थान में दफ़ना दिया गया।

आकलन

एक कुशल सैनिक और युद्धनीतिज्ञ होने के अलावा बाबर की अनेक रुचियाँ थीं और उसे विभिन्न कलाओं में कौशल प्राप्त था। वह प्रकृति प्रेमी था। उसके संस्मरणों में भारत की वनस्पति और जीव जंतुओं के आश्चर्यजनक रूप से विस्तृत विवरण हैं। बहते जल और फव्वारों के साथ सुशोभित बाग जिन्हें चार बाग कहा जाता है, का चलन बाबर ने ही भारत में किया। वह एक अत्यंत सुरुचिपूर्ण लेखक भी था जो फारसी, अरबी और अपनी स्थानीय भाषा तुर्की में प्रवीण था। *तुज़ुक-ए-बाबरी* गद्य लेखन का एक उत्कृष्ट उदाहरण होने के अलावा उस काल को समझने का एक अमूल्य स्रोत है।

बाबर के व्यक्तित्व का एक अन्य पक्ष भारत में उजागर हुआ। कुछ विद्वानों का मत है कि भारत आने से पहले बाबर ने धार्मिक मामलों में ज़रूरत से ज़्यादा रुचि नहीं दिखाई थी लेकिन यहाँ उसके

एक मुगलकालीन लघुचित्र में अतिथियों का स्वागत करते हुए बाबर

द्वारा किए गए प्रमुख कार्यों में मस्जिदों का निर्माण शामिल है। यह इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उसके भारत आगमन से पूर्व उसके द्वारा धार्मिक वास्तुकला को प्रश्रय देने का कोई उदाहरण नहीं है। स्थान का चुनाव बहुत ध्यानपूर्वक किया गया। जहाँ पानीपत में बनाई गई मस्जिद बाबर की लोदियों पर जीत का समारोह थी, वहीं हिंदू परंपरा में पूजनीय अन्य

स्थानों पर भी दो मस्जिदें बनवाई गई। संभल (उत्तर प्रदेश) वह स्थान है जिसके विषय में कहा गया है कि इस युग के अंत में वहां पर विष्णु का अंतिम अवतार होगा तथा अयोध्या को भगवान राम की जन्मस्थली होने का सम्मान प्राप्त है।

भारत में मात्र चार वर्ष बिताने के बाद बाबर की सन् 1530 में मृत्यु हो गई। उसने अपने उत्तराधिकारियों के लिए एक अनिश्चित धरोहर छोड़ी क्योंकि उसके द्वारा जीते गए स्थानों को एक स्थायी राज्य में संगठित नहीं किया जा सका।

हुमायूँ (1530-1556)

बाबर की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी बना हुमायूँ। लेकिन तैमूरी परंपरा के अनुसार उसे अपने भाइयों के साथ सत्ता बाँटने के लिए बाध्य होना पड़ा। मिर्ज़ा सुलेमान को बदकशान दिया गया, मिर्ज़ा कामरान को काबुल और कंधार जबकि असकरी और हिंडाल को भारत में ही कुछ क्षेत्रों का प्रशासन संभालने के लिए दिया गया लेकिन बंटवारे के विरुद्ध मिर्ज़ा कामरान ने ज़बरन पंजाब पर कब्ज़ा कर हुमायूँ की पहले से ही बंटी हुई धरोहर को और कम कर दिया।

हुमायूँ की स्थिति अन्य कारणों से भी कमज़ोर पड़ गई। कमज़ोर प्रशासनिक ढाँचे और उससे भी ज़्यादा कमज़ोर आर्थिक स्थिति के अलावा उसके राज्य को अफ़गानों से निरंतर खतरा बना रहता था, जो अपने खोए हुए साम्राज्य को वापस हासिल करने की आकांक्षा रखते थे। हुमायूँ ने शुरू में पूर्व में अफ़गानों पर जीत हासिल की लेकिन अपनी जीत को सुदृढ़ नहीं कर सका।

इसी दौरान गुजरात में एक नया खतरा खड़ा हो गया। वहाँ के सुल्तान बहादुर शाह ने मालवा पर कब्ज़ा कर, राजस्थान पर हमला कर और मुगलों को भारत से भगाने के लिए उत्तर-पूर्व में अफ़गानों से वार्ता कर अपने वर्चस्व का विस्तार करने का प्रयास किया। कई अफ़गानों को बहादुर शाह के दरबार में शरण दी गई जिसने अपनी सेना में तोप और पुर्तगाली बंदूकची शामिल कर उसका काफी विस्तार किया।

हुमायूँ ने बहादुर शाह के विरुद्ध अभियान में अत्यधिक सैन्य कौशल और वीरता का प्रदर्शन कर उसे पराजित कर दिया। लेकिन मुगल सेनाएँ बिना शासक को अपदस्थ किए या राज्य पर कब्ज़ा किए पीछे हट गईं।

वहीं बिहार में अफ़गान नए उभरते नेता शेर खाँ सूर के आसपास एकत्रित होने लगे। सन् 1537 में शेर खाँ ने बंगाल पर कब्ज़ा कर वहां के शासक महमूद शाह को उसकी राजधानी, *गौड़* में कैद कर दिया। इन घटनाओं के राजनीतिक महत्त्व से अवगत हुमायूँ बंगाल के शासक की मदद के लिए गया। लेकिन गौड़ को मुक्त करने के बजाय उसने चुनार के किले पर घेरा डाल दिया, जिस पर कुछ ही समय पहले शेर खाँ ने कब्ज़ा किया था। इस गलत कदम के कारण शेर खाँ अंततः बंगाल पर कब्ज़ा करने में सफल रहा।

शेर खाँ ने अपनी शक्ति और स्थिति को 1539 में चौसा में अफ़गान-मुगल युद्ध में और सुदृढ़ किया जहाँ की सेनाएँ बुरी तरह पराजित हुईं और हुमायूँ स्वयं बड़ी मुश्किल से ज़िंदा बचकर निकल सका। अब शेर खाँ ने शेर शाह की पदवी ग्रहण कर ली। सन् 1540 में कन्नौज के निकट दोनों सेनाओं के बीच हुए अंतिम युद्ध में भी पलड़ा मुगलों के पक्ष में नहीं हो सका। एक बार फिर अफ़गानों की राजनीतिक विजय हुई और शेर शाह उत्तर भारत का नया शासक बनकर उभरा।

अगले पंद्रह वर्ष हुमायूँ ने निर्वासन में अपने सहयोगियों की सहायता से राजगद्दी को वापस लेने की खोज में बिताए। हताश होकर उसने अंततः 1544 में फारस में सफाविद दरबार के लिए भारत को छोड़ दिया जहाँ और कठिनाइयाँ उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं। वहाँ के शासक, शाह ताहमस्प ने शरण और सहायता देने के बदले उसे और उसके अनुयायियों को सुन्नी इस्लाम त्यागकर शिया धर्म अपनाने के लिए बाध्य किया।

अफ़गान काल

शेर शाह (1540–1545)

दूसरे अफ़गान राज्य की स्थापना का श्रेय शेर शाह सूरी को जाता है, जो जौनपुर के एक छोटे से जागीरदार का बेटा था। इब्राहिम लोदी की मृत्यु के बाद शेर शाह ने अनेक कुशल चालें चलते हुए विशाल खज़ानों पर कब्ज़ा कर लिया, जिनका प्रयोग उसने खुद को हथियारबंद करने के लिए किया और सबसे शक्तिशाली अफ़गान नेताओं में से एक के रूप में उभरा। हुमायूँ को दिल्ली के सिंहासन से अपदस्थ करने के बाद वह उत्तर भारत का सर्वोच्च नेता बन गया। उसका अधिकार-क्षेत्र कश्मीर को छोड़कर बंगाल से लेकर सिंधु तक था।

शेर शाह किसी प्रमुख अफ़गान जनजाति से नहीं था। इसलिए अपने कार्यकाल की शुरुआत में वह लोदी, सरवानी, नुहानी और फारमुली जैसे विशिष्ट अफ़गान परिवारों का समर्थन नहीं हासिल कर सका, जो लोदी युग में प्रमुख थे। इसके बदले उसे सूर, नियाज़ी, सिरबिनी और अन्य अफ़गान समूहों और गैर-अफ़गान मुसलमानों पर भरोसा करना पड़ा, जो उसका साथ देने के लिए तैयार थे लेकिन धीरे-धीरे लोदी काल के प्रमुख जीवित सदस्यों को भी उसका साथ देने के लिए बाध्य होना पड़ा।

राजपूत चुनौती

पहले की तरह राजपूत एक प्रमुख खतरा थे। शेर शाह मारवाड़ के राजा मालदेव की गतिविधियों को लेकर विशेष रूप से चिंतित था। सन् 1544 में समेल के युद्ध में शेर शाह ने उसे पराजित कर दिया। इस हार के फलस्वरूप पड़ोसी मेवाड़ के राणा को शेर शाह को चित्तौड़ सौंपना पड़ा, जिसने दस महीने में राजस्थान के विशाल हिस्सों पर कब्ज़ा कर लिया था।

राजपूतों से अपने संघर्ष को जारी रखते हुए शेर शाह ने ग्वालियर व अन्य उपद्रवी क्षेत्रों में अफ़गान परिवारों को बसा दिया, ताकि उन्हें अपने नियंत्रण में रख सके। उसने हिंदुओं से जज़िया भी लिया।

अनेक आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार, शेर शाह ने रायसेन के राजपूतों को मौत के घाट उतारने का आदेश दिया। उसने धार्मिक सराहना प्राप्त करने के लिए राजा मालदेव का भी सहारा लिया। लेकिन कुछ विद्वान शेर शाह का पक्ष लेते हुए कहते हैं कि राजपूत नेता लगभग पूरे भारत में ही एक शक्ति थे और उन्हें अकेला छोड़ना संभव नहीं था। वे मानते हैं कि हालांकि शेर शाह उन राजपूत प्रमुखों को हटाना चाहता था, जो उसके शासन को स्वीकार नहीं कर पाए थे लेकिन उन राजपूत प्रमुखों से मित्रवत व्यवहार किया, जो उसे स्वीकार करना चाहते थे, जैसे कि उज्जैन के राजपूत।

प्रशासनिक कदम

उसकी साधारण उत्पत्ति और अफ़गान समानतावादी परंपराओं के बावजूद शेर शाह एक निरंकुश शासक था, जिसे अपनी नीतियों का विरोध नापसंद था। उसने प्रशासन पर कड़ा नियंत्रण रखते हुए अपने मंत्रियों और अधिकारियों को कोई वास्तविक शक्ति

नहीं दी। उनकी गतिविधियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए उसने एक कुशल जासूसी प्रणाली स्थापित की। अपनी सत्ता और स्थिति को और सुदृढ़ बनाने के लिए शेर शाह ने दरबार में कड़ा शिष्टाचार और व्यवहार कायम कर इस बात पर जोर दिया कि उनका सही तरीके से पालन हो।

इस सबको सुनिश्चित करने के लिए उसने अपनी सैन्य शक्ति का अत्यधिक विकास किया। उसने सेना को तीन भागों में बाँटा : सवार, हाथी और पदाति, जिसमें सवारों के इर्द-गिर्द सब कुछ केंद्रित था। शाही *खासा खैल* नामक उसकी व्यक्तिगत सेना में एक लाख पचास हज़ार सवार, पच्चीस हज़ार पैदल सैनिक और गोलंदाज़, फौज थीं, उसने दाग़ और चेहरा की व्यवस्था को पुनर्जीवित किया जिसे कुछ शताब्दियों पूर्व अलाउद्दीन खिलजी ने शुरू किया था।

शेर शाह ने अपने साम्राज्य में संचार-व्यवस्था का भी सुधार किया। उसने ग्रैंड ट्रंक सड़क की मरम्मत करवाई, जो प्राचीन काल का उत्तरापथ था। यह सड़क ताम्रलिप्ति (बंगाल) से पुरुषपुर (आधुनिक पेशावर) और उससे आगे तक जाती थी। उसने आगरा से जोधपुर और चित्तौड़ तक एक सड़क और लाहौर से मुल्तान तक दूसरी सड़क का निर्माण कराया। इसके अलावा उसने अनेक सरायों का भी निर्माण कराया। मध्यकालीन इतिहासकार बरनी कहता है कि शेर शाह ने एक सामूहिक घोषणा की कि बंगाल से पश्चिमी रोहतास तक जो चार महीने की यात्रा थी और आगरा से मांडू तक प्रत्येक क्रोह में एक सराय, एक कुआँ बनवाया जाए और एक इमाम नियुक्त किया जाए। प्रत्येक समुदाय के सदस्य को पानी पिलाने के लिए एक मुस्लिम और हिंदू को भी रखने का आदेश दिया गया।

शेर शाह के शासनकाल में भू-राजस्व

सल्तनत काल की भांति शेर शाह के शासनकाल के दौरान भी भू-राजस्व ही राज्य की आय का मुख्य स्रोत था। वसूली बढ़ाने और व्यवस्था को सरल और कारगर बनाने के लिए शेर शाह ने भारत में पहली बार फसल-दर (राई) की अनुसूची लागू की। अच्छी, मामूली और बेकार मिट्टी से प्राप्त प्रति बीघा उत्पाद को औसत उत्पाद पता करने के लिए लिया गया, जिसका एक-तिहाई हिस्सा राज्य की माँग थी। राज्य के हिस्से को वर्तमान बाज़ार दर के अनुसार धन में परिवर्तित किया जा सकता था।

पहले की भांति गाँव (मौज़ा) राजस्व की निम्नतम इकाई थी। गाँवों के पैतृक प्रमुखों पर अपने क्षेत्रों से कर एकत्रित करने की ज़िम्मेदारी थी और वे राज्य और किसानों के बीच बिचौलियों की भूमिका निभाते थे।

पचास और सौ या उससे अधिक गाँवों का समूह परगना कहलाता था, जिसका प्रमुख *शिकदार* था। शिकदार नागरिक और सैन्य, दोनों कार्यों का निर्वाह करता था, अपने क्षेत्र में कानून और व्यवस्था के लिए ज़िम्मेदार था और राजस्व अधिकारियों (आमिल) की भू-राजस्व एकत्रित करने में भी सहायता करता था। आवश्यकता पड़ने पर वह उन्हें विद्रोही ज़मींदारों के विरुद्ध सहायता प्रदान करता था, जो कि सरकार को राजस्व देने से बचने की कोशिश करते थे।

शिकदार के नीचे काम करने वाले अधिकारियों में आमिल, अमीन और काज़ी थे। राजस्व एकत्रित करने के अलावा आमिल पर तटबंधों के निर्माण और मरम्मत और कृषि भूमि की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी भी थी। अमीन पर राज्य का हिस्सा निर्धारित करने के लिए कृषि योग्य भूमि को मापने में निरीक्षण की ज़िम्मेदारी थी। परगना स्तर पर अन्य अधिकारी थे खजानादार, मुंसिफ-ए-खज़ाना (खज़ाना निरीक्षक) और कानूनगो (राजस्व रिकार्ड बनाए रखने का प्रभारी)। अनेक परगना मिलकर एक सरकार बनाते थे।

मुद्रा सुधार

शेर शाह ने मुद्रा में बड़े सुधार किए। उस समय प्रचलित खोटी मुद्रा के स्थान पर उसने सोने, चाँदी और ताँबे के एक समान स्तर के सिक्के बनवाए। उसने अपने पूरे राज्य में एक समान वज़न और माप चलाने का भी प्रयास किया।

उत्तराधिकारी

सन् 1545 में पाँच वर्ष की अल्पावधि के शासन के बाद शेर शाह की मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारी सत्ता पर अपनी पकड़ नहीं रख पाए। उसके बेटे और उत्तराधिकारी इस्लाम शाह की मृत्यु के बाद सूरी क्षेत्रों का शेर शाह के रिश्तेदारों के बीच बँटवारा कर दिया गया। विभाजन मुख्यतः इस प्रकार थे : पंजाब; आगरा और दिल्ली; बिहार और पूर्वी क्षेत्र; और बंगाल, जिसमें से प्रत्येक शेर शाह के एक सूर रिश्तेदार को दिया गया। सन् 1555 में शेर शाह की मृत्यु के केवल एक दशक बाद हुमायूँ ने पंजाब के सूरी शासक, सिकंदर को पराजित कर दिल्ली पर पुनः कब्ज़ा कर मृतप्राय मुगल शासन को पुनर्जीवित किया। लेकिन सात महीने बाद ही अपने पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरकर उसकी मृत्यु हो गई।

अभ्यास

1. तैमूर के साम्राज्य के गौरव को प्रतिस्थापित करने वाली नवोदित शक्तियाँ कौन थीं?
2. दिल्ली की अफ़गान राज्य व्यवस्था किस प्रकार बाबर के पक्ष में थी?
3. भारत में राजपूत शक्तियों से बाबर के मुकाबले का वर्णन कीजिए।
4. भारतीय इतिहास में बाबर की स्थिति का मूल्यांकन कीजिए।
5. हुमायूँ के सैन्य अभियानों का संक्षेप में विवरण कीजिए।
6. शेर शाह के शासन के दौरान उत्कर्ष पर पहुँचने वाली कौन सी अफ़गान जनजातियाँ थीं।
7. "शेर शाह को अपने राजस्व सुधारों के लिए सबसे अधिक याद किया जाता है।" टिप्पणी कीजिए।
8. शेर शाह के राजपूतों के साथ व्यवहार का वर्णन कीजिए।
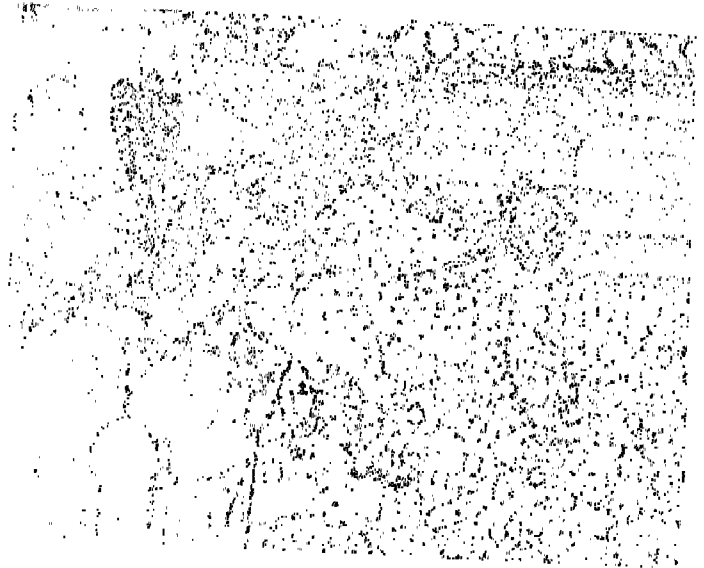
अकबरकालीन भारत
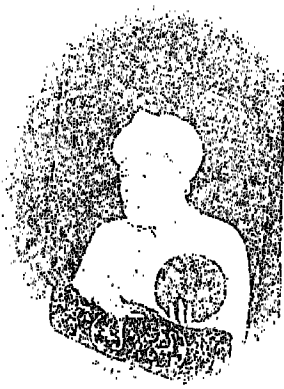
अकबर (1556-1605) निश्चित रूप से मुगल सम्राज्य का सबसे उज्ज्वल सितारा था और कुछ के अनुसार भारत के मध्यकालीन शासकों में महानतम। उसने न केवल मुगलों के लिए उत्तर भारत को पुनः जीता बल्कि ऐसी योजनाएँ और नीतियाँ बनाईं, जिनसे उसके परिवार ने लंबे समय तक भारत में शासन किया। उसकी नीतियाँ इतनी व्यावहारिक थीं कि वे उसके उन उत्तराधिकारियों के शासनकाल में भी जारी रहीं, जो उससे स्वभाव और प्रवृत्ति में काफी अलग थे।

प्रारंभिक विजय और विद्रोह

अकबर का जन्म 1542 में अमरकोट में हुआ, जब उसका पिता हुमायूँ भारत से निकल चुका था। साढ़े तेरह वर्ष बाद सन् 1556 में उसने अनेक आशंकाओं के बीच अपने पिता से शासन संभाला। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में एक प्रभावशाली लेकिन उपेक्षित चरित्र हेमू एक तत्काल चुनौती था।

एक निर्धन व्यापारी परिवार का बेटा, हेमू केवल अपनी क्षमता के बल पर अफ़गान शासक, इस्लाम शाह सूर के शासनकाल में खुफिया विभाग का प्रमुख बना। तत्पश्चात् उसे आदिल शाह द्वारा मुख्य मंत्री नियुक्त किया गया और वह अफ़गान राज्य में राजनीतिक व सैन्य मामलों के लिए पूरी तरह से उत्तरदायी था। अफ़गान सेवा के दौरान हेमू ने अजमेर व दिल्ली में नियुक्त मुगल सेनाओं को पराजित करके इन स्थानों पर कब्ज़ा कर लिया। इसके बाद उसने स्वयं को स्वतंत्र घोषित किया और संस्कृत की राजसी परंपरा के अनुसार राजा हेमचंद्र विक्रमादित्य की पदवी ग्रहण की।

अकबर के शासन के प्रारंभिक चार वर्षों में अकबर के शिक्षक और वज़ीर रहे बैरम खाँ ने मुगल क्षेत्र में हेमू को अपनी पकड़ सुदृढ़ करने से रोककर और उसे शीघ्र ही लड़ने के लिए विवश कर, स्थिति को संभाल लिया। सन् 1556 में दोनों विरोधी सेनाओं के बीच पानीपत का दूसरा युद्ध लड़ा गया। कड़े मुकाबले के बावजूद उस वक्त फैसला अफ़गान सेनाओं के विरुद्ध हो गया, जब हेमू तीर लगने से घायल हो गया तथा उसे कैद में लेकर मौत के घाट उतार दिया गया।

बैरम खाँ की रिजेंसी के दौरान अकबर की स्थिति और सुदृढ़ हुई क्योंकि मुगलों ने एक के बाद एक क्रमशः युद्धों को जीतकर सत्ता से अफ़गान दावेदारी को बहुत दूर कर दिया। उन्होंने, अफ़गान सिकंदर सूर को पराजित किया, जो बंगाल भाग गया तथा लाहौर, मुल्तान और अजमेर पर भी कब्ज़ा कर लिया। उसके बाद इब्राहिम सूर को पराजित करके मुगलों ने जौनपुर पर कब्ज़ा कर लिया। इसके अलावा उन्होंने ग्वालियर के किले पर भी सफलतापूर्वक घेरा डाला, जो तब अफ़गानों के नियंत्रण में था। इस प्रकार सल्तनत का मुख्य क्षेत्र जल्दी ही अकबर के नियंत्रण में आ गया।

अब तक बैरम खाँ के संरक्षण से उकताकर अकबर ने अपने वज़ीर को रिहा कर दिया, जिसकी कुछ ही समय बाद मक्का जाने के रास्ते में हत्या कर

दी गई। अकबर ने बैरम खाँ की विधवा से विवाह कर लिया और उसके बेटे को अपने संरक्षण में ले लिया। यह बच्चा, अब्दुल रहीम खान खाना, आगे जाकर साम्राज्य के एक प्रमुख अधिकारी और एक प्रमुख हिंदी कवि के रूप में प्रसिद्ध हुआ।
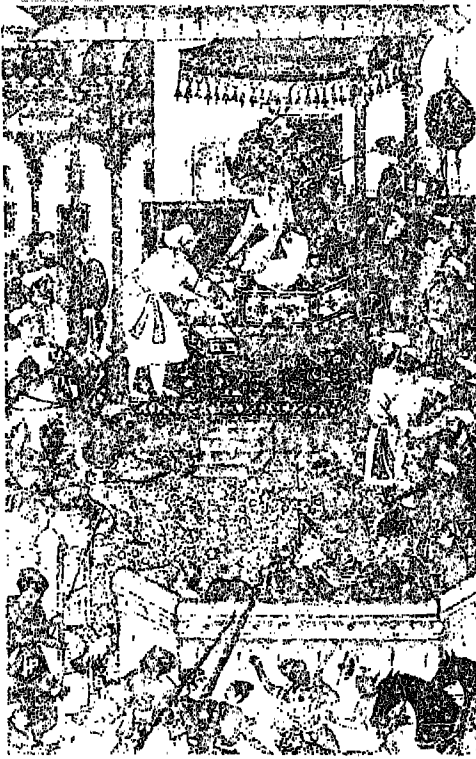
आगरा, 1562 में अकबर दरबार में अब्दुल रहीम खान खाना से मिलते हुए

अकबर की दाय माहम अनगा और उसके रिश्तेदारों विशेषकर उसके बेटे आदम खाँ के वर्चस्व वाली समानांतर सरकार अब आगे आई। इस दौरान मुगलों का विस्तार जारी रहा और आदम खाँ ने मालवा राज्य पर हमले का नेतृत्व किया। मालवा के शासक बाज़ बहादुर, जो कि एक कुशल संगीतज्ञ और कवि था, की करारी हार हुई और वह अपने परिवार और विशाल खज़ाने को पीछे छोड़ भाग खड़ा हुआ। मुख्य रानी रूपमती ने मुगलों द्वारा बंदी बनाए जाने के बदले अपनी जान देना उचित समझा। आदम खाँ ने मालवा में अपनी जीत के बाद लगभग पूरी विरोधी सेना को मौत के घाट उतार दिया, यहाँ तक कि रक्षक सेना की महिलाओं और बच्चों को भी नहीं छोड़ा गया।

मुगलों की इस बर्बरता का चारों ओर विरोध होने से बाज़ बहादुर को अपना राज्य हासिल करने के प्रयास आसान हो गए। इसके कारण आदम खाँ को वापस बुला लिया गया और मालवा पर दूसरी बार हमला कर राज्य पर पूरी तरह कब्ज़ा कर लिया गया। मालवा पर कब्ज़े के बाद समानांतर सरकार का महत्त्व लगभग खत्म हो गया और सम्राट स्वयं एक शक्ति के रूप में उभरा।

तभी अफ़गान भी पूर्व दिशा में फिर से अपना सिर उठाने लगे। लेकिन मुगलों ने चुनार पर कब्ज़ा कर लिया, जो अफ़गानों का एक गढ़ था। इसी के साथ मुगलों का पूर्व दिशा में विस्तार का प्रथम चरण पूरा हुआ।

सन् 1564 में अकबर ने गोंड के शक्तिशाली और समृद्ध गोंडवाना राज्य पर हमला किया। वहाँ की रानी दुर्गावती, जो महोबा की चंदेल राजकुमारी थी, ने वीरतापूर्वक युद्ध किया, लेकिन जब उसे अपनी हार निश्चित लगने लगी तो उसने कैद के बदले प्राण देना उचित समझा। अनेक शाही महिलाओं ने जौहर कर लिया। सम्राट का सरकारी इतिहासकार, अबुल फज़ल लिखता है "आभूषण, सोने, चाँदी और अन्य चीजें इतनी भारी मात्रा में लूटी गईं कि उसके एक अंश का हिसाब लगाना भी मुश्किल है।"

सन् 1561 और 1567 के बीच अकबर को अपने उज़बेक (मध्य एशियाई) सामंतों से गंभीर चुनौती का सामना करना पड़ा। इनमें से कई अपने आपको उस उज़बेक प्रमुख का वंशज मानते थे जिसने बाबर को समरकंद से बाहर निकाला था और जो हुमायूँ के साथ भारत आए। वे मुगल सामंत वर्ग का एक शक्तिशाली हिस्सा थे। पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार और मालवा में वे महत्त्वपूर्ण पदों पर थे, जहाँ उन्होंने अफ़गानों का दमन करने में सहायता की थी। अकबर की बढ़ती शक्ति से उज़बेक अप्रसन्न थे और एक ऐसी साम्यिक राजनीतिक स्थिति चाहते थे जिसमें शासक और उसके अधिकारियों के बीच कम दूरी हो। सुन्नी मुसलमानों के रूप में वे सम्राट के शिया फ़ारसी अधिकारियों पर भी शंका करते थे।

जहाँ अकबर ने अपने उज़बेक सामंतों से अनेक युद्ध लड़े, वहीं उसके सौतेले भाई, मिर्ज़ा हकीम, जो काबुल का शासक था, ने लाहौर पर घेरा डाला और उज़बेकों ने उसे हिंदुस्तान का सम्राट घोषित कर दिया। इस महत्त्वपूर्ण समय में तैमूरी सामंतों का एक दल, जो मिर्ज़ा के नाम से जाने जाते थे, सम्राट के विरुद्ध हो गया।

धैर्य और इच्छाशक्ति के बल पर अकबर अपनी सत्ता को मिलने वाली अनेक चुनौतियों का सामना कर पाया। मिर्ज़ा हकीम को काबुल वापस लौटने पर विवश होना पड़ा। मिर्ज़ा का दमन हुआ और 1567 तक उज़बेकों का भी सफ़ाया हो गया।

उज़बेकों के विद्रोह से अकबर को विदेशी सामंतों पर अपनी निर्भरता का जोखिम समझ में आया। उसका पिता हुमायूँ जब भारत लौटा तो उसके साथ इक्यावन सामंतों का एक दल था, जिसमें से अधिकांश मध्य एशिया से और बाकी फारस से थे। उज़बेकों के विद्रोह से अकबर को अपने सामंतों में मध्य एशियाई घटक को कम करने और फारसी घटक को बढ़ाने का महत्त्व समझ में आया। अदल-बदल के बावजूद विदेशी मुसलमान अब भी शासक वर्ग का एक बड़ा हिस्सा थे। लेकिन अब सम्राट ने उच्च्व शासक वर्ग में सीमित संख्या में राजपूतों और भारतीय मुसलमानों को लेना शुरू कर दिया।

अकबर और राजपूत

खनवा के युद्ध में हार के बावजूद उत्तरी भारत में राजपूत एक प्रमुख शक्ति बने रहे। अकबर ने महसूस किया कि केवल सैन्य कार्रवाई से ही उन्हें दबाया नहीं जा सकता था, इसलिए उसने उनसे मैत्री करने का प्रयास किया।

अकबर का राजपूतों से संबंध सद्भावपूर्ण तरीके से शुरू हुआ। सन् 1562 में आंबेर राज्य के शासक, भार मल ने विरोधी मुगल शासक से पड़ने वाले दबाव का मुकाबला करने के लिए अकबर से हाथ मिला लिया। उसने अपनी पुत्री का विवाह सम्राट से कर दिया और अनेक रिश्तेदारों सहित जिसमें उसका बेटा भगवान दास और पौत्र मान सिंह भी था, शाही सेवा में शामिल हो गया। लेकिन अन्य राजपूत शासकों ने तुरंत ही उसका अनुसरण नहीं किया और अकबर को उनसे समर्पण करवाने के लिए भारी सैन्य शक्ति का प्रयोग करना पड़ा।

राजपूत वंशों में सबसे सम्मानित मेवाड़ वंश पर सिसोदियों का शासन था और उनका मुगलों के विरोध का लंबा इतिहास था। उसके यशस्वी वंशज राणा सांगा ने राजपूत राज्यसंघ का बाबर के विरुद्ध खनवा के प्रसिद्ध युद्ध में नेतृत्व किया था। यदि अकबर को हिंदुस्तान पर शासन करना था तो यह

अकबर द्वारा चित्तौड़ की घेराबंदी को दर्शाता एक मुगल लघुचित्र

आवश्यक था कि वह मेवाड़ पर काबू करे, जो अपने राजनीतिक महत्त्व के अलावा गंगा भूमि के व्यापार मार्गों को पश्चिमी तट से भी जोड़ता था। अत: 1567 में अकबर ने अपनी सेना का राज्य के विरुद्ध जेहाद में नेतृत्व किया, जिस पर तब उदय सिंह का शासन था। जब मुगलों ने चित्तौड़, जो कि एक गढ़नुमा शहर था, पर घेरा डाला तब राणा अपने सामंतों की सलाह पर पहाड़ों में छिप गया और उसने किले को प्रसिद्ध योद्धाओं, जयमल और फतहा की निगरानी में छोड़ दिया।

चित्तौड़ की घेराबंदी मुगल इतिहास में संभवत: सबसे खूनी घटना थी। मुगल सेनाओं द्वारा सुरंगों और तोपों के प्रयोग से छ: महीने के वीरतापूर्ण संघर्ष के बाद किले पर कब्ज़ा कर लिया गया। किले की महिलाओं ने जौहर कर लिया। वीर राजपूतों के बचाव से क्रुद्ध सम्राट ने घेरा डाले गए लोगों पर युद्ध के लिए लाए गए तीन सौ हाथियों को छोड़ दिया। कुल मिलाकर युद्ध में आठ हज़ार सैनिक मारे गए। मुगलों ने गढ़ में शरण लेने वाले लगभग तीस हज़ार किसानों को यह कहकर मार डाला कि उन्होंने चित्तौड़ की रक्षा में भाग लिया था। इसके तुरंत बाद जारी एक विजय घोषणा (फतहनामा) में नास्तिकों पर धर्म युद्ध की सफलता का डंका बजाया गया। सम्राट ने स्वयं पैदल जाकर अजमेर में मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह में शुक्रिया अदा किया।

चित्तौड़ की हार से संपूर्ण राजपूताना और भी अधिक मुगल दबाव में आ गया। सन् 1569 में विशाल बंदूकों की मदद से अकबर ने रणथंभौर के किले पर घेरा डाला, जिस पर तब राय सुरजन हाड़ा का शासन था, जो उदय सिंह का एक जागीरदार था। राय को जब यह लगने लगा कि वह शाही हमले का सामना नहीं कर पाएगा तो उसने समर्पण कर दिया। इसी प्रकार अनेक राजपूत शासकों ने भी मुग़ल शक्ति के आगे स्वयं को असमर्थ देखते हुए घुटने टेक दिए। इनमें बीकानेर और जैसलमेर के शासक भी शामिल थे। लेकिन मेवाड़ ने अपना विरोध जारी रखा।

सन् 1572 में उदय सिंह की मृत्यु के बाद राणा प्रताप ने सिंहासन संभाला। राणा द्वारा मुगल सत्ता को स्वीकार कराने में अकबर असफल रहा इसलिए उसने मान सिंह को राजपूत शासक के विरुद्ध अभियान का नेतृत्व करने का आदेश दिया।

सन् 1576 में हल्दी घाटी दर्रे में भीषण युद्ध लड़ा गया। राणा की सेना में तीन हज़ार घुड़सवार और कुछ सौ भील पैदल सैनिक थे, जबकि मान सिंह दस हज़ार घुड़सवार सेना का नेतृत्व कर रहा था। जयमल का बेटा, राम दास राठौर भी राणा के विरुद्ध लड़ा।

शुरुआत में राजपूत जीतते दिखाई पड़े, जबकि मुगल सेनाएँ अव्यवस्थित थीं। लेकिन अकबर द्वारा कुमुक भेजे जाने की अफवाह ने स्थिति को मुगलों के पक्ष में कर दिया। राजपूतों के विरुद्ध युद्ध का पलड़ा भारी पड़ते देख, राणा पहाड़ियों में वापस आ गया। घमासान युद्ध से पस्त शाही सेनाएँ आगे राणा का पीछा करने में थकी हुई थीं। शीघ्र ही मुगलों ने राणा के मज़बूत गढ़ गगुंडा पर कब्जा कर लिया।

इन सबके बावजूद राणा विचलित नहीं हुआ तथा उसने मुगलों के खिलाफ गुरिल्ला युद्ध जारी रखते हुए शाही सेनाओं को बहुत परेशान किया तथा कई अवसरों पर उनकी आपूर्ति सेवा को बाधित किया। सिरोही, डुंगरपुर, बांसवाड़ा, इदर और बूँदी जैसे अन्य राज्यों में भी हलचल थी, जिसके कारण अकबर को उनके विरुद्ध अनेक अभियान छेड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। सन् 1577 तक अकबर ने उन पर काबू कर लिया।

मुगलों ने राणा प्रताप की खोज जारी रखी यहाँ तक कि कुंभलगढ़ और उदयपुर पर भी कब्ज़ा कर लिया। राणा को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, लेकिन भील प्रमुखों की सहायता से उसने अपना विरोध जारी रखा। लेकिन 1579 के बाद राणा पर मुगलों का दबाव कुछ कम हुआ क्योंकि सम्राट का ध्यान अब पूर्वी भारत के विद्रोहों और उत्तर-पश्चिमी सीमा की गतिविधियों पर था। राणा ने अवसर का लाभ उठाकर अपने राज्य का एक मुख्य हिस्सा वापस हासिल कर लिया।

अकबर को एक अन्य प्रमुख राजपूत राज्य, मारवाड़ से भी चुनौती का सामना करना पड़ा। सम्राट के अपने पारिवारिक मामलों में दखल से असंतुष्ट मारवाड़ के शासक ने विद्रोह कर मुगलों के विरुद्ध छद्म युद्ध आरंभ कर दिया। अकबर ने मारवाड़ पर सीधे शाही शासन कायम किया और चंद्रसेन की मृत्यु के बाद उसके बड़े भाई, उदय सिंह को सिंहासन पर बिठा दिया।

फतेहपुर सीकरी

सन् 1571 में अकबर आगरा से फतेहपुर सीकरी आ गया। फतेहपुर सीकरी सम्राट के आदेश पर बना एक नया शहर था, जिसमें वह आगामी पंद्रह वर्षों तक रहा। इसकी प्रमुख वास्तु विशेषताएँ थीं - एक विशाल सामुदायिक मस्जिद और अकबर के आध्यात्मिक गुरु शेख सलीम चिश्ती की दरगाह। इन वर्षों के दौरान अकबर ने सलीम चिश्ती और उसके परिवार से घनिष्ठ संबंध बनाए रखे। फतेहपुर सीकरी में रहते हुए उसने मस्जिद के मामले में गहरी रुचि दिखाई, यहाँ तक कि कुछ मौकों पर उसकी ज़मीन को बुहारा भी और नमाज़ का नेतृत्व भी किया। इस दौरान अकबर ने पवित्र शहर मक्का की यात्राओं का भी खर्च उठाया। सन् 1574 में गुजरात पर विजय के बाद उसने मक्का और मदीना को दान भेजने के लिए गुजरात के अंतिम शासक द्वारा स्थापित धार्मिक न्यास (वक्फ़) का विस्तार किया।

सन् 1572 में अकबर ने जीत का एक नया दौर आरंभ किया। पहले उसने गुजरात के विरुद्ध चढ़ाई की, जो कि हिंदुस्तान के व्यस्ततम बंदरगाहों में से एक था। यह वस्त्र उद्योग का फलता-फूलता केंद्र होने के साथ-साथ एक उपजाऊ एवं समृद्ध क्षेत्र

था। बगैर अधिक मुश्किल के राजधानी, अहमदाबाद पर कब्ज़ा कर लिया। वहाँ के शासक मुज़फ़्फ़र शाह और उसके सामतों ने आत्मसमर्पण कर दिया। अकबर ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए मिर्ज़ा विद्रोहियों को पराजित कर दिया, जिन्होंने प्रांत में शरण ली थी। इस प्रकार गुजरात पर कब्ज़ा कर सम्राट ने उसे मुगल अधिकारियों के सुपुर्द कर दिया और फतेहपुर सीकरी लौट गया।

अकबर के लौटते ही गुजरात में मुगलों के विरुद्ध युद्ध छिड़ गया। अत्यंत साहसिक कदम उठाते हुए अकबर एक छोटी-सी सेना के साथ वापस लौटा। उसने मात्र ग्यारह दिन में आठ सौ से भी अधिक किलोमीटर की दूरी तय की। भीषण युद्ध छिड़ा; सम्राट ने विद्रोह को सफलतापूर्वक दबाकर क्षेत्र में मुगल सत्ता पुनः स्थापित की।

लेकिन बंगाल और बिहार अब भी मुगल शासन की परिधि के बाहर थे और वहाँ पर विभिन्न अफ़गान राजकुमारों और सामंतों का नियंत्रण था। सन् 1574 में बंगाल के शासक दाऊद खाँ ने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया। अब अकबर को स्वयं मैदान में उतरना पड़ा। शाही सेना को आता देख दाऊद खाँ भाग खड़ा हुआ और अकबर ने बंगाल और बिहार पर कब्ज़ा कर लिया। लेकिन दाऊद खाँ ने फिर से बंगाल पर कब्ज़ा कर लिया, जिसके कारण 1576 में मुगलों ने दूसरी बार हमला बोल उसे कैद कर मौत के घाट उतार दिया। व्यक्तिगत अफ़गान प्रमुख जब तब मुगल सेनाओं पर हमला करते रहते थे।

सन् 1580 में बंगाल और बिहार में फिर से एक विद्रोह हो गया। हालांकि इस विद्रोह का एक कारण *महज़र* के विरुद्ध असंतोष हो सकता है, लेकिन अकबर द्वारा सेना की कार्यकुशलता को बढ़ाने के लिए किए गए कारगर प्रयास भी इस विद्रोह के प्रमुख कारण थे। अकबर ने आदेश दिया कि सभी शाही अफसर अपने घोड़ों को निरीक्षण के लिए लाएँ और केवल वही घोड़े जो शाही मापदंड पर खरे उतरेंगे, को दागा जाएगा और उनके मालिकों को पूरी रकम दी जाएगी। अफसर इसे अपने अधिकारों का अतिक्रमण मानते थे।

पहले की भाँति मध्य एशियाई सामंतों ने बंगाल के विद्रोहियों का साथ देकर और बंगाल के शासक को मारकर विद्रोह को नेतृत्व प्रदान किया। अकबर के सौतेले भाई, मिर्ज़ा हकीम को फिर से हिंदुस्तान का न्यायसंगत शासक नियुक्त कर दिया गया, जबकि जौनपुर में एक काज़ी ने फ़तवा (धार्मिक आदेश) जारी कर सभी असली मुसलमानों से सम्राट के विरुद्ध अभियान में भाग लेने का आग्रह किया। बंगाल में अफ़गान, जो हमेशा से मुगलों के दुश्मन थे, भी विद्रोह में शामिल हो गए।

बिहार भेजी गई शाही सेना ने पुनः मुख्य शहरों पर कब्ज़ा कर लिया, जबकि सम्राट ने स्वयं काबुल जाकर मिर्ज़ा हकीम को अपदस्थ किया। लेकिन अगले पांच वर्षों में जाकर ही पश्चिम बंगाल में स्थिति को पूरी तरह से काबू किया जा सका।

उत्तर-पश्चिम को और सही तरीके से मुगल साम्राज्य में सम्मिलित करने के लिए 1585 में अकबर ने अपनी राजधानी लाहौर स्थानांतरित कर दी। काबुल पर और मज़बूती से कब्ज़ा करने के अलावा सम्राट ने अफ़गान जनजातियों विशेषकर यूसुफ़जई द्वारा समय-समय पर नष्ट किए जाने वाले काफिलों के गुज़रने के मार्गों की सुरक्षा के लिए भी कदम उठाए। मुगलों द्वारा शांतिस्थापना अभियान लंबे समय तक चला, जिसमें राजा बीरबल (अपनी बुद्धि और चातुर्य के लिए अनेक दंतकथाओं में अमर) ने अपनी जान गँवा दी। अकबर ने अंततः

इस क्षेत्र में अपनी सत्ता स्थापित कर दी। सन् 1595 में बलूचिस्तान और कंधार पर भी मुगलों ने नियंत्रण कर लिया।

इस दौरान कश्मीर (1585) और सिंध (1591) पर भी मुगलों ने कब्ज़ा कर लिया। सन् 1592 में बिहार के शासक, राजा मान सिंह ने उड़ीसा पर कब्ज़ा कर उसे सूबा बंगाल का हिस्सा बना दिया।

इसके बाद अकबर ने आगरा लौटकर दक्कन के विरुद्ध कार्रवाई का नेतृत्व किया। दक्कन ही मात्र एक ऐसा सीमांत शेष बचा रहा था, जिस पर मुगल सेना को अधिकार करना बाकी था।

अकबर और दक्कन

इस समय दक्कन के पांच प्रमुख राज्य थे: फ़ारूकी शासित खानदेश, निज़ाम शाह शासित अहमदनगर, इमद शाह शासित बरार, आदिल शाह शासित बीजापुर और कुतुब शाह शासित गोलकोंडा। गोलकोंडा राज्य का धर्म शिया था और बीजापुर और अहमदनगर में भी शिया एक शक्तिशाली दल के रूप में उभरे।

अपने-अपने राज्यों का विस्तार करने के लिए दक्कनी राज्य अनवरत संघर्षों में लगे रहे, जिसके कारण इस क्षेत्र में उथल-पुथल जारी रही। बीजापुर और अहमदनगर के बीच हुए एक समझौते से बीजापुर दक्षिण दिशा में अपनी सीमाओं का विस्तार कर सकता था क्योंकि विजयनगर राज्य का पतन आरंभ हो चुका था, जबकि अहमदनगर ने बरार पर कब्ज़ा कर लिया।

दक्कन के अन्य सक्रिय दलों में पश्चिम में मराठा और पूर्व में तेलुगू नायक शामिल थे। मराठा, भूतपूर्व यादव शासकों और हिंदू राज्यों के वंशज थे, जिन्हें सल्तनत शासकों ने पराजित किया था। उत्तर में राजपूत ज़मींदारों की भांति मराठा ज़मींदार, जिन्हें देशमुख कहा जाता था, इस क्षेत्र में संगठित थे। तेलुगू नायकों का भी विजयनगर साम्राज्य के लिए कार्य करने का एक वीरतापूर्ण इतिहास था।

जैसे-जैसे दक्कन में राजनीतिक समीकरण बदले स्थानीय दलों और यहाँ के मुस्लिम शासक वर्ग, जो कि शहरों में रहते थे और जिनके स्थानीय लोगों से कम संबंध थे, के बीच कई मामलों पर समझौते हुए। मध्य सोलहवीं शताब्दी में दक्कनी सुल्तानों ने अपने राजस्व मामलों पर निगरानी रखने के लिए दक्कनी ब्राह्मणों और यदा-कदा मराठा टुकड़ियों को सहायक बारगीर के रूप में रखना शुरू कर दिया। दक्कनी सल्तनत द्वारा मराठा और तेलुगू नायकों को सेवा में लेना मुगलों द्वारा उन्हें जीतने के प्रयासों के बिल्कुल विपरीत था।

अकबर ने 1591 में दक्कन की ओर अपने कदम बढ़ाए, और उसने सभी दक्षिणी राज्यों में दूत भेजकर उनसे मुगल सत्ता स्वीकार करने को कहा। खानदेश के शासक ने, मुग़ल क्षेत्रों के करीब होने के कारण अपनी बेटी का अकबर के बेटे सलीम से विवाह कर दिया। लेकिन अन्य दक्कनी सुल्तानों ने मुगलों की माँग ठुकरा दी। अहमदनगर के बुरहान निज़ाम शाह का रवैया तो निश्चित रूप से मैत्रीपूर्ण नहीं था। लेकिन 1595 में उसकी मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के लिए छिड़ी लड़ाई ने अकबर को इस क्षेत्र में घुसने का अवसर दिया।

दिवंगत सुल्तान की बहन चाँद बीबी, बुरहान के बेटे को, जो अभी बच्चा ही था, सिंहासन पर बिठाना चाहती थी। इस मामले में उसे अपने रिश्तेदार बीजापुर के शासक का समर्थन भी प्राप्त था। दक्कनियों के विरोधी खेमे ने ऐसे में अकबर को हस्तक्षेप के लिए आमंत्रित किया।

मुगल सेना बिना किसी कठिनाई के राजधानी पहुँच गई। चाँद बीबी और बुरहान के बेटे ने अहमदनगर के किले में शरण ली जिसे मुग़लों ने घेर लिया। बीजापुर और गोलकोंडा के सुल्तानों
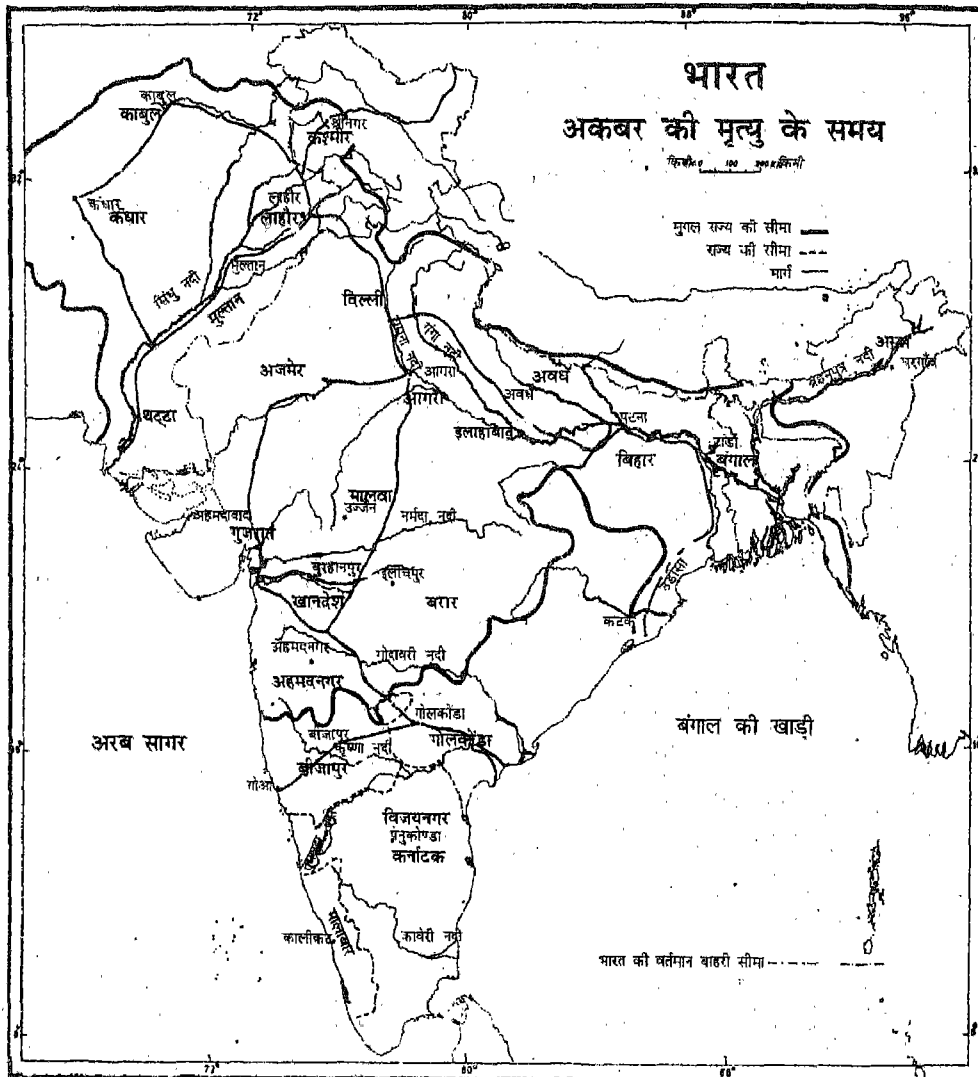
भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र में भारत का जलप्रदेश उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की पूरी तक है।

द्वारा सहायता के लिए भेजी गई सेना ने मुगलों को समझौता करने के लिए विवश कर दिया। सन् 1596 में चाँद बीबी बरार को मुगलों को सौंपने और उनकी प्रभुसत्ता स्वीकार करने के लिए राजी हो गई, लेकिन बदले में मुगलों को उसके भाँजे/भतीजे, बहादुर निज़ाम शाह का दावा स्वीकार करना था।

लेकिन दक्कनी राज्य बरार पर मुगलों के हमले से बहुत परेशान थे और अपने अस्तित्व को लेकर चिंतित थे। इस क्षेत्र से मुगल सेनाओं को भगाने के प्रयास में बीजापुर और गोलकोंडा ने बरार पर मुगलों के कब्ज़े को विफल करने के लिए अहमदनगर का साथ दिया। तीनों राज्यों की संयुक्त सेनाओं ने 1597 में बरार पर हमला कर दिया, लेकिन मुगलों के हाथों वे पराजित हुए। बीजापुर और गोलकोंडा पीछे हट गए और चाँद बीबी को अकेले इस अव्यवस्था को सुलझाने के लिए छोड़ दिया । हालांकि चाँद बीबी 1596 की संधि का पालन करना चाहती थी, लेकिन वह अपने सामंतों पर अंकुश नहीं लगा पाई जो मुगल सेनाओं को परेशान करने में लगे रहे। इसके कारण अहमदनगर पर दूसरी बार घेरा डाला गया। जब चाँद बीबी ने फिर से मुगलों के साथ बातचीत शुरू की तो एक प्रतिद्वंद्वी खेमे ने उसकी हत्या कर दी। अब मुगलों ने अहमदनगर पर कब्ज़ा कर युवा राजा को कैद कर लिया, बालाघाट को भी साम्राज्य में शामिल कर लिया गया। लेकिन इस समय मुगलों ने अहमदनगर की राजधानी से आगे बढ़कर पूरे राज्य पर कब्ज़ा करने की कोशिश नहीं की।

अब मुगल सेनाओं ने खानदेश पर चढ़ाई की जहाँ के नए शासक ने आक्रामक रुख अपना रखा था। शाही सेना को आता देख उसने असीरगढ़ के किले में शरण ली, जिसे दक्कन में सबसे शक्तिशाली माना जाता था। अकबर ने स्वयं घेराबंदी का नेतृत्व किया जो उसका अंतिम सैन्य नेतृत्व था। मुगलों के दबाव और महामारी ने शासक को आत्मसमर्पण करने पर विवश कर दिया। अतः बरार और अहमदनगर के एक हिस्से सहित खानदेश भी मुगल साम्राज्य का हिस्सा बन गया। लेकिन मुगलों की इस क्षेत्र पर पकड़ तेज नहीं थी और अप्रैल 1601 में सम्राट को अपने बेटे राजकुमार सलीम के विद्रोह का सामना करने के लिए दक्कन छोड़ने पर विवश होना पड़ा।

वहीं अहमदनगर में एक अबीसीनियाई, मलिक अंबर ने राज्य की बागडोर अपने हाथों में लेकर सिंहासन पर एक निज़ाम शाह युवराज को बिठाया और बड़ी संख्या में मराठा सैनिकों को भर्ती किया, जो गुरिल्ला युद्ध कौशल में हथियारबंद मुगल सेनाओं से भारी पड़ते थे। इस कारण मुगल सेनाओं को बरार, अहमदनगर और बालाघाट पर अपनी पकड़ मज़बूत करने में कठिनाई का सामना करना पड़ा।

राजकीय विचारधारा

जब अकबर अपने लिए साम्राज्य जीत रहा था तो उसका निकट मित्र और वैचारिक सहयोगी, अबुल फ़ज़ल सम्राट के लिए एक नई साम्राज्यिक विचारधारा बना रहा था। विद्वानों का मत है कि अबुल फजल ने राजतंत्र के तैमूरी ढांचे को शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी मकतूल (1153-1191) के स्पष्टीकरण के सूफी सिद्धांत से मिलाकर राजतंत्र का एक स्पष्ट मुगल सिद्धांत प्रतिपादित किया।

शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी मकतूल का कहना था कि सभी जीवन ईश्वर से प्राप्त होने वाले निरंतर प्रकाश के कारण ही संभव हैं। इसके अलावा प्रत्येक व्यक्ति में एक दैवी चमक है, हालांकि केवल [illegible] ही अपने युग के नेता हो सकते हैं।

इसी सिद्धांत को लेकर अबुल फज़ल ने अकबर को अपने युग में दैवी शक्ति द्वारा चुना गया बताया। अबुल फज़ल ने कहा कि सम्राट अपनी वंशावली न केवल तैमूर बल्कि उससे भी बहुत पहले एक मुगल राजकुमारी से मान सकता था जिसके बच्चे एक दैवी चमक का नतीजा थे।

अबुल फ़ज़ल ने अकबर को न केवल दैवी वरदान प्राप्त बताया बल्कि राज्य का धर्माध्यक्ष भी जिस पर अपनी सारी प्रजा की भलाई की ज़िम्मेदारी थी, चाहे वे मुसलमान हों या गैर-मुसलमान। यह उसकी ज़िम्मेदारी थी कि वह बिना किसी भेदभाव के सबसे न्याय करे। अकबर स्वयं शासक की भूमिका को न्यायोचित, भेदभाव रहित और दयालु रक्षक की मानता था। वह कहता था: "राजा की दैवी उपासना से न्याय और अच्छा प्रशासन प्राप्त होगा।" इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि अकबर का आदर्श-वाक्य था: *सुलह-कुल* अर्थात सबके साथ शांति।

अबुल फ़ज़ल द्वारा प्रतिपादित शाही विचारधारा, जिसे अकबर ने लागू किया, को इस्लाम में राज्य के सिद्धांत से अलग बताया जाता है, जिसमें गैर-मुसलमान प्रजा से निश्चित रूप से भिन्न बर्ताव किया जाता था। कुछ विद्वानों का मत है कि अकबर की राजनीतिक विचारधारा को इस्लामिक धर्मतत्त्वज्ञों और शेख अहमद सरहिंदी जैसे सूफी नेताओं से अच्छी प्रतिक्रिया नहीं प्राप्त हुई।

धार्मिक विकास

साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार करते हुए और नई राजवंशीय विचारधारा बनाते हुए अकबर स्वयं अपने और अपने राज्य के लिए नए आध्यात्मिक क्षेत्र भी खोल रहा था।

सन् 1563 में उसने हिंदुओं पर लगने वाले तीर्थ कर को हटा दिया जो उन्हें अपने तीर्थों की यात्रा पर देना पड़ता था। सम्राट ने हिंदुओं को अपने पुराने मंदिरों के पुनर्निर्माण और नए मंदिर बनाने की अनुमति भी दी। इसके अलावा जिन लोगों को उनकी इच्छा के विरुद्ध इस्लाम अपनाने के लिए बाध्य किया गया था वे भी फिर से अपना धर्म अपना सकते थे, *शरियत* (मुस्लिम कानून)में दिए गए मृत्युदंड के डर से मुक्त अकबर ने युद्धबंदियों के जबरन धर्म परिवर्तन पर भी रोक लगा दी, जो उस समय एक आम प्रथा थी।

सन् 1575 में उसने धार्मिक मामलों पर विचार-विमर्श करने के लिए फतेहपुर सीकरी में *इबादत खाना* के निर्माण का आदेश दिया। आरंभ में इसमें केवल उलेमा भाग ले सकते थे और विचार-विमर्श इस्लाम के इर्द-गिर्द ही घूमता था। लेकिन उलेमा की संकीर्ण बाहरी सोच बौद्धिक रूप से सक्रिय सम्राट को आकर्षित नहीं कर पाई, जो अपने शासन को उपमहाद्वीप में इस्लामिक शासनों को मिली वैधता से कहीं अधिक वैधता देना चाहता था।

अकबर ने अब अपने इबादत खाने में होने वाले विचार-विमर्श में अन्य समुदायों को भी शामिल किया। हिंदू, जैन, पारसी और ईसाइयों को अपने विचार सम्राट के सामने प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित किया गया। अकबर की आध्यात्मिक खोज की तीव्रता का बदायूँनी इन शब्दों में विवरण करता है, "दिन और रात लोग कुछ नहीं कर विज्ञान के गहनतम रहस्यों, प्रकटन की सूक्ष्मता, इतिहास की जिज्ञासा और प्रकृति के चमत्कारों के बारे में सवाल पूछते और जाँच करते रहते थे.... महामहिम विभिन्न चरणों और सभी प्रकार के धार्मिक व्यवहारों और सांप्रदायिक विचारों से गुज़र चुके हैं और वह सब एकत्रित कर चुके है जो लोगों को किताबों में मिल सकता है...."

अपनी खोज को जारी रखते हुए अकबर ने पुरुषोत्तम और देवी जैसे प्रमुख धार्मिक विद्वानों से विचार-विमर्श किया। प्रमुख जैन संत हरिविजय सूरी दो वर्ष तक शाही दरबार में रहे और अबुल फ़ज़ल उनकी गिनती दरबार के इक्कीस ज्ञानी आदमियों में करते थे जो दोनों संसारों के रहस्य से अवगत थे। जिन अन्य जैन विद्वानों को सम्राट ने आमंत्रित किया, उनमें महान जिन चंद्र सूरी थे जो 1591 में खंभात से लाहौर पैदल आए। सम्राट द्वारा दी गई मँहगी भेटों को लेने से अस्वीकार कर उन्होंने सम्राट को जैनधर्म के सिद्धांत समझाए।

प्रसिद्ध पारसी पंडित नवसारी के दस्तूर महयारजी राणा ने भी इबादत खाने में होने वाले विचार-विमर्श में भाग लिया। उन्होंने पारसी धर्म के सिद्धांतों और दस्तूरों को प्रतिपादित किया। उन्हें सम्राट ने दो सौ बीघा ज़मीन भेंट में दी, जिसे वे अपने बेटे को वसीयत में दे सकते थे। पारसी प्रथाओं के अनुसार पवित्र अग्नि को महल में अबुल फ़ज़ल की निगरानी में सदैव प्रज्वलित रखा गया। इस दौरान अकबर सूर्य और रोशनी की बड़े पैमाने पर उपासना करने लगा। सन् 1580 के बाद तीन ईसाई मिशन भी दरबार में आए।

सन् 1579 में अकबर ने *जज़िया* समाप्त कर दिया। यह वास्तव में एक क्रांतिकारी कदम था जिसने उसे उप-महाद्वीप के सभी मुस्लिम शासकों से अलग किया। उसी वर्ष उसने अबुल फ़ज़ल के पिता, शेख मुबारक के निर्देशों पर तैयार विवादास्पद *महजार* जारी किया। *महजार* एक ऐसा आदेश था जो उलेमाओं के बीच असहमति की स्थिति में सम्राट को मुस्लिम कानून की किसी भी एक व्याख्या को चुनने का अधिकार देता था। उलेमा *महजार* को नापसंद करते थे जिसे वे अपने अधिकारों का राजकीय हनन मानते थे। प्रमुख धार्मिक नेताओं और व्यक्तियों को इस सिद्धांत का अनुमोदन करने के लिए बाध्य किया गया, लेकिन कुछ ने इसे अस्वीकार कर दिया।

लेकिन जिस कदम ने लोगों का सबसे अधिक ध्यान खींचा वह था अकबर द्वारा *दीन-ए-इलाही* की घोषणा। यह आश्चर्यजनक है क्योंकि दीन-ए-इलाही कभी भी जन-आंदोलन नहीं बन सका। इलाही लहर के चरम पर भी इसकी सदस्यता एक छोटे से समूह तक ही सीमित थी। इसमें रुचि का एक कारण है *दीन-ए-इलाही* का सम्राट के इस्लाम पर विचारों से तथाकथित संबंध। आज तक विद्वान इलाही की गैर कट्टरवादिता से हैरान इसके द्वारा पैदा अनेक रहस्यों को समझने का प्रयास कर रहे हैं। क्या अकबर एक नए धर्म की स्थापना कर रहा था, क्या उसका इस्लाम या उलेमा वर्ग से मोहभंग हो गया था, या वह स्वयं को पैगंबर मनवाना चाहता था ?

एक रोचक बात यह है कि केवल दो सामयिक स्रोत अकबर को इस्लाम के पथ से विमुख बताते हैं। पहला, अकबर का घोर आलोचक, अब्दुल कादिर बदायूँनी और दूसरा, जेसुइट पुरोहित जो अनेक वर्षों तक अकबर के दरबार में रहा था और उसे ईसाई धर्म में परिवर्तित करना चाहता था। लेकिन शेख अहमद सरहिंदी जो उस युग का प्रमुख पुनर्जागरणवादी विचारक था और जो एक मुस्लिम शासक के रूप में अपना कर्तव्य निभाने में सम्राट की आलोचना करता था, ने भी उस पर कभी स्वधर्मत्याग का आरोप नहीं लगाया।

दीन-ए-इलाही को लोगों की व्यवस्था जिसका आदर्श-वाक्य था सबके साथ शांति (सुलह-कुल) के रूप में देखना उचित होगा न कि एक उदार धर्म। अकबर के हिंदू सामंतों ने इससे अलग रहना

ही उचित समझा, केवल बीरबल इसका सदस्य बनने के लिए तैयार हुआ। राजा टोडर मल, राजा भगवान दास और राजा मान सिंह, सभी ने इससे संबंध रखने से इनकार कर दिया।

सामंत वर्ग का संगठन

एक नई राजकीय विचारधारा की संरचना के बावजूद, सत्ता मुख्यत: एक विशिष्ट वर्ग के हाथ में ही रही। मुगल अधिकारियों में सत्तर प्रतिशत विदेशी थे, विशेषकर फारस से ईरानी और मध्य एशिया से तुरानी। वे उन परिवारों से थे जो हुमायूँ के साथ भारत आ गए थे या जो अकबर के सिंहासन ग्रहण करने के बाद भारत आए।

अकबर के शासनकाल के दौरान केवल इक्कीस हिंदुओं को उच्च सामंत वर्ग में नियुक्त किया गया। इसमें से भी अधिकांश (सत्रह) राजपूत थे। इस प्रतिष्ठित वर्ग में शामिल अन्य चार लोग थे: बीरबल, टोडर मल, उसका बेटा और एक अन्य खत्री।

सामंतों के निम्न वर्ग में सैंतीस हिंदू थे जिसमें तीस राजपूत थे। इससे एक प्रश्न यह उठता है कि केवल राजपूतों को ही विशेष रूप से क्यों नियुक्त किया गया। इस राजकीय नीति के मुख्यत: दो कारण हो सकते हैं। राजपूत हिंदू समाज के तलवारधारी वर्ग थे। उन्हें जीतकर अकबर न केवल उनके सैन्य संसाधनों तक पहुँच पाया बल्कि विदेशी मुस्लिम सामंतों के मुकाबले उसने अपनी स्थिति को और मज़बूत कर लिया। जैसा कि कुछ इतिहासकारों का मत है, अकबर ज़रूरत पड़ने पर राजपूतों का इस्तेमाल अपने अप्रवासी अनुयायियों के विरुद्ध कर सकता था। भारतीय मुसलमान, जिन्हें सम्राट ने आंशिक प्रतिनिधित्व ~~प्रदान~~ किया, भी इस काम आ सकते थे।

इस व्यवस्था को स्वीकार करने में राजपूतों को भी लाभ था। कुछ विद्वानों के अनुसार आठ सौ वर्ष के संघर्ष ने उन्हें थका दिया था। कुछ अन्य के अनुसार अकबर अपने साम्राज्य में विभिन्न जातियों और दलों को संतुलित करने का इच्छुक ही नहीं था। वह शाही सामंतों की एक नई, विस्तृत और तटस्थ पहचान बनाना चाहता था। वह चाहता था कि सामंत स्वयं को मुगल कर्मचारियों के रूप में देखें न कि जातीय और धार्मिक दलों के रूप में। सम्राट अपने इस प्रयास में किस हद तक सफल रहा यह एक खुला सवाल है।

हिंदू विशाल संख्या में प्रशासनिक तंत्र में लिपिक पदों पर मौजूद थे विशेषकर वित्तीय विभागों में।

प्रशासनिक संरचना

अपने पद की सुरक्षा और उसका विस्तार करने और अपनी सरकार में अधिक कार्यकुशलता लाने के लिए अकबर ने प्रशासनिक व्यवस्था का पुनर्गठन किया। बैरम खाँ को बरखास्त करने के बाद उसने वज़ीर के शक्तिशाली पद को भंग कर दिया, उस पद के कार्य को अनेक अधिकारियों में बाँटकर उस पद को खाली रखा। उसके केंद्रीय मंत्रियों का कार्यक्षेत्र सीमित था ताकि सम्राट के अलावा किसी अन्य के हाथों में सत्ता के केंद्रीकरण की संभावना न रहे। अत: दीवान पर केवल वित्त विभाग के कार्य की जिम्मेदारी थी जबकि *मीर बख्शी* सैन्य विभाग के लिए उत्तरदायी था। *सदर-उस-सदूर* धार्मिक मामले देखता था जबकि *मीर समन* पर आपूर्ति विभाग की जिम्मेदारी थी।

अकबर ने अपने साम्राज्य का बारह प्रांतों (सूबों) में विभाजन किया और प्रत्येक में एक दीवान,

बख्शी, *सदर* और *काज़ी* को नियुक्त किया जो केंद्रीय सरकार में अपने प्रतिपक्ष का कार्य करते थे। प्रांतों को आगे सरकार और परगना में विभाजित किया गया जहाँ विभिन्न सरकारी अधिकारियों के बीच प्रभावी नियंत्रण और संतुलन डाले गए।

मनसबदारी व्यवस्था

अकबर द्वारा आरंभ की गई नई व्यवस्थाओं में मनसबदारी व्यवस्था भी थी जिसमें सेना, सामंत वर्ग और सरकारी नौकरी जैसे संस्थान शामिल थे। अनेक वर्षों के प्रयोग के बाद अकबर ने अपने शासन के बीसवें वर्ष में मनसबदारी व्यवस्था को अंतिम रूप दिया। मुगल राज्य की सैन्य प्रकृति को देखते हुए प्रशासनिक तंत्र को अब सैन्य स्तर पर संगठित किया गया और सरकारी सेवा करने वाले अधिकारियों को भी सैन्य पद दिए गए। ये उनके द्वारा दिए गए मनसबों से स्पष्ट था।

मुगल मनसब दोहरी प्रकृति का था, जिसमें दो संख्याएँ थीं — *जात* और *सवार*। उदाहरण के लिए एक मनसबदार को 1000 / 1000 का दरजा दिया जा सकता था; जिसमें पहली संख्या उसका *जात* दरजा दर्शाती थी और दूसरा *सवार। जात* एक व्यक्तिगत दरजा था जो मनसबदार की स्थिति और पदवी दर्शाता था। *जात* के दरज़े में मिलने वाली तनख्वाह से उसे अपने व्यक्तिगत खर्चे पूरे करने होते थे।

सवार घुड़सवार या सैन्य दरजा था। यह मनसबदार का सैन्य कर्तव्य दर्शाता था यानी कि उसे राज्य के लिए कितने घुड़सवार और घोड़े रखने हैं। अधिकांशतः, दस आदमियों की प्रत्येक इकाई में मनसबदार को बीस घोड़े रखने होते थे। घोड़ों के लिए दी जाने वाली रकम उनकी नस्ल के अनुसार होती थी जिसमें इराकी नस्ल का दाम तुर्की या ताज़ी से अधिक होता था। यह सुनिश्चित करने के लिए कि मनसबदार स्तरीय घोड़े और घुड़सवार रख रहा है, अकबर ने सैनिकों की वर्णनात्मक सूची (चेहरा) रखने और सभी भर्ती किए जाने वाले घोड़ों को शाही निशान से दागने का आदेश दिया। मनसबदारों को सवारों का खर्च उठाने के लिए अलग से तनख्वाह दी जाती थी। सवार दरज़े के लिए उन्हें मिलने वाली आय अक्सर *जात* दरज़े के लिए मिलने वाली आय से अधिक होती थी। ऐसा इसलिए था क्योंकि जहाँ जात आय व्यक्तिगत खर्च के लिए थी वहीं सवार आय मनसबदार को टुकड़ियों, घोड़ों और साज-सामान के रखरखाव के लिए दी जाती थी। मनसबदारों को अधिकांशतः तनख्वाह के तौर पर भूमि (जागीर) दी जाती थी इसलिए उन्हें जागीरदार भी कहा जाता था। कुछ मनसबदारों को तनख्वाह नकद भी दी जाती थी।

मनसबदारी व्यवस्था का ज़िक्र करते हुए यह कहना आवश्यक है कि घुड़सवार फौज मुगल सेना की रीढ़ की हड्डी थी। मनसबदार का मुख्य कर्तव्य था राज्य के लिए घुड़सवार फौज की टुकड़ियाँ बनाए रखना। आधुनिक इतिहासकारों की गणना के अनुसार 1595 में 1823 मनसबदारों के पास 1,41,053 की न्यूनतम घुड़सवार फौज थी जिसमें घोड़े और साज-सामान था।

अकबर के शासनकाल में प्रतिवर्ष एक घुड़सवार सिपाही की औसत आय 9,600 दाम थी जो जहाँगीर के समय में भी नहीं बदली। 1630 में शाहजहाँ के शासन काल में इसका दाम घटकर 8,800 हो गया और 1638-39 में घटकर 8,000 दाम रह गया। औरंगज़ेब के शासनकाल में भी यह संख्या 8,000 दाम रही। *अकबरनामा* में एक उल्लेख

के अनुसार राजपूत टुकड़ियों को संभवतः अंतरीय और कम मूल्य दिया गया।

मनसबदारी में सुधार

अकबर के उत्तराधिकारियों के शासनकाल में मनसबदारी व्यवस्था की क्षमता काफी कम हो गई, जिसके कारण उसमें सुधार के लिए अनेक कदम उठाने पड़े। जहांगीर के शासनकाल में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन था *दु-अस्पा-सिह-अस्पा* श्रेणी की शुरुआत। इसे *सवार* श्रेणी का अंग बनाया गया और इसे अधिकांशतः राजकीय अनुग्रह के रूप में दिया जाता था। *दु-अस्पा-सिह-अस्पा* श्रेणी में मनसबदार के सवार दायित्व और उनके लिए दी जाने वाली रकम, दोनों ही दोगुनी कर दी जाती थी।

सिंहासन ग्रहण करने पर शाहजहाँ ने पाया कि अनेक मनसबदार अपने पूरे सैन्य दस्ते नहीं रख रहे थे लेकिन सवार श्रेणी की पूरी तनख्वाह ले रहे थे। अतः उसने जात और घुड़सवार सिपाहियों की तनख्वाह को कम कर दिया और एक-तिहाई, एक-चौथाई और एक-पाँचवें का नियम लागू किया। इस नियम के अनुसार, जब कोई मनसबदार उस प्रांत में काम करता था जहाँ उसकी जागीर थी, तो उसे अपने सवार दरजे एक-तिहाई हिस्से के बराबर सैन्य दल रखना होता था। यदि उसकी जागीर और नियुक्ति अलग-अलग क्षेत्रों में होती तो उसका सैन्य दल उसके सवार दरजे का एक-चौथाई होता। बल्ख-बदख्शाँ अभियान में लगे मनसबदारों को केवल अपने सवार कर्तव्य का एक बटा-पाँचवाँ हिस्सा पूरा करना होता था।

शाहजहाँ ने मासिक मापक्रम शुरू किया। यह इसलिए आवश्यक था क्योंकि जागीर की आय (जमा)के सरकारी मूल्यांकन और वास्तव में एकत्रित रकम (हासिल) में अंतर था। उदाहरण के लिए, शाहजहाँ के शासन के अंतिम वर्षों में मुगल दक्कन का हासिल, जमा का केवल एक-चौथाई था। आय में कमी के साथ ही सवार के कर्तव्यों में भी कमी आई। अतः यदि मनसबदार को 1000 सवारों का रखरखाव करना होता था लेकिन उसे साल में केवल नौ महीने तनख्वाह मिलती थी तो उसका कर्तव्य कम कर 750 सवार और 1,650 घोड़े कर दिया जाता था।

मनसबदारी व्यवस्था वह प्रणाली थी जिससे मुगल भारत पर पहले से भी अधिक शक्ति से शासन करना चाहते थे। मनसबदारों ने राजकीय नीति बनाने में योगदान नहीं दिया, केवल उसे लागू करने में सहायता की।

मनसबदारों की तनख्वाह

जिन विद्वानों ने 1595-96 में मनसबदारों की तनख्वाह का अध्ययन किया है उनका कहना है कि साम्राज्य के शुद्ध आय स्रोत का 82 प्रतिशत केवल 1,671 लोगों के बीच बँटता था।

अकबर के शासन काल के अंत में मुगल राज्य का राजस्व प्रति वर्ष 990 लाख चाँदी के रुपए थे। इसमें से 810 लाख रुपए मनसबदारों को दिए जाते थे जो लगभग 510 लाख रुपए या कुल जमा का लगभग 52 प्रतिशत अपनी सैन्य टुकड़ियों के रखरखाव में खर्च कर देते थे। अकबर स्वयं साम्राज्य के कुल जमा का लगभग नौ प्रतिशत अपने व्यक्तिगत सैन्य रखरखाव में खर्च कर देता था।

इन आँकड़ों से दो निष्कर्ष निकलते हैं। पहला और स्पष्ट है मुगल राज्य का असाधारण विशिष्ट स्वरूप । दूसरा है उसका भीषण सैन्य स्वरूप। एक समय जिसे शांति और स्थायित्व का युग कहा जाता है, में एक विशाल सेना को खड़ा करने और उसका रखरखाव करने में भारी रकम खर्च की गई। मुगल

काल में भारत विदेशी हमले के खतरों से लगभग बचा हुआ था, यह स्पष्ट हो जाता है कि इतना विशाल सैन्य जमावड़ा पुराने क्षेत्रों और विद्रोही लोगों को जीतने और उन पर नियंत्रण करने के लिए रखा गया था।

भूमि अनुदान

तनख्वाह के बदले मनसबदारों को भूमि अनुदान में देने के अलावा मुगल राज्य ने धार्मिक विद्वानों और व्यक्तियों को भी कर मुक्त भूमि अनुदान में दी। अकबर के समय में यह अनुदान *(सूर्युर्हल* या *मदद-ए-माश)* जमा का लगभग 3 प्रतिशत थे। इन अनुदानों को प्राप्त करने वालों में अधिकांश मुसलमान थे। *वक्फ* नामक अनुदानों की एक अन्य श्रेणी संस्थानों को धार्मिक स्थानों, मकबरों और मदरसों (धार्मिक स्कूल)के रखरखाव के लिए दी जाती थी।

भू-राजस्व और निर्धारण प्रणाली

विद्वानों ने मुगल भारत में विभिन्न तरीकों और निर्धारण की दरों के बारे में विस्तृत जानकारी दी है।

किसानों को बटाई या फसल बांटने का तरीका सबसे सही लगता था जिसमें खेती का खतरा किसान और राज्य दोनों के बीच बँट जाता था। इस व्यवस्था में फसल, चाहे वह खेत में खड़ी हो या कटने पर खलिहान में पड़ी हो, को किसान और राज्य के बीच बाँट दिया जाता था।

हस्त–ओ–बद व्यवस्था में अधिकारी गाँव का निरीक्षण कर कुल उत्पाद का अनुमान लगा राजस्व निर्धारित करते थे। कभी–कभी क्षेत्र के कुल उत्पाद का अनुमान लगाने के लिए हलों की संख्या भी ली जाती थी।

कानकुत व्यवस्था में पहले भूमि को नापा जाता था और फिर प्रत्येक फसल की प्रति उत्पाद इकाई का अनुमान लगाया जाता था। इसके बाद इसे खेती किए जाने वाले क्षेत्र पर लागू किया जाता था। *नसक* व्यवस्था में राज्य को दिए जाने वाले राजस्व का अनुमान पूर्व निर्धारण के आधार पर लगाया जाता था।

शेर शाह द्वारा लाहौर से अवध तक लागू *ज़ब्त* व्यवस्था को शुरुआत में अकबर ने भी अपनाया। प्रत्येक क्षेत्र में चल रहे मूल्यों के अनुसार अकबर ने उन दरों को मंजूरी दी जिनके द्वारा माल के रूप में कर को नकद दर (दस्तूर) में परिवर्तित किया जा सके। इस समय औसत उत्पाद (राई) पर अधारित फसल की केवल एक दर और लाहौर से लेकर अवध क्षेत्र तक मूल्य की एक सारणी थी। इसमें स्थानीय उत्पादन और मूल्यों में भारी विषमताओं को नज़र अंदाज किया जाता था।

कानूनगो द्वारा की गई जानकारी के आधार पर अकबर के शासन के ग्यारहवें वर्ष (1566-67) में दो वरिष्ठ राजस्व अधिकारियों, मुज़फ्फर खाँ और टोडरमल ने एक नया *जमा* तैयार किया। लेकिन *कानूनगो* द्वारा दिए गए आंकड़े विश्वसनीय नहीं साबित हुए। प्रति वर्ष राई को नकद दरों में परिवर्तित करने की समस्या भी बनी रही।

इन समस्याओं के समाधान के रूप में शासन के चौबीसवें वर्ष (1579-80) में *जमा–ए–दह–शला* (दस वर्ष का जमा) संकलित किया गया। सबसे पहले, औसत उत्पाद का अनुमान लगाने के लिए पिछले दस वर्षों की खेती की वर्तमान दर के आधार पर प्रत्येक इलाके के लिए नई *राई* तैयार की गई। पिछले दस वर्षों की नकद दर को भी तालिकाबद्ध किया गया और औसत मूल्य के आधार पर अंतिम दस्तूर तैयार किए गए। अंतिम दस्तूर से वार्षिक राजकीय हस्तक्षेप की आवश्यकता खत्म हो गई और वार्षिक राजस्व मांग उगाहने में अनिश्चितता भी काफी कम हो गई। जमा–ए–दह–शला की प्रमुख

कमियों में यह था कि किसानों को खेती के सारे खतरे खुद उठाने पड़ते थे।

राजस्व मांग का विस्तार

अकबर के समय में भू-राजस्व प्रत्येक क्षेत्र में भिन्न था। कश्मीर, जहां फसल का दो-तिहाई हिस्सा किसानों से लिया जाता था, में सम्राट ने राज्य का दावा घटाकर उत्पाद का आधा कर दिया।

सिंध में भी मांग, उत्पाद का पचास प्रतिशत ही थी जबकि सूबे के रेगिस्तानी क्षेत्रों में यह फसल का सातवां या आठवां भाग थी। डेनमार्क के आढ़ती, जिलेनसेन ने 1629 में गुजरात में पाया कि किसानों को अपने उत्पाद का तीन-चौथाई हिस्सा दे देना पड़ता था।

औरंगज़ेब के शासनकाल में लाहौर क्षेत्र के रिकॉर्ड से पता चलता है कि *कानकुत* और फसल बाँटने की व्यवस्था में गेहूँ और जौ की फसल का 50 प्रतिशत हिस्सा राज्य ले लेता था। विद्वानों ने 1665 ई. में जारी एक फरमान का उल्लेख किया है जिसके अनुसार गुजरात में कुछ जागीरदार किसानों के उत्पादन को वास्तविक से ढाई गुना ज़्यादा बताकर उनसे कुल उत्पाद से भी अधिक को राजस्व के रूप में लेने का प्रयास कर रहे थे।

भू-राजस्व के अतिरिक्त ग्रामीण कर

राजस्व की अत्यधिक माँग के अलावा किसानों को एक साथ अनेक कर देने होते थे जिन्हें *वुजूहत* कहा जाता था। इनमें पशुओं, जानवर चराने, फलोद्यान और बाज़ार पर कर शामिल थे। इसके अलावा राजस्व अधिकारी अलग से भी उगाही करते थे।

हालांकि राजस्व अधिकारियों को किसानों से नाजायज़ माँग करने के विरुद्ध बार-बार चेतावनी दी गई, लेकिन यह जारी रहा। किसानों पर पड़ने वाले बोझ का अंदाज़ा एक गाँव के निवासियों द्वारा की गई शिकायत से लगाया जा सकता है जिसमें वे कहते हैं कि राजस्व अधिकारियों की अवैध माँगें गाँव के *जमा* का लगभग एक तिहाई थीं। सम्राट औरंगजेब द्वारा जमा 4 प्रतिशत पर लागू जज़िया ने हिंदुओं के आर्थिक बोझ को और बढ़ा दिया।

विद्वानों का मत है कि कई मामलों में किसानों पर कर का बोझ इतना बढ़ गया कि राज्य की माँग को पूरा करने के लिए उन्हें अपनी पत्नी, बच्चों और पशुओं को बेचना पड़ा। अनेक विदेशी यात्रियों ने मुगल भारत में किसानों की दुर्दशा की पुष्टि की है। जेसुइट पुजारी जेरोम ज़ेवियर कहते हैं कि गुजरात और कश्मीर में मुगल शासन के फलस्वरूप लोगों के कष्टों में अत्यधिक वृद्धि हुई। कहा जाता है कि अकबर के समय में भी 1574 के 'करोड़ी प्रयोग' (जिसमें कृषि योग्य सभी भूमि को नापने का लक्ष्य था) के कारण किसानों को भारी मुश्किलों का सामना करना पड़ा।

जहाँगीर के शासनकाल में एक वर्णन के अनुसार किसानों का "क्रूरता और निर्ममता से दमन किया गया।" शाहजहाँ के शासनकाल में भी "अफसरों की क्रूरता" और "प्रांतीय शासकों के दमन और रुखाई" का वर्णन है।

फ्रांसीसी यात्री, बरनियर लिखता है कि औरंगज़ेब के शासन काल में "अच्छी भूमि के एक बड़े हिस्से में किसानों की कमी के कारण खेती नहीं की गई", "शासकों के बुरे बर्ताव के कारण कई अपनी जान खो बैठते हैं'' या ''देश छोड़ देते हैं।"

जाति और धर्म की सीमाओं से ऊपर उठकर अनेक किसानों ने विद्रोह को व्यापक बना दिया।

अभ्यास

1. अकबर के राजपूत राज्यों के विरुद्ध अभियानों का वर्णन कीजिए।
2. अकबर के दक्कन में आक्रमणों के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
3. अबुल फ़ज़ल द्वारा अपने सम्राट के लिए बनाई गई राजवंशीय विचारधारा का वर्णन कीजिए।
4. दीन-ए-इलाही का स्वरूप कैसा था, क्या इसे एक नया धर्म कहा जा सकता है?
5. अकबर के शासनकाल में सामंत वर्ग का संयोजन कैसा था?
6. मनसबदारी व्यवस्था में *ज़ात* और *सवार* श्रेणी का क्या मतलब था?
7. अकबर के उत्तराधिकारियों के शासनकाल में मनसबदारी व्यवस्था में क्या सुधार किए गए?
8. मनसबदारों के बीच राज्य की आय का कितना प्रतिशत वितरित किया जाता था? क्या मुगल राज्य सैन्य स्वरूप का था?
9. *ज़ब्त व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ क्या थीं?*
10. जमा-ए-दाह-शला क्या था?
11. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए :
    (क) बटाई
    (ख) हस्त-ओ-बद
    (ग) कानकुत
    (घ) नसक
12. भारत के एक मानचित्र पर अकबर की मृत्यु के समय मुगल साम्राज्य का विस्तार दिखाइए।
13. सही या गलत बताइए :
    (क) अब्दुल रहीम खान खाना, बैरम खाँ का बेटा था।
    (ख) बाज़ बहादुर, गोंडवाना का शासक था।
    (ग) शेख सलीम चिश्ती की मज़ार अजमेर में थी।
    (घ) बदायूँनी अकबर का प्रशंसक था।
    (ङ) बरनियर एक फ्रांसीसी यात्री था।

जहाँगीर (1605-1627)

उत्तराधिकार, तैमूर के वंश को प्राप्त ऐसी समस्या थी, जिससे मुगल अपने संपूर्ण शासनकाल के दौरान ग्रस्त रहे। तैमूरों की शाही बच्चों के बीच राज्य का विभाजन करने की परंपरा के फलस्वरूप प्रत्येक मुगल राजकुमार स्वयं को भावी शासक के रूप में देखता था। इसके फलस्वरूप साम्राज्य में अक्सर उत्तराधिकार के लिए संघर्ष होता रहता था। हुमायूँ और उसके बेटे अकबर को अपने शासन के आरंभिक वर्षों में अपने भाइयों से गंभीर चुनौती का सामना करना पड़ा और मुगल साम्राज्य आगामी शताब्दियों में भी इस समस्या से ग्रस्त रहा।

भाइयों और सौतेले भाइयों के अलावा बच्चे भी एक संभावित खतरा थे। उदाहरण के लिए, सन् 1591 में अकबर अपने बेटे युवराज सलीम (भावी जहाँगीर) पर ज़हर देने का संदेह करता था। शताब्दी के अंत में, दोनों के बीच मतभेद इतने अधिक हो गए कि सलीम ने विद्रोह कर दिया, इलाहाबाद में स्वतंत्र दरबार स्थापित किया और शाह की राजकीय पदवी ग्रहण की।

सन् 1605 में जब यह स्पष्ट हो गया कि अकबर का अंत निकट है, राजकुमार सलीम को अपने सबसे बड़े बेटे, राजकुमार खुसरो से संभावित राज्य-विप्लव का खतरा था, जिसे राजा मान सिंह कछवाहा और मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका (जिसकी बेटी राजकुमार की पत्नी थी)से सहायता मिली। राज्य विप्लव में भाग लेने वाले नेताओं की अन्य प्रमुख सामंतों को अपने साथ मिलाने में असमर्थता और सलीम को बरहा के सैयदों से मिली सहायता ने सुनिश्चित किया कि वह ही अकबर का उत्तराधिकारी बने।

लेकिन इससे जहाँगीर को शाही परिवार के भीतर से प्राप्त चुनौती खत्म नहीं हुई। अप्रैल 1606 में आगरा के किले में छः महीने कैद जैसी स्थिति में रहने के बाद राजकुमार खुसरो पंजाब भाग गया और अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। लेकिन शाही सेनाओं के साथ भिड़ंत में वह हार गया और अपने प्रमुख अनुयायियों के साथ उसे कैद कर लिया गया। क्रुद्ध सम्राट ने आदेश दिया कि राजकुमार के प्रमुख समर्थकों को उसके सामने छेदा जाए लेकिन इस क्रूरतापूर्ण सज़ा से भी खुसरो ने हार नहीं मानी और उसने अपने पिता को मारने का एक षड्यंत्र रचा। क्रुद्ध जहाँगीर ने अपने बेटे को अंधा करने का आदेश दिया और इस प्रकार उसके शासन का एक खतरा दूर हुआ।

जीत : अशांत विरासत और उपलब्धियाँ

जहाँगीर के शासनकाल में मुगल साम्राज्य की जीत और विस्तार की नीति जारी रही। मेवाड़, जिसने अब तक मुगल शासन का विरोध किया था, में तुरंत संघर्ष की स्थिति तैयार थी। राज्य के विरुद्ध जहाँगीर का पहला अभियान और उसके बाद के लगभग सभी

अपने पिता अकबर के चित्र के साथ जहाँगीर

वार्षिक अभियान भी असफल रहे। अंततः 1613 में सम्राट अब तक अपने बेटे राजकुमार खुर्रम (भावी शाहजहाँ)को सौंपी गई कार्रवाई का स्वयं निरीक्षण करने अजमेर आ गया। शाही सेना के जमावड़े को देख राणा अमर सिंह ने स्वयं मुगल राजकुमार के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और इस तरह मुगल शासन के विरोध का आंशिक रूप से अंत हुआ। राणा ने व्यक्तिगत रूप से शाही दरबार में पेश होने से छूट माँगी। उसने अपने बेटे, करण द्वारा प्रतिनिधित्व का अनुरोध किया; जिसे मुगलों ने स्वीकार कर लिया। मेवाड़ के आत्मसमर्पण से अनेक अन्य शक्तियाँ, जो मुगलों का विरोध कर रही थीं, अनिश्चित काल तक मुगलों का विरोध करने में आने वाली कठिनाइयों को समझने लगीं।

उत्तर-पूर्व में लंबे वर्षों तक युद्धरत रहने के कारण अफगान थक चुके थे, परन्तु युद्धप्रिय अहोम मुगलों के साथ जहाँगीर के शासनकाल में प्रतिवर्ष भिड़ते रहे। सैन्य बल, अचानक हमले और नदी में नावों के कुशल इस्तेमाल ने उन्हें मुगलों का घोर शत्रु बना दिया और इस संघर्ष के शीघ्र सुलझने के आसार खत्म कर दिए।

हिमालय की तराई में अधिकांश छोटे राजपूत राज्यों को अकबर के शासनकाल में मुगलों की प्रभुसत्ता स्वीकार करने पर बाध्य होना पड़ा। अपने राज्यों को बनाए रखने के अधिकार के बदले, उन्होंने वार्षिक हरजाना देना, सम्राट के दरबार में कार्य करना और शाही परिवार में अपनी बेटियों का विवाह करना स्वीकार किया। इन राज्यों पर नज़र रखने के लिए अकबर ने क्षेत्र में फौजदारों को भी नियुक्त किया। लेकिन जहाँगीर के समय में कांगड़ा के राजा ने मुगलों से संघर्ष किया। शाही सेनाओं को इस छोटे से राज्य पर कब्ज़ा करने में लगभग तीन वर्ष लगे। जहाँगीर, कांगड़ा पर विजय प्राप्त करने वाला पहला मुस्लिम शासक था और मुगलों की इस उपलब्धि के उपलक्ष्य में 1620 में वह स्वयं वहां गया। उसने किले के परिसर में एक बैल को मारा और क्षेत्र में एक मस्जिद का निर्माण किया।

उत्तर-पश्चिम में मुगलों के फारस के सफाविद राज्य से संबंध थे। फारसी स्वयं को सांस्कृतिक रूप से श्रेष्ठ मानते थे और दो फारसी शासकों ने तो बाबर और हुमायूँ से सबके सामने शिया इस्लाम के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने को भी कहा। इसके बावजूद मुगल और सफाविदों के बीच दूतावासों, पत्रों और

जहाँगीर की फारस के राजा शाह अब्बास से मुलाकात (मुगल लघु चित्र)

उपहारों का आदान-प्रदान होता रहता था। कंधार पर युद्ध के अतिरिक्त उनके बीच कभी भी संघर्ष नहीं हुआ। सन् 1595 में अकबर ने कंधार पर कब्ज़ा कर लिया था। जहाँगीर के शासन के प्रारंभिक वर्षों में सफाविदों द्वारा उस पर पुनः कब्ज़ा करने का प्रयास असफल रहा, लेकिन 1622 में जहाँगीर की बीमारी के कारण फारसियों ने कंधार पर पुनः कब्ज़ा कर लिया।

दक्कन

मुगलों के लिए दक्कन एक अन्य कष्टदायी सीमा थी। अकबर की मृत्यु के समय मुगलों का खानदेश, बरार और अहमदनगर के उत्तरी हिस्से पर कब्ज़ा था, लेकिन मलिक अंबर के नेतृत्व में अहमदनगर ने फिर से मुगलों का विरोध करना शुरू कर दिया, जिसके कारण जहाँगीर को अहमदनगर के विरुद्ध फिर से मुगल सेनाएँ तैनात करनी पड़ीं। एक दशक तक युद्धरत रहने के बाद अंततः 1616 में मुगलों ने अहमदनगर पर कब्ज़ा कर लिया। लेकिन मलिक अंबर बच निकलने में कामयाब रहा और उसने मुगलों के विरुद्ध अपना संघर्ष जारी रखा।

जहाँगीर ने राजकुमार खुर्रम को दक्कनी अभियान की बागडोर संभालने को कहा। खुर्रम की मलिक अंबर के विरुद्ध एक महत्त्वपूर्ण युद्ध में जीत हुई और वह मुगलों को बरार और अहमदनगर देने को राज़ी हो गया।

लेकिन मलिक अंबर जल्दी ही इस समझौते को भूल गया और उसने बीजापुर और गोलकोंडा से मुगलों के विरुद्ध अपने संघर्ष में सहायता का आग्रह किया। खुर्रम ने फिर से अहमदनगर पर मुगलों का कब्ज़ा जमाया और बीजापुर और गोलकोंडा को भारी हरजाना देने के लिए बाध्य किया। दक्कन में अब विनम्र अधीनता और निरंतर विरोध की चिर परिचित राजनीतिक स्थिति एक बार फिर पैदा हो गई। इन घटनाओं में मराठों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

सिख

पंजाब में भी एक नया युद्धक्षेत्र तैयार हो रहा था। जहाँगीर के पाँचवें सिख गुरु, अर्जुन के प्रति वैमनस्य का कारण जानना कठिन है। सिख अब तक सर्वाधिक शांतिप्रिय धार्मिक थे और मुगल राज्य को उनसे कोई खतरा नहीं था। संभवतः जहाँगीर विशाल संख्या में अनुयायियों वाले स्थानीय धार्मिक नेताओं को लेकर सशंकित था।

अपने जीवन-वृत्त *तुज़ुक-ए-जहाँगीरी* में वह लिखता है, "गोइंदवाल में जो कि बियाह (व्यास) नदी पर है, अर्जुन नामक एक हिंदू था, जिसने संतों के वेश में और पवित्र वस्त्रों में, अनेक सरल हृदय हिंदुओं का हृदय जीत लिया। यहाँ तक कि इस्लाम के अज्ञानी और नासमझ अनुयायियों का भी हृदय अपने तरीके और बर्ताव से जीता और उन्होंने परम पूज्य का ज़ोर से डंका बजाया। उन्होंने उन्हें गुरु कहा और चारों ओर से... लोग उन्हें पूजने और उनमें पूरी निष्ठा जताने एकत्रित हुए..."

एक अन्य कारण था कि राजकुमार खुसरो, जहाँगीर के विरुद्ध अपने दुर्भाग्यपूर्ण विद्रोह के दौरान कुछ समय के लिए गुरु से गोइंदवाल में मिला था। जहाँ गुरु अर्जुन ने उसके माथे पर केसरिया तिलक लगाकर उसे आशीर्वाद दिया था। सम्राट ने गुरु की संपत्ति और उनके बच्चों को ज़ब्त करने और उन्हें मौत के घाट उतारने का आदेश दिया। इस प्रकार मुगलों के हाथों मारे जाने वाले वे पहले गुरु बने।

गुरु अर्जुन के युवा बेटे और उत्तराधिकारी, हरगोबिंद ने इस अत्यंत अन्यायपूर्ण घटनाक्रम पर अपनी प्रतिक्रिया सांसारिक और आध्यात्मिक मामलों पर ध्यान देकर की। उनके दो अस्त्र, पीरी और मीरी, आध्यात्मिक और सांसारिक प्रभुत्व के पूरक थे। उन्होंने स्वर्ण मंदिर में अकाल तख्त का निर्माण किया और विभिन्न सांसारिक मामलों का संचालन करने के लिए वहाँ दरबार लगाया। उन्होंने अपने अनुयायियों की सैन्य गतिविधियों को प्रोत्साहित किया और अपनी रक्षा के लिए लौहगढ़ के किले का निर्माण किया। इन कदमों से मुगल अधिकारी सशंकित हुए और उन्होंने सम्राट को इस मामले की सूचना दी। क्रुद्ध जहाँगीर ने गुरु को दो वर्ष तक ग्वालियर के किले में कैद रखा। रिहा होने पर गुरु हरगोबिंद ने हिमालय की गिरीपीठ में अपना केंद्र बना लिया।

धार्मिक रुझान

जहाँगीर के विचारों का सही आकलन कर पाना आसान नहीं है। उसने अपनी आत्मकथा में लिखा कि वह मुस्लिम संतों और व्यक्तियों का बहुत सम्मान करता है। हिंदू त्योहारों में भाग लेने को वह राजनीतिक रूप से उचित समझता था।

सन् 1613 में जहाँगीर ने मेवाड़ के राणा, अमर सिंह के खिलाफ अभियान का संचालन करने के लिए अजमेर में तीन वर्ष का प्रवास आरंभ किया। इस दौरान वह नौ बार मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह गया और प्रत्येक अवसर पर दिल खोलकर अनुदान दिया। चिश्ती संत के प्रति श्रद्धा के रूप में उसने मोती के कर्णफूल पहनने शुरू कर दिए। उसको देखकर उसके अनेक दरबारियों ने भी ऐसा करना शुरू कर दिया।

अजमेर के निकट पुष्कर के पवित्र सरोवर के तट पर शिकार खेलकर जहाँगीर ने राणा पर अपनी जीत का समारोह मनाया, जो कि स्थानीय परंपरा के विरुद्ध था। उसने वराह अवतार में विष्णु की प्रतिमा को नष्ट करवाकर सरोवर में फिंकवा दिया। यह मंदिर क्योंकि राणा के मामा / चाचा / ताऊ का था इसलिए कुछ आधुनिक इतिहासकार इस हरकत का कारण राजनीतिक न कि आर्थिक मानते हैं। जहाँगीर ने पुष्कर सरोवर के तट पर शिकार के लिए एक महल भी बनाया; इस प्रकार उसने हिंदुओं के सबसे पवित्र तीर्थों में से एक में मुगलों की उपस्थिति दर्ज की।

इन सबके बावजूद जहाँगीर महान वैष्णव संत गोसाईं जदरूप से भी प्रभावित था। संत द्वारा मुगल

दरबार आने का आमंत्रण अस्वीकार करने के बाद जहाँगीर अनेक बार संत से मिलने गया। जहाँगीर पहले उनसे मिलने उज्जैन गया और कुछ वर्षों बाद वह एक सप्ताह के अदंर दो बार संत से मिला। उस अवसर पर वह लिखता है: "सोमवार, 12 तारीख को गोसाईं जदरूप से मिलने की मेरी इच्छा बढ़ी और बिना किसी समारोह, मैं उनकी कुटिया पहुँचा और उनके साथ का आनंद उठाया। हम दोनों के बीच उत्कृष्ट शब्दों का आदान-प्रदान हुआ। ईश्वर ने उन्हें असाधारण कृपादृष्टि, महान समझ और उत्कृष्ट स्वभाव तथा तीव्र बौद्धिक शक्तियाँ दी हैं। उनके पास ईश्वर का दिया ज्ञान है और उनका हृदय सांसारिक बंधनों से मुक्त है इसलिए दुनिया और उसमें सभी चीज़ों से मुँह मोड़कर वे एक कोने में बिना किसी इच्छा के संतुष्ट बैठे हैं।"

एक अन्य प्रमुख धार्मिक व्यक्तित्व जिससे जहाँगीर के आदान-प्रदान का विवरण हमारे पास है, वह था शेख अहमद सरहिंदी, नक्शबन्दी सूफी संप्रदाय की एक प्रमुख हस्ती, सरहिंदी अकबर की नीतियों का विरोधी था क्योंकि उनका मानना था कि अकबर ने सरकारी व्यवस्था के इस्लामिक स्वरूप को कम कर दिया है। वह आशा करते थे कि जहाँगीर अपने पिता की विभ्रांत नीतियों को पलट देगा। सरहिंदी जहाँगीर द्वारा सिख गुरु को दिए गए प्राणदंड को एक महत्त्वपूर्ण घटना मानते थे।

अनेक पढ़े-लिखे मुसलमान भी सरहिंदी के समान अकबर की नीतियों पर अविश्वास करते थे। लेकिन उन्होंने उसके चार पवित्र खलीफाओं का आविर्भाव होने के दावे को नकार दिया।

सम्राट ने सरहिंदी को बुलाकर उसे कैद कर दिया। प्राप्त तथ्यों के आधार पर उनकी कैद के कारणों के बारे में निश्चित रूप से कुछ कह पाना कठिन है। जहाँगीर स्वयं सरहिंदी के चार पवित्र खलीफाओं के समकक्ष होने के दावे से नाराज़ था। लेकिन एक वर्ष बाद कैद से छूटने पर सम्राट ने सरहिंदी को सम्मानस्वरूप एक चोगा, हज़ार रुपए की भेंट और शाही दरबार में या सरहिंद जाकर रहने का विकल्प दिया। सरहिंदी ने शाही दरबार में रहना चुना और लगभग तीन वर्ष तक शाही खेमे में रहा। उनके द्वारा दिए गए कुछ उपदेशों को सम्राट ने सुना।

नूरजहाँ

सन् 1611 में एक ईरानी विधवा, मेहरुन्निसा, जो सम्राट के सामंत इतमाद-उद-दौला की बेटी थी, से सम्राट के विवाह के बाद उनके जीवन में एक महत्त्वपूर्ण चरण की शुरुआत हुई। नई रानी जल्दी ही सम्राट की प्रिय पत्नी बन गई और उसे नूरजहाँ (संसार की रोशनी) की पदवी दी गई।

अनेक उल्लेखों के अनुसार नूरजहाँ का सम्राट पर बहुत नियंत्रण था और वह शाही राजनीति में एक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में उभरी। उसके पिता को शाही दीवान बना दिया गया, जबकि उसका भाई आसफ़ खाँ एक प्रमुख मनसबदार बना। रानी के परिवार की मज़बूत होती स्थिति उस समय और भी मज़बूत हो गई जब 1612 में आसफ़ खाँ की बेटी अर्जुमंद बानो (भावी मुमताज़ महल) का विवाह जहाँगीर के दूसरे बेटे और युवराज खुर्रम के साथ हुआ।

नूरजहाँ, उसके पिता, भाई और राजकुमार खुर्रम एक दुर्जेय शक्ति के रूप में उभरे, जो कम से कम एक दशक तक कायम रही। लेकिन यह शक्ति उस समय विघटित हो गई जब सम्राट बीमार पड़ा और नूरजहाँ ने सत्ता संभाली और राजकुमार खुर्रम से

उसका टकराव हुआ। अब नूरजहाँ ने अपने पिछले पति की बेटी का जहाँगीर के सबसे छोटे बेटे से विवाह कर दिया और इस प्रकार सिंहासन का एक और दावेदार खड़ा कर दिया, जो उसके ज़्यादा नियंत्रण में था।

उत्तराधिकार

सन् 1621 में जब राजकुमार खुर्रम को पता चला कि सम्राट गंभीर रूप से बीमार हैं तो उसने अपने बड़े भाई, दृष्टिहीन बना दिए गए राजकुमार खुसरो को गुप्त रूप से मौत के घाट उतारने का आदेश दिया। अपने दामाद, राजकुमार शहरयार की ओर से नूरजहाँ के षड्यंत्रों के कारण राजकुमार खुर्रम खुलकर विद्रोह करने पर विवश हो गया। जहाँगीर की सेना द्वारा पराजित किए जाने के बावजूद, खुर्रम ने विद्रोह जारी रखा और सहयोगियों की तलाश में साम्राज्य के एक हिस्से से दूसरे हिस्से तक भागता रहा। अंततः वह एक समझौते के लिए राज़ी हो गया जिसके अंतर्गत वह दक्कनी प्रांतों का शासक बना रहा और उसने अपने दो बेटों दारा शिकोह और औरंगज़ेब को अपने पिता के दरबार में बंधक के रूप में भेजा।

सन् 1627 में जहाँगीर की मृत्यु हो गई और खुर्रम अपने ससुर, आसफ़ खाँ की कुशल चालों के फलस्वरूप सिंहासन ग्रहण करने में सफल हो गया। सिंहासन ग्रहण करने के तुरंत बाद, शाहजहाँ ने अपने भाई राजकुमार शहरयार, राजकुमार खुसरो के दो बेटों और जहाँगीर के भाई, राजकुमार दानियाल के दो बेटों को मार डालने का आदेश दिया।

शाहजहाँ (1628-1658)

बाबर द्वारा स्थापित, अकबर द्वारा पोषित, जहाँगीर द्वारा एकीकृत साम्राज्य शाहजहाँ के शासनकाल में अपनी चरम सीमा पर पहुँचा। सैन्य शक्ति, राज्य के विस्तार और संपत्ति में अद्वितीय मुगल साम्राज्य वास्तव में एक सर्वोत्कृष्ट शक्ति और साम्राज्य शब्द की कसौटी पर खरा उतरने वाला था।

सिंध से लेकर सिलहट तक और बल्ख से लेकर दक्कन तक साम्राज्य का राजस्व 8 अरब 80 करोड़ था। इससे पहले दो दशक पूर्व जहाँगीर के शासनकाल में राजस्व 7 अरब दाम था और अकबर के शासन के चालीसवें वर्ष में 4 अरब 61करोड़ दाम। राजकीय निधि 95 अरब रुपए थी, आधी सिक्कों में और बाकी सोने चाँदी, बहुमूल्य पत्थर, अन्य बहुमूल्य वस्तुओं के रूप में। सन् 1595-96 में अकबर के शासनकाल में 1,47,000 से भी अधिक घुड़सवार फौज के मुकाबले शाहजहाँ के शासनकाल में हथियार बंद घुड़सवारों की संख्या 2,00,000 थी।

बढ़ते हुए शासकीय राजस्व के फलस्वरूप राजकीय स्मारकों के निर्माण में तेज़ी आई, ऐसी सुरुचिपूर्ण और परिष्कृत इमारतों के लिए मुख्यतः शाहजहाँ को आज भी याद किया जाता है। शाहजहानाबाद की नई राजधानी, ताजमहल, आगरा के किले में बने संगमरमर के ढांचे अपनी सुरुचिपूर्ण आकृति और उत्कृष्ट बनावट के लिए जाने जाते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि शाहजहाँ ने अपने तीन दशक लंबे शासन काल में निर्माण कार्यों में कम से कम 289 लाख रुपए खर्च किए। उसके मयूर सिंहासन की भव्यता को नादिरशाह द्वारा उठाकर लिए जाने के अनेक वर्षों बाद तक याद किया जाता रहा।

विजय

शाहजहाँ के शासनकाल में मुगल शासन को उन क्षेत्रों में भी कड़ाई से लागू किया जाने लगा, जहाँ

इसे औपचारिक रूप से स्वीकार कर लिया था। अन्य लोगों में बुंदेला राजपूतों ने कसते हुए राजकीय शिकंजे को महसूस किया। बुंदेलों ने सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में बेतवा नदी के तट पर ओरछा में अपनी राजधानी स्थापित की। इसके बाद इस वंश की अन्य शाखाएँ भी इस क्षेत्र में आकर बस गईं और उनके नाम पर यह क्षेत्र बुंदेल खंड के नाम से जाना गया लेकिन अकबर इन राज्यों को नज़राना देने के लिए बाध्य करने में सफल हो गया था।

बुंदेल वंश के एक सदस्य बीर सिंह देव ने राजकुमार सलीम के आग्रह पर अबुल फ़ज़ल को मरवाने का प्रबंध करवाया। जब सलीम सम्राट बना तो उसने बीर सिंह के बुंदेला सिंहासन पर दावे का समर्थन किया। बीर सिंह ने दो दशक तक शासन किया और उसकी भी मृत्यु उसी वर्ष हुई, जब जहाँगीर मरा।

बीर सिंह ने जहाँगीर की उसके बेटे, भावी सम्राट शाहजहाँ के विद्रोह को भी दबाने में मदद की। इसलिए जब बीर सिंह का बेटा, जुझार सिंह, सम्राट शाहजहाँ के दरबार में आया तो उसके दिवंगत पिता की संपत्ति की छानबीन का आदेश दिया गया। इस घटनाक्रम से भयभीत जुझार सिंह अपने राज्य भाग खड़ा हुआ, जहाँ मुगल सेना उसका पीछा करते हुए पहुँच गई। शहर पर हमला करने से पूर्व शाही सेना ने समीपवर्ती देहात को नष्ट कर दिया। तीन हज़ार बुंदेला राजपूत अपने राज्य की रक्षा करते हुए मारे गए। जुझार सिंह को 15 लाख रुपए का हरजाना, भेंटस्वरूप चालीस हाथी और मुगलों को एक ज़िला देना पड़ा। उसे और उसके बेटों को दक्कनी अभियानों में कार्य करने का निर्देश दिया गया।

सन् 1634 में जुझार सिंह ने पड़ोसी गोंड राज्य पर हमला कर उसके शासक भीम नारायण को मारकर और चौरागढ़ किले में मिले खज़ाने पर कब्ज़ा कर फिर से मुसीबत को न्यौता दिया। शाहजहाँ ने जुझार सिंह को तुरंत गोंड भूमि और लूटा गया खज़ाना वापस करने और हरजाना देने का निर्देश दिया।

जब जुझार सिंह ने मानने से इनकार कर दिया तो उसे हटाने और उसके स्थान पर देवी सिंह बुंदेला को राजा बनाने के लिए मुगल सेनाएँ भेजी गईं। जुझार सिंह, मध्य भारत में एक अन्य गोंड राज्य चांदा भाग गया जो अब भी मुगल शासन के परे था। मुगल सेनाओं द्वारा पराजित होने पर उसकी मुख्य पत्नियों को उनके सहचरों ने मार दिया जिससे उनका शत्रु के हाथों अपमान न हो, लेकिन अन्य साथी महिलाओं को पकड़कर मुगल हरम में भेज दिया गया। दो बेटे और एक पोते ने इस्लाम धर्म कबूल कर लिया और एक जिसने ऐसा करने से इनकार कर दिया, उसे मार दिया गया। जुझार सिंह और उसके सबसे बड़े बेटे को गोंडों के एक दल ने मार दिया।

चांदा के गोंड राजा को भारी हरजाना और वार्षिक शुल्क देने पर राज़ी होना पड़ा। वहीं ओरछा में भारी लूट का माल हाथ लगा। शाहजहाँ स्वयं महल पहुँचा जहाँ इतिहासकार अब्दुल हमीद लाहौरी के अनुसार ''इस्लाम को मानने वाले सम्राट ने अपने महल के निकट बीर सिंह देव के भव्य और विशाल मंदिर को नष्ट कर दिया और उसके स्थान पर एक मस्जिद बनवाई। इस प्रकार मध्य भारत में दो प्रमुख राज्य, बुंदेल खंड और गोंडवाना ने राजकीय नियंत्रण में बढ़ोत्तरी महसूस की।

शाहजहाँ द्वारा हिमालय की गिरिपीठ में छोटे से राजपूत पहाड़ी राज्य, गढ़वाल को करदाता बनाने की कोशिश असफल रही। मुगल सेनाओं को इतनी करारी हार झेलनी पड़ी कि केवल बीस वर्ष बाद

ही राज्य पर कब्ज़ा करने के लिए उन्होंने दूसरा अभियान भेजा। यह अभियान भी असफल रहा। राज्य पर हमला करने के लिए सम्राट ने नए सिरे से टुकड़ियाँ एकत्रित कीं, जो तोपखाने से लैस थीं। राजा कर देने और अपने बेटे को शाही दरबार में भेजने के लिए राज़ी हो गया।

उत्तर-पूर्व में मुगल साम्राज्य की सीमाएँ कूच बिहार और कामरूप तक थीं। सन् 1636 में मुगलों के एक व्यापारी-दूत की हत्या ने अहोम-मुगल युद्ध की शुरुआत की। भूमि और नदी पर लड़े गए भीषण युद्ध के बाद मुगलों को अहोम द्वारा स्वयं के बचाव के कारण पीछे हटना पड़ा। इसके बाद जो संधि की गई, उसने क्षेत्र में आने वाले दो दशकों तक शांति बनाए रखी और अहोम शासकों की स्वतंत्र स्थिति को स्वीकार किया।

दक्षिणी सीमा

दक्षिणी सीमा में भी स्थिरता आई। सन् 1632 में अहमदनगर पर कब्ज़ा कर निज़ाम शाही शासक को बंदी बना लिया गया। राज्य के शासक वर्ग के अनेक मुसलमान सदस्यों और कुछ मराठों को मुगल सेना में शामिल कर लिया गया।

फिर शाहजहाँ ने बीजापुर और गोलकोंडा के बचे हुए दो राज्यों को मुगल प्रभुसत्ता स्वीकार करने और वार्षिक कर देने का आदेश दिया। गोलकोंडा के शासक ने तुरंत इन माँगों को स्वीकार कर लिया लेकिन बीजापुर को मनवाने के लिए सैन्य शक्ति का प्रयोग करना पड़ा। अतः दोनों राज्यों पर मुगलों ने नियंत्रण कर लिया।

उत्तर-पश्चिम

अपने पहले अन्य मुगल शासकों की भांति शाहजहाँ भी मध्य एशिया में उज़बेकों से अपनी तैमूरी भूमि वापस हासिल करना चाहता था, लेकिन क्षेत्र में उसके असफल अभियान से मुगलों को लाखों रुपए और हजारों सैनिकों का नुकसान हुआ। मुगल सेनाएँ किसी भी समय उज़बेक राजधानी या समरकंद पहुँचने में सफल नहीं हुईं।

उत्तर-पश्चिम में शाहजहाँ को एक अन्य जोश था, फारसियों से कंधार वापिस लेना। यहाँ उसे शुरुआत में कुछ सफलता हासिल हुई। सन् 1638 में कंधार के फारसी सेनाध्यक्ष, शाह सफी ने सफाविद शासक से मतभेदों के कारण मुगलों को किला सौंप दिया और उनके साथ शामिल हो गया। शाहजहाँ ने आभार मानते हुए उसे कश्मीर का शासक नियुक्त किया। कंधार एक दशक तक मुगलों के साथ रहा। इसके बाद सफाविद शासक ने मध्य एशिया में मुगलों की असफलता का फायदा उठाते हुए कंधार पर हमला कर मुगलों को आत्मसमर्पण करने के लिए विवश कर दिया।

आने वाले कुछ वर्षों में कंधार को पुनः हासिल करने के लिए तीन प्रमुख अभियान असफल रहे। कंधार पर सफाविदों का ही कब्ज़ा रहा जब तक कि अठारहवीं शताब्दी में इस वंश का पतन नहीं आरंभ हो गया।

शाहजहाँ के शासनकाल में हुए व्यापक सैन्य अभियानों के बावजूद उसने शस्त्रागार संबंधी प्रमुख विषयों को नज़र अंदाज़ किया। उसने बेहतर हथियार विकसित करने में अधिक रुचि नहीं दिखाई और अस्त्र-शस्त्र विज्ञान पर कोई निवेश नहीं किया।

राजनीतिक परिवेश

शाहजहाँ का शासनकाल उसके दादा के उदार शासनकाल से स्पष्ट रूप से भिन्न था। सन् 1633 में अपने शासन काल के छठे वर्ष में शाहजहाँ ने मंदिरों की मरम्मत पर रोक लगा दी। जब उसे यह

जानकारी दी गई कि हिंदू बनारस में अनेक अधूरे मंदिरों का निर्माण पूरा करना चाहते हैं, तो सम्राट ने शहर में नए पूजा स्थलों को नष्ट करने का आदेश दिया। सैन्य अभियानों के दौरान, प्रमुख हिंदू मंदिरों का भी यही हाल हुआ।

सम्राट ने वार्षिक रूप से मक्का जाने वाले तीर्थयात्रियों को राज्य द्वारा खर्चा देना जारी रखा। प्रति वर्ष राज्य के खर्च पर दो जहाज़ भरकर मक्का जाते थे। इसके अलावा गरीबों को बेचे जाने के लिए सामान से भरे हुए नौ जहाज़ मक्का और मदीना जाते। इसके बदले मक्का का शरीफ़ मुगल दरबार में सद्भावस्वरूप एक शिष्टमंडल भेजता। दूतावास के प्रमुख शेख अब्दुस समद को मुगल सेना का प्रमुख न्यायाधीश नियुक्त किया गया।

राजकीय नज़रिए में बदलाव विस्तृत मुस्लिम समुदाय के अंदर नवजाग्रत शक्तियों के बढ़ते प्रभाव का सूचक था। अनेक सूफी पंथ, विशेषकर नक्शबंदी, कुरान और शरियत के और कड़ाई से पालन का प्रचार करने लगे।

सिख

अपने पिता की भाँति, शाहजहाँ का भी सिखों से टकराव हुआ। कुछ ऐसे कारण जो स्पष्ट नहीं हैं उसने मुगल सेनाओं को रामदासपुर (आधुनिक अमृतसर) में गुरु हरगोबिंद के मुख्यालय पर कब्ज़ा करने का आदेश दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि शाहजहाँ गुरु के सतत् बढ़ते अनुयायियों की संख्या से दुःखी था जिससे मुगलों और सिखों में निरंतर भिड़ंत होती थी।

सिखों ने मुगलों के हमले को नाकाम कर दिया लेकिन गुरु ने अपना निवास स्थनांतरित कर जालंधर दोआब में करतारपुर को बनाया। वहाँ भी मुगल सेनाओं ने उन्हें परेशान किया, पर जीत उन्हीं की हुई। अब उन्हें इस बात का निश्चय हो गया था कि मुगल उनके लिए अनावश्यक परेशानियाँ उत्पन्न करेंगे इसलिए वे लाहौर छोड़कर मुगलों के एक राजपूत जागीरदार के क्षेत्र, नलगढ़ में बस गए जहाँ उन्होंने एक नया नगर कीरतपुर बसाया। सन् 1644 में अपनी मृत्यु तक उन्होंने वहीं रहकर सैन्य अभ्यास जारी रखा और घोड़ों, घुड़सवारों और तोड़ेदार बंदूक धारियों का एक दस्ता तैयार किया। उनके बड़ी संख्या में अनुयायी बने। उनके भक्तों में खत्री और जाटों का एक बड़ा वर्ग था। गुरु हरगोबिंद ने चौदह वर्ष के एक युवा बालक, हर राय को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया।

शाहजहाँ के शासनकाल में सामंत वर्ग

मध्य बारहवीं शताब्दी के इतिहासकार, अब्दुल हमीद लाहौरी ने शाहजहाँ के शासनकाल के दौरान वर्ष 1647-48 मे 500 ज़ाट और अधिक के मनसबदारों की एक सूची तैयार की है। जिन विद्वानों ने इस सूची का अध्ययन किया है, वे शाहजहाँ के शासनकाल में शासक समुदाय के बारे में रोचक निष्कर्षों पर पहुँचे हैं।

जो सर्वप्रमुख विशेषता दिखाई पड़ती है वह है अकबर के समय से मनसबदारों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि। अकबर के शासनकाल में 283 से यह संख्या चार दशक से भी कम समय में बढ़कर 445 हो गई। पहले की तरह, मनसबदार साम्राज्य के सबसे शक्तिशाली और विशेषाधिकार प्राप्त समूह थे जिसमें से सबसे उच्च्व स्तर पर जो मनसबदार थे, वे राज्य के संसाधनों का सबसे बड़ा हिस्सा ले लेते।

सम्राट शाहजहाँ के चार बेटों (दारा, शाह शुजा, औरंगज़ेब और मुराद) को मिलाकर निर्धारित राजकीय

राजस्व का आठ प्रतिशत से भी अधिक दिया गया। इस प्रकार साम्राज्य के निर्धारित वार्षिक राजस्व का 37.6 प्रतिशत केवल 73 शाही अधिकारियों के बीच वितरित कर दिया जाता था। कुल मिलाकर 445 मनसबदारों को राजस्व का तीन-चौथाई हिस्सा मिलता था।

इतनी संपत्ति पर नियंत्रण के बावजूद मनसबदारों ने आर्थिक विकास की दिशा में कुछ विशेष कदम नहीं उठाए। मुगल भारत में बड़े शहरों की संख्या में वृद्धि अर्थव्यवस्था की स्थिति का असली परिचायक नहीं था। जैसा कि विद्वान बताते हैं यह विकास परजीवी था। शहरों का विकास बड़ी संख्या में टुकड़ियों और सामंतों के परिचरों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने और मुगल शासक वर्ग की इच्छानुसार आराम की वस्तुएँ बनाने के लिए हुआ। हालांकि मुगल शासक वर्ग ने अपनी संपत्ति का एक हिस्सा सूदखोरी और वाणिज्य में लगा दिया, लेकिन वे अक्सर अपने पद का गलत इस्तेमाल व्यापार और यहाँ तक कि कारीगरों की मेहनत पर अपना एकाधिकार कायम करने के लिए करते थे।

धार्मिक और जातीय दृष्टि से अधिकांश मनसबदार (लगभग चार बटा पाँच) मुसलमान थे। जिसमें से हिंदू एक बटा पाँच थे। हिंदू सामंतों में से भी अधिकांश राजपूत थे।

पहले की तरह सामंतों में ईरानी और तुरानियों का वर्चस्व था, जो कि मिलाकर उच्च राजकीय अधिकारियों का लगभग पचास प्रतिशत था। अकबर के शासनकाल में लगभग नगण्य अफगान प्रतिनिधित्व की तुलना में अब वे मुगल अधिकारियों का पांच प्रतिशत से कुछ अधिक हिस्सा थे। भारतीय मुसलमानों का प्रतिशत पंद्रह से कुछ कम था।

दक्कनी मुसलमान जिन्होंने पहले दक्षिणी सुल्तानों के लिए कार्य किया था, मुगल सामंतों में एक नया दल था। इनमें से आठ का सूची में उल्लेख है। इनमें दस मराठा भी शामिल किए गए, जो उनके बढ़ते राजनीतिक महत्त्व का सूचक था। अकबर के सामंतों में से कोई भी मराठा नहीं था जबकि जहाँगीर के सामंतों में केवल एक मराठा था।

उत्तराधिकार के लिए युद्ध

शाहजहाँ के शासनकाल के अंतिम वर्षों में मुगल साम्राज्य में शाही परिवार में अनेक मतभेद पैदा हुए। इनमें प्रमुख नायक थे दो शाही राजकुमार, उत्तराधिकारी दारा शिकोह, और सम्राट का तीसरा बेटा, औरंगज़ेब।

जहाँ व्यक्तिगत आकांक्षाएँ निश्चित रूप से राजकुमारों के कदम निर्धारित करती थीं, लेकिन अविवादित रूप से वे शाही राज्यव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण पक्षों पर भिन्न विचार रखते थे। जिस कारण स्थिति और बिगड़ी और वास्तव में औरंगज़ेब की स्थिति को और मज़बूत किया वह था, इस्लामिक समुदाय में पुनर्जागरणवादी आंदोलनों का बढ़ता महत्त्व।

ऐसे वातावरण में दारा द्वारा अनुसरण करने से इनकार ने उसके सहधर्मियों को उसके प्रति क्रोधित किया। दारा द्वारा *मरमुज़* (रहस्यमयी, प्रतीकात्मक) की कुरान में की गई संकल्पना को समझने का प्रयास उसे हिंदू धर्मग्रंथों विशेषकर उपनिषदों के अध्ययन की ओर ले गई। दारा का विचार था कि, कुरान में यह स्पष्ट लिखा है कि ईश्वर ने प्रत्येक भूमि को आध्यात्मिक नेतृत्व प्रदान किया है इसलिए भारत में भी ईश्वर द्वारा उद्घाटित धर्मग्रंथ होंगे। उसका मानना था कि वेद और उपनिषद् उस श्रेणी में आते हैं। उसका मानना था कि कुरान में दी गई मरमुज़ की संकल्पना उपनिषदों का अध्ययन कर समझी जा सकती है।

ब्राह्मण विद्वानों के सहयोग से उसने बावन उपनिषदों का फारसी में अनुवाद किया और यह संकलन *सर्र-ए-अकबर* के नाम से जाना गया। इस कार्य ने उसे कायल कर दिया कि उपनिषद् भगवान के एकत्व की मूल अभिव्यक्ति है, लेकिन उसके समुदाय में उसके विचारों को स्वीकार करने वाले कम लोग थे।

इसके विपरीत, औरंगज़ेब कट्टर सुन्नी था। शाही राजकुमारों में वह सबसे कुशल सेनापति और चालाक प्रशासक था। सन् 1652 में शाहजहाँ ने उसे दक्कन का प्रशासन और राजस्व दुरुस्त करने के लिए वहाँ भेजा। एक योग्य राजस्व अधिकारी, मुर्शीद कुली ख़ाँ की सहायता से औरंगज़ेब दक्कन से संसाधनों की निकासी करने में काफी हद तक सफल रहा।

शाहजहाँ के साथ सन् 1636 की संधि के बाद बीजापुर और गोलकोंडा ने अपनी उत्तरी सीमाओं को मुगल हमले से सुरक्षित कर लिया था। इससे वे दक्षिण की ओर, विशेषकर कर्नाटक में विस्तार करने में सफल हुए, जिस पर तेलुगु और तमिल नायकों का नियंत्रण था। इसके फलस्वरूप बीजापुर ने पलार और कावेरी नदियों के बीच की भूमि पर कब्ज़ा किया और यह क्षेत्र बीजापुर कर्नाटक के नाम से जाना गया।

गोलकोंडा के कर्नाटक में अभियान का नेतृत्व मीर जुमला ने किया जो कि एक अत्यंत सफल पहली पीढ़ी का ईरानी अप्रवासी था। उसने हीरे की खुदाई में रियायत और राज्य के समुद्री व्यापार और वाणिज्य में हिस्सा प्राप्त किया। इसके अलावा वह मुख्यमंत्री के पद तक भी पहुँच गया। उसने कर्नाटक में गोलकोंडा के लिए एक विस्तृत क्षेत्र जीता। यह नया क्षेत्र गोलकोंडा की राजधानी हैदराबाद के नाम पर हैदराबाद कर्नाटक कहलाया।

जब गोलकोंडा के कुतुब शाह शासक से मतभेदों ने मीर जुमला को आत्मरक्षा में भागने पर विवश कर दिया तो औरंगज़ेब ने भगौड़े अधिकारी से तुरन्त संपर्क स्थापित किया। मीर जुमला के साथ मिलकर गोलकोंडा पर हमला बोलने की एक संयुक्त योजना को शाहजहाँ ने नामंज़ूर कर दिया और बीजापुर पर प्रस्तावित हमले से भी पीछे हट गया।

इसी समय शाहजहाँ बीमार पड़ गया और उसके बेटों के बीच उत्तराधिकार की लड़ाई छिड़ गई। चारों प्रतिद्वंद्वी सगे भाई, मुमताज़ महल के बेटे थे, और वे शक्तिशाली पदों पर थे। दरबार में नियुक्त दारा को उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया था, शुजा बंगाल, बिहार और उड़ीसा का शासक था, औरंगज़ेब दक्कन का प्रभारी और मुराद बक्श गुजरात और मुल्तान का शासक था।

सम्राट की बीमारी की खबर सुनकर शुजा ने स्वयं को सम्राट घोषित कर आगरा की ओर कूच कर दिया। लेकिन दारा के बेटे, सुलेमान शिकोह और राजा जय सिंह के नेतृत्व में एक सेना ने उसे वाराणसी के निकट पराजित कर दिया। मुराद बक्श ने स्वयं को गुजरात में शासक घोषित कर दिया। अब औरंगज़ेब ने मुराद और शुजा से गुप्त रूप से संपर्क किया और साम्राज्य के कुछ हिस्सों का स्वतंत्र शासक मानने का वायदा किया। औरंगज़ेब और मुराद की संयुक्त सेनाओं ने मारवाड़ के शासक, जसवंत सिंह के नेतृत्व वाली शाहजहाँ की सेना को पराजित कर दिया।

वहीं दारा ने औरंगज़ेब का सामना करने के लिए 50,000 सैनिकों की एक टुकड़ी बनाई। दोनों सेनाओं का आगरा के निकट सामूगढ़ में आमना-सामना हुआ, जहाँ औरंगज़ेब की जीत

हुई। दारा दिल्ली की ओर भागा और अगले कुछ महीनों तक लाहौर, गुजरात, कच्छ के सीस्तान और बोलन दर्रे में भटकता रहा। अंततः उसे पकड़कर औरंगज़ेब के समक्ष प्रस्तुत किया गया जिसने तब तक अपने पिता और भूतपूर्व सहयोगी मुराद को कैद कर स्वयं को सम्राट घोषित कर दिया था। औरंगज़ेब ने यह कहकर दारा को मारने का हुक्म दिया कि वह इस्लाम से विमुख हो रहा था। दूसरी ओर अपने भाई से युद्ध में हारकर भागते हुए शुजा मारा गया। अब औरंगज़ेब ने दूसरी बार स्वयं को सम्राट घोषित किया।

अभ्यास

1. जहाँगीर के सिख गुरु अर्जुन से कैसे संबंध थे?
2. जहाँगीर के शासनकाल में शेख अहमद सरहिंदी घटना का उल्लेख कीजिए।
3. शाहजहाँ की विजय का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।
4. शाहजहाँ के शासनकाल में सामंत वर्ग का स्वरूप कैसा था?
5. शाहजहाँ के बेटों के बीच उत्तराधिकार की लड़ाई में क्या मसले शामिल थे?
6. जहाँगीर के निम्नलिखित के विरुद्ध अभियानों पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए :

(क) मेवाड़

(ख) असम

(ग) कांगड़ा

अध्याय 16
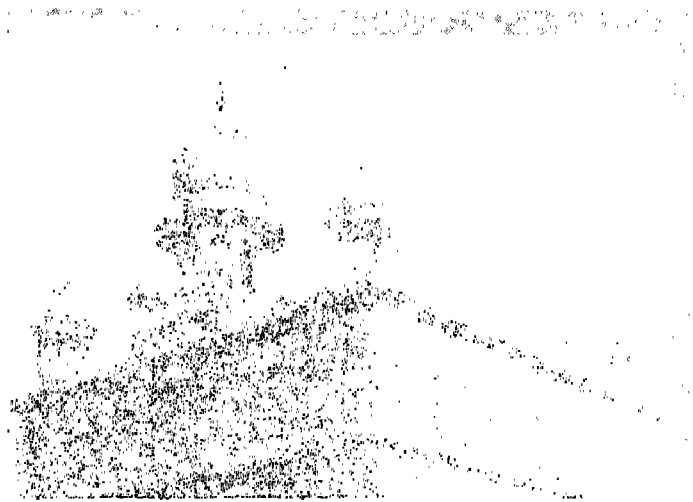
पराकाष्ठा और विघटन
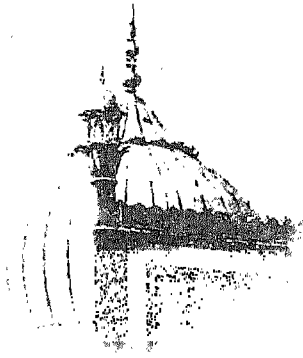
औरंगज़ेब (1658-1707)

अपने शासनकाल के लगभग तीन शताब्दियों के बाद भी औरंगज़ेब गहन अकादमिक समीक्षा का विषय बना हुआ है। एक अनुभवी प्रशासक और योग्य सेनाध्यक्ष के रूप में उसकी महत्त्वाकांक्षा पूरे भारत को मुगल शासन के अधीन लाने की थी। इसके साथ ही सम्राट अपनी अतिनैतिक जीवनशैली तथा धार्मिक कट्टरपन के लिए जाना जाता था, जिसके कारण उसने ऐसे कदम उठाए जो साम्राज्य की स्थिरता के लिए हानिकारक सिद्ध हुए।

विजय

उपमहाद्वीप के अलग-अलग हिस्सों के मुगल साम्राज्य में अधूरे विलय के कारण उन प्रदेशों पर विजय प्राप्त करने के लिए बार-बार अभियान पर जाना आवश्यक हो गया था। औरंगज़ेब का शासनकाल इसमें अपवाद नहीं था।

उत्तराधिकार की लड़ाई के समय राजनीतिक अनिश्चितता का लाभ उठाते हुए पूर्वोत्तर के कई राजाओं ने शाही नियंत्रण के विरुद्ध बगावत कर दी। कूच बिहार के प्रेम नारायण मुगल हुकूमत से बाहर हो गये थे तथा अहोम राजा जयध्वज ने कामरूप के मुगल ज़िले पर आक्रमण कर दिया था।

गद्दी पर बैठने के बाद औरंगज़ेब ने क्षेत्र में व्यवस्था स्थापित करने के लिए मीर जुमला को नियुक्त किया। मीर जुमला ने एक वर्ष के भीतर बंगाल, बिहार और उड़ीसा में मुगलों की सत्ता फिर से कायम कर दी और उसके बाद "असम के काफ़िरों के विरुद्ध जेहाद" करने की ठान ली। सुगठित सेना से सज्जित उसने कूच बिहार को प्रस्थान किया तथा राज्य पर कब्ज़ा कर इसका नाम बदलकर आलमगीर नगर रख दिया। राजा के बेटे ने इस्लाम स्वीकार कर लिया और मुगलों के साथ हो गया।

इसके बाद मुगल सेना ने कामरूप की ओर कूच किया और अहोम प्रतिरोध के बावजूद गुवाहाटी और गढ़गांव पर फिर से कब्ज़ा कर लिया, लेकिन अहोमों ने अपने आक्रमण जारी रखे और मुगल सेना को रसद पहुँचाने के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया जिसके कारण उन्हें काफी कष्ट झेलना पड़ा। अंततः सन् 1663 में अहोम समझौता करने को राज़ी हो गए जिसके अंतर्गत अहोम राजा मुगलों के अधीन हो गया तथा अपनी एक बेटी का मुगलों में विवाह करने तथा काफी बड़ा राज्यक्षेत्र सौंपने को तैयार हो गया। लेकिन 1663 ई. में मीर जुमला की मृत्यु के बाद भावी मुगल शासक ब्रह्मपुत्र घाटी पर मुगल पकड़ को मज़बूत नहीं रख पाए और गुवाहाटी तथा कामरूप उनके हाथ से निकल गए।

बंगाल की खाड़ी के पूर्वी तट पर अराकान के माघों के विरुद्ध मुगल ज़्यादा सफल रहे। नए मुगल शासक ने माघ मुख्यालय पर कब्ज़ा कर उसका नाम बदलकर इस्लामाबाद रख दिया। छोटा नागपुर और मध्य भारत की पहाड़ियों के बीच स्थित पलामू एक

अन्य ऐसा क्षेत्र था, जहाँ अक्सर समस्या रहती थी। इस क्षेत्र में चेरो जनजाति रहती थी। मुगलों की नाराज़गी के बावजूद चेरो ने अपने क्षेत्र का अत्यधिक विस्तार किया। सन् 1661 में औरंगज़ेब ने उनके राज्य पर कब्ज़े का आदेश दिया।

लेकिन उत्तर-पूर्वी सीमा में अशांति बनी रही। सन् 1682 में नए अहोम राजा, गदाधर सिंह ने मानस नदी पर इताखुली के युद्ध में मुगलों को पीछे हटने पर विवश कर दिया। अंग्रेज़ों द्वारा इस क्षेत्र पर कब्ज़ा किए जाने तक अहोम और मुगलों के बीच यह सीमा बनी रही। शासक और बाद में उसके बेटे रुद्र सिंह (1696-1714), जो शाक्त हिंदू धर्म में विश्वास करते थे, ने अपनी सारी शक्ति क्षेत्र पर अपना नियंत्रण और सुदृढ़ करने में लगा दी। अहोम राज्य इतना शक्तिशाली बन गया कि औरंगज़ेब के शासनकाल के अंत के करीब उसने बंगाल पर आक्रमण करने तक का विचार किया।

पूर्व में औरंगज़ेब के अंतिम कार्यों में से एक था सन् 1701 में इस्लाम कबूल करने वाले एक व्यक्ति की बंगाल में मुख्य वित्त अधिकारी के रूप में नियुक्ति। करतलब खान ने जल्दी ही प्रांत में शाही राजस्व एकत्रण पुन: स्थापित किया और दक्षिण में अभियानों को जारी रखने के लिए सम्राट को अतिरिक्त आय वहाँ भेजने लगा।

मुगलों के लिए उत्तर-पश्चिम विशेष ध्यान देने योग्य क्षेत्र था, जहाँ अशांति बनी हुई थी। यहाँ के निवासी दो मुख्य दलों में विभाजित थे— पठान और ताजिक। पठानों की अनेक जनजातियाँ थीं; जैसे— युसुफ़ज़ई, अफरीदी और वज़ीर। सन् 1667 में युसुफ़ज़ई ने मुगलों के खिलाफ़ विद्रोह कर दिया। इसके बाद 1672 में अफरीदी ने विद्रोह किया। यह विद्रोह इतना गंभीर हो गया कि औरंगज़ेब को स्वयं इस क्षेत्र पर चढ़ाई करनी पड़ी।

राजनीतिक विचारधारा

औरंगज़ेब के सिंहासन ग्रहण करते ही यह स्पष्ट हो गया कि वह अपने शासन को कट्टर इस्लामी स्वरूप देना चाहता था। सन् 1659 में अपनी दूसरी ताजपोशी के बाद उसने पारसी नववर्ष नौरोज़ मनाने पर रोक लगा दी; सूर्य कालदर्श के स्थान पर चंद्र *हिजरी* लागू कर दिया; शाही संगीतज्ञों और चित्रकारों को बरखास्त कर दिया; शराब पीने और गांजे के इस्तेमाल पर रोक लगा दी; और उलेमाओं में से *मुहतसिब* (दरबारी नियंत्रक) नियुक्त किए जिनका कार्य था, शरियत के आदेशों को लागू करना।

सन् 1659 से 1670 के बीच में सम्राट ने अनेक आदेश जारी किए, जिनसे इस्लामीकरण की नीति को और बल मिला। अकबर के झरोखा दर्शन और सम्राट को उसके जन्मदिन के दिन तौलने के समारोह को बंद कर दिया गया। अकबर ने हिंदुओं से अपने तीर्थों की यात्रा पर जाने पर लिया जाने वाला जो तीर्थ कर खत्म कर दिया था, उसे फिर से लागू कर दिया गया। सन् 1665 में सम्राट ने मुसलमानों को 2.5 प्रतिशत आंतरिक सीमा शुल्क देने का आदेश दिया जबकि हिंदुओं के लिए यह 5 प्रतिशत था।

मुंतखाब-उल-लुबाब में मुगल इतिहासकार ख़फ़ी खाँ लिखता है कि प्रांतीय शासकों और राजस्व अधिकारियों को यह आदेश दिया गया कि वे हिंदू अधिकारियों को बरखास्त कर उनके स्थान पर मुसलमानों को नियुक्त करें। सम्राट विशेषकर पेशकार और करोड़ी के पद मुसलमानों के लिए आरक्षित करने का इच्छुक था। यह अलग बात है कि इस आदेश को पूरी तरह लागू नहीं किया गया।

अपने व्यक्तिगत जीवन में भी सम्राट का रुझान धर्म की ओर बढ़ रहा था। मध्यकालीन इतिहासकार सकी मुस्तैद खाँ शासक की धर्मनिष्ठा का इस प्रकार

विवरण देता है : "(औरंगजेब) बहुत सारा धन भेजता था, कुछ वर्षों तक वार्षिक रूप से, कहीं दो या तीन वर्षों में एक बार, पवित्र शहरों में रहने वाले संतों को, और इन पवित्र स्थानों पर बड़ी संख्या में आदमियों को उसके प्रतिनिधि के तौर पर स्थायी रूप से दैनिक खर्च पर रखा गया था, जो सम्राट द्वारा खुद अपने हाथ से लिखी गई और मदीना को भेंट में दी गई कुरान की दो प्रतियों को पढ़ते हुए काबा के इर्द-गिर्द घूमकर खलीफा की मज़ार पर सिर झुकाते थे।"

मुस्लिम समाज को इस्लामिक पद्धति पर और कड़ाई से पुनर्गठित करने के लिए औरंगज़ेब ने इस्लामिक कानून पर फैसलों को संकलित करने का आदेश दिया। उसने आशा की कि इससे मुसलमान जनता को इस्लाम के अनुसार सही तरह से कार्य करने की जानकारी मिलेगी। *फ़तवा-ए-आलमगीरी* नामक इस संकलन को इस्लामिक समाज में कट्टर मुसलमानों के लिए उचित व्यवहार की निर्देश पुस्तिका के रूप में बड़ी संख्या में लोगों ने स्वीकार किया।

सन् 1669 में सम्राट ने हाल में निर्मित या मरम्मत किए गए मंदिरों को नष्ट करने का आदेश दिया। मथुरा और बनारस के मंदिरों को विशेष रूप से निशाना बनाया गया। मथुरा में तीस लाख रुपए से अधिक की लागत से बीर सिंह बुंदेला द्वारा बनाए गये प्रसिद्ध केशव राय मंदिर को नष्ट कर दिया गया। जनवरी, 1670 की एक मुगल पत्रिका में लिखा है, "रमजान के महीने में धार्मिक अभिरुचि रखने वाले सम्राट ने मथुरा में डेरा केशव राय नामक हिंदू मंदिर को नष्ट कर देने का आदेश दिया। उसके अधिकारियों ने कुछ ही समय में यह कार्य कर लिया, उसके स्थान पर भारी लागत से एक भव्य मस्जिद का निर्माण किया गया।" भारी आभूषणों से सुसज्जित मूर्तियों को आगरा में जहाँआरा की मस्जिद की सीढ़ियों के तले दबा दिया गया।

इसी प्रकार, बनारस में विश्वनाथ मंदिर को नष्ट कर उसके स्थान पर एक मस्जिद बना दी गई। फ्रांसीसी यात्री टैवर्नियर का मंदिर को नष्ट किए जाने से पहले का विवरण एक अनोखा ऐतिहासिक दस्तावेज़ है। उसने मंदिर के साथ औरंगज़ेब के दरबार में एक प्रमुख राजपूत मिर्ज़ा राजा जय सिंह, द्वारा स्थापित एक महाविद्यालय में युवा राजकुमारों के ब्राह्मण शिक्षकों से शिक्षा प्राप्त करने का मर्मस्पर्शी विवरण दिया है।

सन् 1670 में वृंदावन के निकट गोबिंद मंदिर से भगवान कृष्ण की गोबिंददेवजी के रूप में और राधा की मूर्ति को उनके स्थान से हटाकर सुरक्षा की दृष्टि से कछवाहों की पैतृक भूमि ले जाया गया।

इसी प्रकार उड़ीसा में भी अनेक मंदिरों को नष्ट कर दिया गया। सन् 1679-80 में जोधपुर और उदयपुर में अनेक पुराने मंदिरों को अपवित्र किया गया। कहा जाता है कि औरंगज़ेब के शासनकाल में मेवाड़ के राणा मथुरा में भगवान कृष्ण की एक मूर्ति को सुरक्षा के डर से अपनी राजधानी उदयपुर के निकट नाथद्वार ले गए, जहाँ आज तक इसकी पूजा की जाती है।

सकी मुस्तैद खाँ ने औरंगज़ेब के 1669 के एक आदेश का उल्लेख किया है, जिसमें उसने गैर-मुसलमानों के सभी विद्यालयों और मंदिरों को मिट्टी में मिलाने का आदेश दिया था। सरकार सरहिंद में बुरिया शहर की एक विशेष घटना का उल्लेख किया गया है, जहाँ स्थानीय अधिकारियों ने शाही आदेश पर एक सिख गुरुद्वारे को मिट्टी में मिलाकर उसके स्थान पर एक मस्जिद बना दी। इसके

बदले में सिखों ने मस्जिद को नष्ट कर दिया, जो शाही आदेशों के फलस्वरूप होने वाले सामाजिक तनाव का परिचायक है।

औरंगज़ेब ने सम्राट बनने से पहले ही हिंदू धार्मिक वास्तुकला के प्रति असहिष्णुता का प्रदर्शन किया था। गुजरात के शासक के रूप में उसने ऐसी कई इमारतों को नष्ट करने का आदेश दिया। कई मामलों में मूर्तियाँ नष्ट कर दी गईं और मंदिरों को तोड़ने के स्थान पर बंद कर दिया गया। सम्राट बनने पर औरंगज़ेब को पता चला कि उन मंदिरों में नई मूर्तियाँ स्थापित कर फिर से पूजा शुरू कर दी गई है। तब उसने उन मंदिरों को नष्ट करने का फिर से आदेश दिया। उनमें से एक सोमनाथ का मंदिर था।

विद्वानों ने शाही नीतियों के विरुद्ध सूरत के हिंदू व्यापारियों के विरोध का एक रोचक अध्ययन प्रस्तुत किया है। शहर के काज़ी ने उनमें से अनेक को इस्लाम कबूल करने पर बाध्य किया और अन्य को भी इस बात की धमकी दी, यदि उन्होंने उसे पैसा देने से इनकार किया। उसने सूरत के हिंदू मंदिरों को अपवित्र होने से बचाने के लिए भी रकम की माँग की। विरोध में, आठ हज़ार बनिए सूरत छोड़कर भरूच चले गए और अपने पत्नी और बच्चों को परिवारजनों की देख-रेख में छोड़ गए। उनके जाने से शहर के वाणिज्य पर विपरीत प्रभाव पड़ा। विरोधकर्ता आठ महीने बाद लौटे जब सम्राट ने उन्हें "उनकी सुरक्षा और अधिक धार्मिक स्वतंत्रता का आश्वासन दिया।"

सन् 1679 में सम्राट का सबसे विवादास्पद फैसला आया, हिंदुओं पर भेदभावपूर्ण जज़िया कर पुनः लागू कर दिया गया। खफी खाँ ने इस पर दिल्ली के नागरिकों के विरोध का जीवंत वर्णन किया है। वह लिखता है," हिंदू अपनी मांगों की सुनवाई के लिए इतनी बड़ी संख्या में किले से लेकर जामा मस्जिद तक एकत्र हुए कि लोगों का रास्ता बंद हो गया। उर्दू बाज़ार खेमे (सेना बाज़ार) के साहूकार, कपड़ा व्यापारी और दुकानदार और शहर के सभी कारीगर अपना काम छोड़कर सम्राट के रास्ते में एकत्रित हो गए.....(औरंगज़ेब) जो हाथी पर सवार था, मस्जिद नहीं पहुँच पाया। प्रत्येक पल उन अभागे लोगों की संख्या में वृद्धि होती गई। फिर उसने आदेश दिया कि विशाल हाथी उनकी विपरीत दिशा में चलें। उनमें से कुछ हाथी और घोड़ों के पाँव तले रौंद दिए गए। कुछ और दिन वे इसी प्रकार एकत्रित होकर *जज़िया* को हटाने की माँग करते रहे। अंतत: वे *जज़िया* देने के लिए राजी हो गए।" विद्वानों ने हिसाब लगाया है कि *जज़िया* जो एक अकुशल कारीगर की एक महीने की तनख्वाह के बराबर था "अत्यंत अधोगामी था" और "गरीबों पर इसकी सबसे करारी मार पड़ी।"

औरंगज़ेब के विवादास्पद कदमों पर टिप्पणी करते हुए सकी मुस्तैद खाँ कहता है "हिंदुओं की इतनी नीच स्थिति और किसी काल में नहीं हुई थी" कुछ आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार सम्राट का उद्देश्य हिंदुओं का धर्म परिवर्तन करना था। इस्लाम के अनुयायियों की संख्या में वृद्धि करने के लिए प्रलोभन दिए गए और स्थानीय प्रशासकों, विशेषकर परगना प्रमुखों और कानूनगो पर अपना धर्म त्यागने के लिए दबाब डाला गया। सम्राट का मानना था कि राज्य के सभी कर्मचारियों को उसके धर्म का भी अनुसरण करना चाहिए। पैतृक स्थानीय कार्यालयों में उत्तराधिकार के अनेक मामलों में सम्राट का फैसला उसके पक्ष में होता था, जिसने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया हो।

साम्राज्य के बढ़ते हुए इस्लामिक स्वरूप ने उलेमा की स्थिति को और शक्तिशाली बना दिया।

समुदाय के ज़रूरतमंदों के बीच बाँटने के लिए, उन्हें बड़ी मात्रा में रकम दी गई। काज़ी और मौलवियों की नियुक्ति पर भी उनका नियंत्रण था। मुख्य न्यायाधीश और धार्मिक अनुदान का निरीक्षक सदैव सम्राट के साथ रहते थे जो मस्जिदों की मरम्मत और रखरखाव पर खुलकर खर्च करते थे।

सन् 1672 में औरंगज़ेब ने हिंदुओं के नियंत्रण वाले सभी कर-मुक्त भूमि अनुदानों के पुनर्ग्रहण करने का आदेश दिया। सम्राट के अन्य पक्षपाती निर्देशों की भांति इसे भी पूरी तरह लागू नहीं किया गया। लेकिन उलेमा इससे बहुत प्रसन्न हुए क्योंकि वे आपस में ऐसी भूमि के अधिक आवंटन की आशा कर रहे थे।

विद्वानों ने पंजाब में इस आदेश को तुरंत लागू करने और पठानकोट के निकट जखबार के जोगियों से *मदद-ए-माश* अनुदान के पुनर्ग्रहण के बारे में लिखा है। ऐसे माहौल में हिंदुओं की चिंता ब्राह्मणों और मंदिरों को शाही अनुदान विशेषकर इलाहाबाद, बनारस और गुवाहटी में शिव मंदिरों को भूमि अनुदान से नहीं मिटाई जा सकती।

औरंगज़ेब की वचनबद्धता कट्टर सुन्नी इस्लाम के प्रति थी। उसने मुहर्रम के जुलूसों पर पाबंदी लगा दी जिसमें शिया विशाल संख्या में भाग लेते थे। उसने संतों के मकबरों में महिलाओं के जाने पर रोक लगा दी और मकबरों के ऊपर छत बनाना भी निषिद्ध कर दिया क्योंकि यह शरियत के नियम कि मकबरों की छत खुली रहे, के विरुद्ध था।

औरंगज़ेब द्वारा धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप का साम्राज्य में चारों ओर विरोध हुआ।

जाट, सतनामी, सिखों और राजपूतों का विद्रोह

औरंगज़ेब का शासनकाल जनता के विशाल हिस्सों के विरोध के लिए जाना जाता है। जाट, सतनामी, मराठा, सिख और राजपूतों ने मुगलों की प्रभुसत्ता को चुनौती दी और उसके सम्मान को गहरी क्षति पहुँचाई।

कुछ आधुनिक इतिहासकारों की राय है कि इन विद्रोहों के पीछे आर्थिक कारण प्रमुख हैं। उनका कहना है कि तथाकथित हिंदू विरोधी आंदोलन वास्तव में किसानों और ज़मींदारों के आर्थिक कारणों से एकजुट होने के परिचायक थे, लेकिन यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि इनमें से अनेक समुदायों का मुगल शासन के विरोध का लंबा इतिहास है और उनका मोहभंग औरंगज़ेब से ही नहीं आरंभ हुआ।

जाट

यमुना के दोनों ओर के क्षेत्र में औरंगज़ेब के समय से पहले ही अशांति थी और शाही सेनाओं को इन्हें नियंत्रण करने के लिए बार-बार भेजना पड़ता था। औरंगज़ेब के शासनकाल में यह क्षेत्र जाट विद्रोह का केंद्र बन गया।

सन् 1669 में मथुरा के जाटों ने तिलपत के ज़मींदार, गोकुल के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। यह विद्रोह तेज़ी से इस क्षेत्र के किसानों में फैल गया और औरंगज़ेब को इसे दबाने के लिए स्वयं जाना पड़ा। भीषण संघर्ष के बाद गोकुल को कैद कर मार डाला गया।

इस आंदोलन की बागडोर अब आगरा के निकट सिनसिनी के एक जाट ज़मींदार राजाराम ने संभाली। उसके नेतृत्व में जाटों ने दक्कन तक के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया। उन्होंने सिकंदरा पर भी कब्ज़ा कर लिया, जहाँ निक्कोलाओ मनूची के अनुसार अकबर के मकबरे में तोड़फोड़ कर उन्होंने "शाही परिवार के प्रति घोरतम अपमान" किया। हालांकि

राजाराम अंततः मुगल सेना के हाथों मारा गया लेकिन जाटों का विरोध कम नहीं हुआ।

औरंगज़ेब ने जाटों के गढ़ सिनसिनी में मुगलों का एक दस्ता भेजा। चार महीने लंबी घेराबंदी में पंद्रह सौ जाट और हज़ार से भी अधिक शाही टुकड़ियों ने अपनी जान से हाथ धो दिया। सन् 1691 तक जाटों के आंदोलन पर काबू पा लिया गया था। औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद राजाराम का भतीजा, चूड़ामल जाट एक महत्त्वपूर्ण शक्ति बनकर उभरा। अंततः भरतपुर में अपनी राजधानी के साथ एक स्वतंत्र जाट राज्य की स्थापना हुई, जो प्रसिद्ध सूरजमल के नेतृत्व में अपने चरम पर पहुँचा। हालांकि आंदोलन का नेतृत्व जाट ज़मीदारों के हाथों में था, लेकिन जाट किसानों ने उनके साथ गहरी एकता का प्रदर्शन करते हुए मिलकर संघर्ष किया।

सतनामी

सतनामी संप्रदाय की स्थापना 1657 में नारनौल (ज़िला महेंद्रगढ़, हरियाणा) में हुई और एक सामयिक इतिहासकार के अनुसार इसमें चार से पाँच हज़ार गृहस्थ थे। सतनामी भिक्षुकों जैसे कपड़े पहनते थे और अधिकांशतः कृषि और व्यापार से अपनी आजीविका चलाते थे।

सतनामी विद्रोह 1672 में आरंभ हुआ जब एक मुगल सैनिक ने एक सतनामी की हत्या कर दी। सामयिक इतिहासकार, सकी मुस्तैद खाँ ने आश्चर्य व्यक्त किया कि "सुनारों, बढ़ई, मेहतरों, चर्मकारों और अन्य....कारीगर जातियों के दिमाग में क्या आया कि उनके दिमाग पर घमंड के बादल छा गए? विद्रोह के घमंड ने उनके दिमाग में ऐसी जगह बना ली कि उनका सिर उनके कंधों पर बहुत भारी लगने लगा।"

हालांकि सतनामियों के पास शस्त्रों की भारी कमी थी लेकिन सकी खाँ के शब्दों में महाभारत के युद्ध के दृश्यों को फिर से जीवंत करते हुए गिरने से पहले उन्होंने मुगल सेनाओं को अनेक बार पराजित किया।

सिख

सिख एक अन्य दल थे जिनकी मुगलों के साथ भिड़ंत हुई। जैसा कि पहले बताया गया है, सिख पंथ की स्थापना पंद्रहवीं शताब्दी में गुरु नानक ने की। यह सम्राट जहाँगीर के हाथों गुरु अर्जुन के शहीद होने तक एक शांतिपूर्ण आध्यात्मिक आंदोलन रहा और गुरु हरगोबिंद ने इसे विरोधी प्रकृति का बनाया।

दारा की पंजाब यात्राओं के दौरान गुरु हर राय के उसे समर्थन की अफवाहों से नाराज़ औरंगज़ेब ने उन्हें दरबार बुलाया। गुरु ने अपने बड़े बेटे राम राय को भेजा। आगे जाकर गुरु ने अपने छोटे बेटे हर कृष्ण को उत्तराधिकारी नियुक्त किया, जो उस समय एक छोटा बच्चा ही था। उसे भी सम्राट ने दिल्ली बुलाया जहाँ वह गाँव रायसीना में राजा जय सिंह के घर में रहा, जहाँ आज वर्तमान गुरुद्वारा बंगला साहिब है। सन् 1664 में चेचक से मृत्यु होने से पहले गुरु हर कृष्ण ने तेग बहादुर को सिखों का अगला गुरु मनोनीत किया।

नए गुरु ने बिलासपुर के राजा के राज्यक्षेत्र में मखोवाल में अपना अड्डा जमाया, किंतु 1665 में गंगा के मैदानी इलाकों में सिख संगतों से संपर्क स्थापित करने के लिए वे मखोवाल से चले गए। शाही आदेश पर उन्हें कैद किया गया लेकिन राजा जय सिंह के बेटे, राम सिंह के कहने पर उन्हें रिहा कर दिया गया। दिल्ली के बाद, गुरु आगरा, प्रयाग

बनारस, सासाराम, पटना और मुंगेर गए। मुंगेर से वे ढाका गए जहाँ 1668 में राम सिंह भी आ गए। गुरु उनके साथ उनके असम अभियान पर गए और 1671 में मखोवाल लौट गए। उनका बेटा गोबिंद राय (भावी गुरु गोबिंद सिंह), जो अंतिम गुरु बना, का जन्म पटना में 1666 हुआ।

सन् 1675 में कश्मीरी ब्राह्मणों के एक शिष्टमंडल ने गुरु से मिलकर कश्मीर घाटी में अपने उत्पीड़न के बारे में बताया। बहुत गहरी सोच के बाद गुरु ने उनके विश्वास को कायम रखने के लिए अपना बलिदान देने का निश्चय किया। उन्हें गिरफ्तार कर दिल्ली लाया गया जहाँ उनसे चमत्कार दिखाने को कहा गया, जिसके लिए गुरु ने इनकार कर दिया। तब उनसे इस्लाम धर्म स्वीकार करने को कहा गया। उनके इनकार करने पर 11 नवंबर 1675 में चाँदनी चौक में उनका सिर काट दिया गया। सीस गंज गुरुद्वारा वह स्थान है जहाँ वे शहीद हुए। संगत के क्रोध के प्रतीक के रूप में आगरा में एक सिख़ ने जामा मस्जिद से लौटते हुए मुगल सम्राट के ऊपर दो ईंटें फेंकी।

गुरु तेग बहादुर के उत्तराधिकारी उनके युवा पुत्र, गुरु गोबिंद सिंह बने। एक ओजस्वी व्यक्तित्व, गुरु संस्कृत और फारसी में दक्ष तथा काव्य और युद्धकला दोनों में पारंगत थे। *दशम ग्रंथ* में उनकी अनेक रचनाएँ हैं। वे *निर्मल* की स्थापना के लिए भी जाने जाते हैं, जो कि अपने ज्ञान और पवित्रता के लिए सम्मानित सिख शिक्षकों को दी जाने वाली एक पदवी है। गुरु ने पाँच सिखों को बनारस भेजा जहाँ वे सात वर्ष तक रहे और भारतीय शास्त्रीय धर्म विज्ञान और दर्शनशास्त्र में
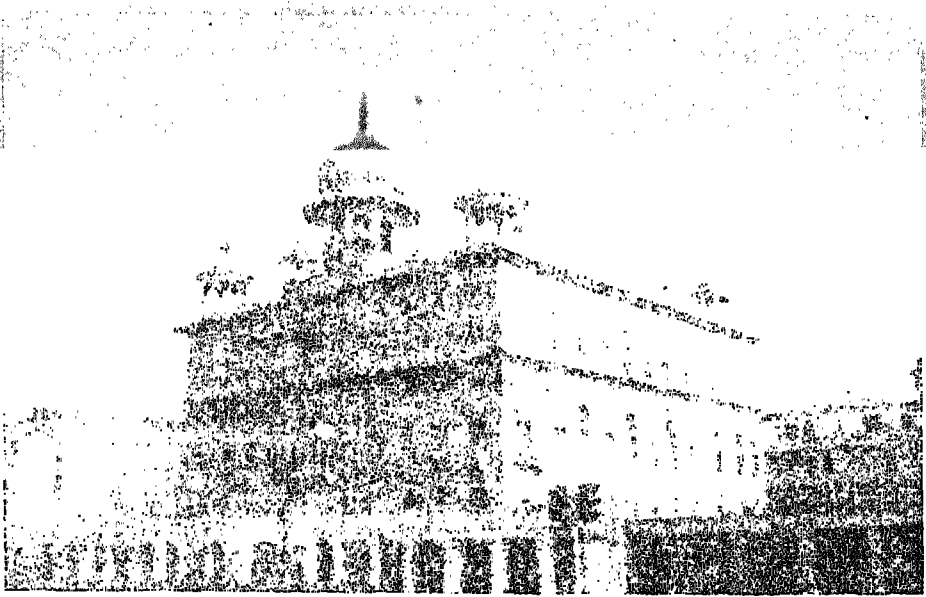
सीस गंज गुरुद्वारा

पारंगत होकर लौटे। आनंदपुर छोड़कर निर्मल के हरिद्वार, इलाहाबाद और बनारस में भी शिक्षा केंद्रों की स्थापना हुई जो वहाँ आज अस्तित्व में हैं।

बिलासपुर का शासक, भीम चंद जिसने पहले सिख गुरुओं को आतिथ्य प्रदान किया था, ने अब पहाड़ों के मुगल फौजदारों के खिलाफ पहाड़ी प्रमुखों की ओर से गोबिंद सिंह की सहायता माँगी। पहाड़ी प्रमुखों ने मुगलों को कर देने से इनकार कर दिया था और इसलिए उनके खिलाफ एक शाही सेना भेजी गई। पहाड़ी प्रमुखों और गुरु की संयुक्त शक्ति ने मुगल टुकड़ियों को पराजित कर दिया लेकिन तुरंत बाद ही भीम चंद ने मुगल प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली और कर देने के लिए राज़ी हो गया।

वहीं औरंगज़ेब ने दक्कन से निर्देश भेजे कि आनंदपुर में कोई भीड़ जमा न होने दी जाए। आनंदपुर पर हमले के लिए भेजी गई मुगल फौज को पीछे हटना पड़ा; एक दूसरी सेना गुरु और पहाड़ी प्रमुखों की संयुक्त सेना के हाथों पराजित हुई; तीसरी सेना भी असफल रही। इस पूरे अशांति काल के दौरान गुरु गोबिंद सिंह ने पूरे देश में फैली सिख संगतों से संपर्क बनाए रखा।

गुरु ने 1684 ई. में *चंडी दि वार* की रचना की, जिसमें मार्कण्डेय पुराण में उल्लिखित देवताओं और दानवों के बीच हुए पौराणिक संघर्ष को अभिव्यक्त किया गया है। उनकी रचना से यह भी ज्ञात होता है कि वे बुराई पर अच्छाई की विजय के लिए युद्ध का सहारा लेने वाले इन दैवीय अवतारों; जैसे - राम और कृष्ण की जनश्रुति से प्रभावित थे।

सन् 1699 में बैसाखी के दिन गुरु गोबिंद सिंह ने खालसा नामक एक नवीन व्यवस्था स्थापित की और एक नया दीक्षा संस्कार आरंभ किया। खालसा का प्रण लेने वाले सिखों को पाँच 'क' का पालन करना होता था। ये थे - केश, कृपाण, कच्छा, कंघी और कड़ा। इसके अलावा उन्हें अपने नाम के साथ "सिंह" लगाना होता था। दो धारी तलवार (खंडे दा पाहुल) की दीक्षा खालसा का गुरु के साथ सीधा संपर्क स्थापित करती थी। एक रोचक बात है कि गुरु द्वारा नियुक्त पहले पाँच खालसा (पंज पियारे) में से प्रत्येक द्वारका, बीदर, पुरी, लाहौर और हस्तिनापुर से था। गुरु गोबिंद सिंह के बाद कोई भी गुरु नहीं बना और समुदाय का नेतृत्व खालसा पंथ और ग्रंथ साहब करने लगे।

को सरहिंद के एक सम्प्रभु मुगल फौजदार को सजा देने में अनिच्छुक देखते हुए उन्होंने अपने शिष्य बंदा सिंह बहादुर को निर्देश दिया कि वह मुगलों के विरुद्ध विद्रोह शुरू कर दे। इसके तुरंत बाद एक अफगान, जिसका वजीर खाँ या एक शाही अधिकारी से संबंध था, ने गुरु गोबिंद सिंह को घातक रूप से घायल कर दिया। बंदा ने तेज़ी से एक बड़ी सेना एकत्रित की और हथियारों और घोड़ों की कमी के बावजूद पंजाब में मुगलों के गढ़ों पर हमला कर दिया।

बंदा ने मुगल क्षेत्र के विशाल हिस्सों पर कब्ज़ा कर लिया और सतलुज और यमुना के बीच के क्षेत्र में अपने आदमियों को फौजदार, करदार और दीवान नियुक्त किया। स्वयं को एक संप्रभु घोषित कर उसने गुरु नानक और गुरु गोबिंद सिंह के नाम पर सिक्के बनवाए और अपनी ही मुहर पर आदेश (हुक्मनामा) जारी किए। लेकिन सन् 1715 के अंत में बंदा को उसके सात सौ सहयोगियों सहित गुरदासपुर के निकट गुरदासनंगल के किले से ले जाया गया और 1716 में उनकी हत्या करने से पहले उन्हें दिल्ली की सड़कों पर घुमाया गया।

अन्य विद्रोह

इस समय उत्तर भारत में अनेक अन्य विद्रोह हुए। इनमें प्रमुख हैं- मांगचा और मिओ जनजाति के विद्रोह; लाखी जंगल के वात्तु, डोगर और गूजर; गुजरात के चुनवाल कोल और उत्साही छत्रसाल के नेतृत्व में ओरछा के बुंदेला जो शिवाजी से मिलने दक्कन तक गया।

छत्रसाल ने धमोनी और सिरोंज में शाही सेना पर हमला किया और मुगल साम्राज्य के पडोसी क्षेत्रों से चौथ एकत्रित करना शुरू कर दिया। जल्दी ही उसने कालिंजर और धमोनी पर कब्ज़ा कर लिया और मालवा के विशाल हिस्सों को नष्ट कर दिया। वह इतना सफल रहा कि 1705 में औरंगज़ेब को उससे शांति स्थापित कर उसे मनसबदार नियुक्त करना पड़ा। लेकिन सम्राट की मृत्यु के बाद उसने स्वयं को स्वतंत्र शासक नियुक्त कर लिया।

राजपूत विद्रोह

सन् 1679-80 का राजपूत विद्रोह सम्राट का अपनी गैर-मुसलमान प्रजा के प्रति रुख को दर्शाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार औरंगज़ेब ने 1666 से ही शासक वर्ग में राजपूतों की पदोन्नति पर रोक लगानी शुरू कर दी थी।

दिसंबर 1678 में मारवाड़ का राजा, जसवंत सिंह राठौर जिसने उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगज़ेब के विरुद्ध संघर्ष किया था, अफ़गानिस्तान में मारा गया। उसका कोई पुरुष उत्तराधिकारी नहीं था और अपने पीछे वह दो गर्भवती पत्नियाँ छोड़ गया। सम्राट ने तुरंत संपूर्ण मारवाड़ को राज्य भूमि (खालिसा) में परिवर्तित करने का आदेश दिया और राज्य पर कब्ज़ा करने के लिए शाही टुकड़ियाँ भेजीं। मुगल टुकड़ियों ने शहर पर कब्ज़ा करते हुए मंदिर और मूर्तियों को नष्ट किया, जबकि राठौर इसका कड़ा विरोध करते रहे।

वहीं दोनों रानियों ने दो पुत्रों को जन्म दिया। ज्येष्ठ लड़के अजीत सिंह को राठौर राजा स्वीकार करवाना चाहते थे। सम्राट ने उसके वयस्क होने पर उसे राजा की पदवी इस शर्त पर देने का प्रस्ताव रखा कि शाही घराने में उसकी मुसलमान के रूप में परवरिश हो। अपना प्रस्ताव अस्वीकार किए जाने पर औरंगज़ेब ने रानियों और अजीत सिंह को गिरफ्तार करने के लिए अपनी टुकड़ियाँ भेजीं। दुर्गा दास राठौर की सहायता से वे वेश बदलकर भाग गए

और जोधपुर पहुँचे। उनके पीछे शाही सेना लगी हुई थी। अब औरंगज़ेब ने इंदर सिंह को जोधपुर का राजा घोषित कर दिया।

सम्राट ने अपने बेटे, राजकुमार अकबर के नेतृत्व में भी एक मुगल सेना भेजी। राठौरों ने कड़ा मुकाबला किया और उन्हें मेवाड़ के राणा राज सिंह से भी सहायता प्राप्त हुई लेकिन अंततः राजपूत शाही सेना से हार गए, जिसने तब इस क्षेत्र के अनेक मंदिरों को नष्ट कर दिया। राजपूत पहाड़ियों पर चले गए और उन्होंने छापामार मुगलों के विरुद्ध छद्म युद्ध जारी रखा।

घिरे हुए राजपूतों ने राजकुमार अकबर को अपने पिता के विरुद्ध युद्ध करने के लिए उकसाया, जिसकी राजपूत और हिंदू विरोधी नीतियाँ उनके अनुसार साम्राज्य का विनाश कर रही थीं। राजकुमार उनसे सहमत था लेकिन सम्राट की चाल ने मुगल सेनाओं पर उनके संयुक्त हमले को विफल कर दिया। राजपूतों ने कई महीनों तक अकबर को शरण दी और अतंतः उसे मराठा शासक, संभाजी के दरबार भेज दिया।

इसी बीच 1680 ई. में मेवाड़ के राजा राज सिंह की मृत्यु हो गई। औरंगज़ेब ने उसके बेटे जय सिंह से शांति स्थापित करने का प्रयास किया ताकि वह आराम से दक्कन जा सके। मारवाड़ के शासक से समझौता होने में मुगलों को बीस वर्ष लगे। अधिकांश राठौर राजपूत इस दौरान शाही सेवा में शामिल नहीं हुए।

अपनी विश्वदर्शी *भारत एक खोज* में जवाहरलाल नेहरू ने औरंगज़ेब और उसकी नीतियों से साम्राज्य को पहुँची हानि का सजीव वर्णन किया है। वह लिखते हैं "वर्तमान को समझने से दूर औरंगज़ेब निकट भूत को भी समझने में असफल रहा; वह पिछड़ा हुआ था और अपनी सारी क्षमता और उत्साह के रहते हुए उसने अपने पूर्वाधिकारियों के कार्यों को व्यर्थ कर देने का प्रयास किया। कट्टर और भीषण रूप से अतिनैतिक उसे कला और साहित्य से कोई प्रेम नहीं था। हिंदुओं पर पुराने घृणित जज़िया व्यक्ति कर को लगाकर और उनके अनेक मंदिरों को नष्ट कर उसने अपनी अधिकांश प्रजा को नाराज कर दिया। उसने स्वाभिमानी राजपूतों, जो मुगल साम्राज्य का सहारा और स्तंभ थे, को नाराज़ कर दिया। उत्तर में उसने सिखों को नाराज़ कर दिया, जो एक शांतिप्रिय समुदाय से दमन और अत्याचार के कारण सैन्य समुदाय बन गए। भारत के पश्चिमी तट के निकट उसने प्राचीन राष्ट्रकूटों के वंशज, युद्धप्रिय मराठों को उस वक्त क्रोधित किया जब उनके बीच एक प्रतापी राजा का उदय हुआ।"

औरंगज़ेब के शासन काल में सामंत वर्ग

औरंगज़ेब के शासन काल में मनसबदारों के एक आधुनिक अध्ययन से पता चलता है कि मुगल शासक वर्ग का दायरा कितना संकुचित था। वंश को सबसे अधिक महत्त्व दिया जाता था और खानज़ादों या मनसबदारों के बेटों और वंशजों की संख्या सामंतों में आधी से कुछ कम थी।

इस काल की एक प्रमुख विशेषता भूतपूर्व शासन कालों की तुलना में विदेशियों की संख्या में गिरावट थी। अकबर के शासन काल में सत्तर प्रतिशत से उनकी संख्या औरंगज़ेब के शासन काल में घटकर लगभग चालीस प्रतिशत रह गई। यह मुख्यतः उज़बेक और सफाविद राज्यों से भारत आने वाले लोगों की संख्या में कमी के कारण हुआ। एक अन्य कारण, औरंगज़ेब का दक्कनी राज्यों से उलझना

था जिसके कारण उस क्षेत्र से विशाल संख्या में मनसबदारों को नियुक्त करना पड़ा।

मुगल सामंतों के हिंदू घटक में अधिकांश राजपूत और मराठा थे। औरंगज़ेब के शासन काल के पूर्वार्द्ध में उनका प्रतिशत समूचे का 21.6 प्रतिशत और उत्तरार्द्ध में 31.6 प्रतिशत था। इस वृद्धि का कारण मराठों का अंतर्वाह था जिसके कारण मनसबदारी व्यवस्था में उनकी संख्या राजपूतों से अधिक हो गई।

औरंगज़ेब का राजपूतों से संबंध अत्यंत विवादास्पद है लेकिन इस बारे में आम सहमति है कि उसका उनके प्रति बर्ताव अकबर जैसा नहीं था। कहा गया है कि मुगल सामंत वर्ग में जानबूझकर राजपूतों का प्रतिनिधित्व कम करने के स्थान पर औरंगज़ेब ने उनकी पदोन्नतियों पर रोक लगाई।

मुगल शासक वर्ग का एक अन्य घटक, दक्कनी, बीजापुर और गोलकोंडा के भूतपूर्व सामंत थे। इस दल ने शाही दस्तावेज़ों में मराठों को शामिल नहीं किया। औरंगज़ेब के शासन काल के पूर्वार्द्ध में दक्कनियों की मुगल सामंत वर्ग में संख्या कम थी लेकिन जब सम्राट ने दूसरे चरण में दक्कन में अपनी आक्रमणशील नीति की शुरुआत की तो उनके भाग्य में वृद्धि हुई। दक्कनियों के बड़ी संख्या में प्रवेश ने सामंत वर्ग के स्वरूप को बदल दिया और साम्राज्य के पतन का कारण बना।

मुगलों द्वारा मराठों पर निश्चित रूप से विजय प्राप्त करने में असफलता के कारण सम्राट को उनका मुकाबला करने के लिए नई युद्धनीति बनानी पड़ी। उनसे लड़ते हुए औरंगज़ेब ने मराठा प्रमुखों को जो मुगलों का साथ देना चाहते थे, मनसबदारी व्यवस्था में स्थान दिया। लेकिन यह नीति सफल नहीं हुई क्योंकि उनका स्थान अन्य मराठा प्रमुखों ने ले लिया और संघर्ष जारी रखा। औरंगज़ेब के शासन काल के दूसरे चरण (1679-1707) में मनसबदारों की संख्या सत्रह प्रतिशत थी जबकि पहले चरण (1658-78) में यह छः प्रतिशत से भी कम थी।

भारतीय मुसलमान, जो शेखज़ादा कहलाते थे औरंगज़ेब के शासन काल में सामंत वर्ग का बारह से तेरह प्रतिशत हिस्सा थे। खत्री और कायस्थ जैसे लिपिक समुदाय भी प्रशासनिक व्यवस्था में शामिल थे।

यूरोपीय राजनीतिक शक्ति का उदय

सम्राट की राजनीतिक समस्याओं ने यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों को मुगलों की प्रभुसत्ता को चुनौती देने और समान शर्तों पर बातचीत करने का साहस दिया। यूरोपीय लोगों ने भारतीय तटों पर अनेक किलेनुमा आवास स्थापित किए, जहाँ से उन्होंने स्थानीय जहाज़ों और यहाँ तक कि मुगल बंदरगाहों की नौ सैनिक नाकेबंदी को धमकी दी।

उदाहरण के लिए, सन् 1689-90 में बंबई के ब्रिटिश गवर्नर ने मुगल सम्राट पर अनधिकृत निजी अंग्रेज़ व्यापारियों को भारत में कार्य करने देने से रोकने के लिए अस्सी भारतीय जहाज़ों को कब्ज़े में करने का आदेश देकर दबाव डाला क्योंकि यह कंपनी के आर्थिक हित में नहीं था। इस बर्ताव से क्रुद्ध होकर औरंगज़ेब ने सभी ब्रिटिश व्यापार को रोकने और उनके व्यापारिक शिष्टमंडलों को कब्ज़े में करने का आदेश दिया। बंगाल में अंग्रेज़ आढ़ती हुगली के रास्ते भागकर उस स्थान पर पहुँचे जो बाद में कलकत्ता के नाम से जाना गया। सम्राट ने अपने एक मित्र, सीदी को बंबई में अंग्रेजों के स्थानों पर हमला करने का आदेश दिया। इन प्रतिकारात्मक कार्यवाहियों ने अंग्रेजों को वापस जाने और क्षतिपूर्ति देने को विवश किया।

आने वाले दशकों में अंग्रेजों के नियंत्रण में बंबई की वाणिज्यिक स्थिति इतनी बढ़ी कि उसने सूरत को पशिचम भारत के प्रमुखतम बंदरगाह के रूप में पीछे छोड़ दिया। दक्षिण-पूर्वी तट पर यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों के विदेश अंत:क्षेत्रों का विकास हुआ। हॉलैंडवासियों ने पुलिकट के बंदरगाह पर नियंत्रण किया। जिसकी उन्होंने फोर्ट गेलड्रिया सहित रक्षा की, जबकि अंग्रेज़ों ने फोर्ट सेंट जॉर्ज की मोर्चाबंदी कर खुद को मद्रास में स्थापित कर लिया। फ्रांसीसी लोगों ने पांडिचेरी के व्यापारिक केंद्र पर कब्ज़ा किया जिसकी रक्षा एक सैन्य रक्षक सेना कर रही थी।

सत्रहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में *गंज-ए-सवाई* घटना को लेकर मुगलों और अंग्रेज़ी ईस्ट इंडिया कंपनी में तनाव अपने चरम पर पहुँच गया। *गंज-ए-सवाई* सूरत के व्यापारिक बेड़े में सबसे बड़ा जहाज़ था, जो प्रतिवर्ष अनेक प्रभावशाली व्यक्तियों को मक्का ले जाने के अलावा क्षेत्र में व्यापार के लिए भारतीय वस्तुएँ भी ले जाता था। लेकिन 1695 में डाकुओं ने जहाज़ पर चढ़कर यात्रियों पर घोर अत्याचार किए और सभी बहुमूल्य वस्तुएँ लूट लीं। मुगलों ने इसके और हिंद महासागर में समुद्री लूट के अन्य मामलों के लिए अंग्रेज़ कंपनी को उत्तरदायी ठहराया। ब्रिटिश और हॉलैंड की कंपनियों ने इस समस्या के अंत का आश्वासन दिया लेकिन स्थिति को सुधारने के लिए कोई कदम नहीं उठाए।

औरंगज़ेब के उत्तराधिकारी भी व्यापारिक कंपनियों को नियंत्रित नहीं कर पाए, जिनका महत्त्व बढ़ता रहा और इतना बढ़ गया कि इनमें से एक उपमहाद्वीप की एक प्रमुख शक्ति बन गई।

अभ्यास

1. औरंगज़ेब द्वारा अपने शासन को कट्टर इस्लामिक साँचे में ढालने के लिए क्या कदम उठाए गए?
2. मुगल साम्राज्य के विरुद्ध जाटों और सतनामियों के विद्रोह का कारण क्या केवल आर्थिक था।
3. औरंगज़ेब के समय में सिख आंदोलन का स्वरूप कैसा था?
4. औरंगज़ेब के शासन काल में राजपूत विद्रोह के क्या कारण थे?
5. औरंगज़ेब के शासन काल में सामंत वर्ग में राजपूत प्रतिनिधित्व में किस प्रकार परिवर्तन किया गया?
6. सही मिलान कीजिए :

(क) फतवा-ए-आलमगीरी	औरंगज़ेब के शासन का इतिहास था
(ख) मुंतखाब-उल-लुबाब	ने बुंदेलों के विद्रोह का नेतृत्व किया
(ग) छत्रसाल	इस्लामिक न्यायशास्त्र का सार संग्रह था

अध्याय 17

दक्कन में अव्यवस्था

दक्कन में अव्यवस्था
दक्कन में अव्यवस्था
दक्कन में अव्यवस्था
दक्कन में अव्यवस्था
दक्कन में अव्यवस्था
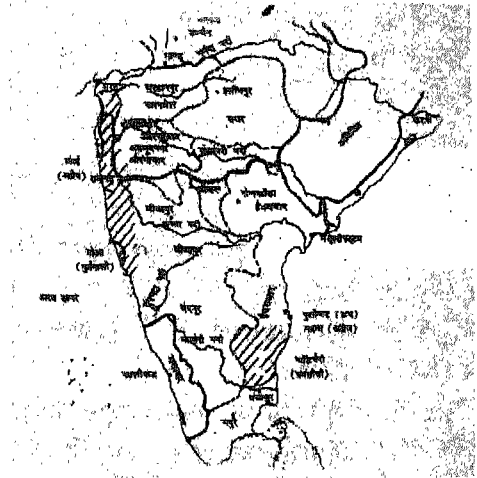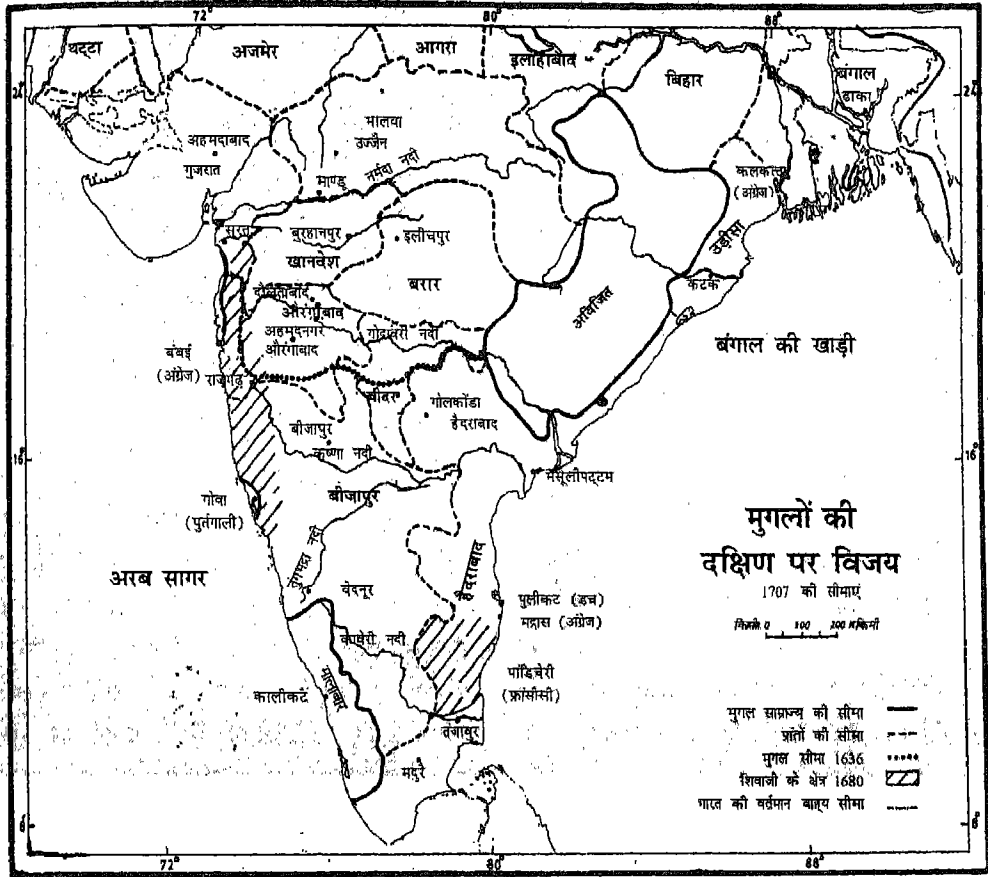
भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र में भारत का जनप्रदेश उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
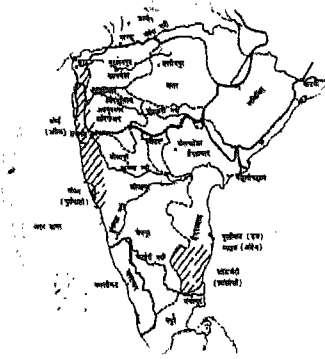
सत्रहवीं शताब्दी में अनेक ऐसे सशक्त समुदायों का उदय हुआ जिन्होंने मुगल साम्राज्य को आगे बढ़ने से प्रभावी ढंग से रोका, जिसके कारण अंततः मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। मराठा, सिख और जाट जैसे समूहों ने बलशाली मुगलों को ललकारा और उनके क्षेत्र को छिन्न-भिन्न कर दिया। मराठों का आविर्भाव विशेष रूप से शानदार था। वे अचानक पूरे परिदृश्य पर छा गए, जिसके कारण दक्कन की अन्य शक्तियों तथा मुगलों को बरबस उनकी ओर ध्यान देना पड़ गया। वे इतने शक्तिशाली हो गए कि उन्होंने स्वयं मुगल बादशाह को दक्कन में ही पराजित कर दिया।

मराठों का उदय

मराठे अनेक कृषक तथा उनसे संबद्ध जातियों का सम्मिश्रण थे। सेना में सेवा करने की परंपरा के कारण, जिसके एवज़ में उन्हें ज़मीन दी गई थी, वे अन्य कृषक समुदायों से अलग थे । अनेक मराठों ने बहमनी राज्य तथा उनके उत्तरवर्ती राज्यों की सेना में नौकरी की थी।

इब्राहिम आदिल शाह जैसे बीजापुर के शासक दक्कनी (भारतीय मुसलमान) और अफ़की (अरब तथा मध्य एशिया से नए-नए आए प्रवासी) लोगों से संतुलन बनाए रखने के लिए मराठों को ज़्यादा पसंद करते थे। बीजापुर में मुसलमानों का एक छोटा विशिष्ट वर्ग था क्योंकि पश्चिमी तट में पुर्तगालियों के अधिकार के कारण अरब और ईरान से प्रव्रजन बंद हो गया था और मुगलों ने उत्तर से आने में रोक लगा दी थी। इसीलिए बीजापुर ने स्थानीय हिंदुओं को बड़ी संख्या में सेना तथा प्रशासन में भर्ती किया। मराठों के अतिरिक्त उन्होंने लिंगायतों, देशस्थ ब्राह्मणों तथा प्रभुओं को नौकरी में रखा।

यद्यपि मराठों के कई प्रभावशाली भूमिसंपन्न परिवार थे किंतु उत्तर में राजपूतों के समान उनका राज्यों पर शासन नहीं था। मराठों के राजनीतिक विकास में इस कमी को पूरा करने में शाहजी भोंसले तथा उनके पुत्र शिवाजी ने प्रयत्न किया।

1630 के आरंभिक वर्षों में शाहजी का इतना प्रभाव हो गया था कि वे अहमदनगर में राजा चुनने की कोशिश में लग गए थे। किंतु मुगलों द्वारा उस राज्य को अपने अधिकार में लेने के बाद शाहजी बीजापुर सुल्तान के साथ कर्नाटक के विरुद्ध अभियान में साथ हो गए तथा उन्होंने बेंगलोर के समीप अपना अर्धस्वतंत्र राज्य बनाने का प्रयास किया। शाहजी ने पूना के निकट अपनी जागीर पर भी अपना अधिकार बनाए रखा। एक अलिखित व्यवस्था के अंतर्गत सुल्तान ने पश्चिमी घाट के अधिकतर भाग को मराठा सरदारों के नियंत्रण में रहने दिया क्योंकि वे वहाँ पूरी तरह रचे-बसे थे।

शिवाजी

शिवाजी का लालन-पालन शाहजी की वरिष्ठ पत्नी जीजा बाई तथा उनके शिक्षक एवं अभिभावक दादाजी कोंड-देव द्वारा पूना में हुआ था जहाँ वह बीजापुर दरबार के फ़ारसी सांस्कृतिक प्रभाव से दूर थे। अठारह वर्ष की आयु में उन्होंने अपने पिता की

जागीर का पदभार संभाल लिया और अपने पिता तथा बीजापुर की अवज्ञा करते हुए कई संलग्न दुर्ग अधिकार में ले लिए। इनमें तोरन, चकन और पुरंदर प्रमुख थे। 1656 में शिवाजी को उल्लेखनीय सफलता मिली जब उन्होंने जवली को वहां के मराठा सरदार से छीन लिया जिसके फलस्वरूप वे मराठों में अग्रणी हो गए। इस अधिग्रहण से उनका पहाड़ी भूमि (मावल क्षेत्र) पर अधिकार हो गया और अधिक विस्तार का रास्ता खुल गया।

मुगल गद्दी के लिए उत्तराधिकार की लड़ाई में भाग लेने के लिए औरंगज़ेब के दक्कन से लौटने और अली आदिल शाह द्वितीय के बीजापुर का सुल्तान बनने से दक्षिण के इतिहास में एक नया अध्याय आरंभ हुआ। बीजापुर राज्य पर शिवाजी के लगातार हमले तथा विशेष रूप से उत्तरी कोंकण में अधिकार होने से अली आदिल शाह द्वितीय अपने सेनापति अफ़जल खाँ को 1659 में मराठों के विरुद्ध भेजने के लिए प्रेरित हुआ। शिवाजी के विरुद्ध कूच करने के दौरान बीजापुर की सेना हिंदुओं के पवित्र स्थानों विशेषकर महाराष्ट्र के सबसे महत्त्वपूर्ण केंद्र पंढरपुर को अपवित्र करने के लिए घुमावदार मार्ग से गई। विद्वानों के अनुसार ऐसा व्यवहार बीजापुर की सेना के आचरण के विपरीत था और बीजापुर राज्य में बढ़ती हुई रुढ़िवादिता दर्शाता है।

दोनों पक्षों ने मिलकर समझौता करने का प्रयास किया यद्यपि वे आपस में अविश्वास करते थे। मराठा स्रोतों के अनुसार बीजापुर के सेनापति ने शिवाजी से गले मिलते समय उनका गला घोंटने का प्रयास किया। इससे बदला लेने के लिए शिवाजी ने अफ़ज़ल खाँ की हत्या कर दी और उनकी सेना ने बीजापुर की फ़ौज को खदेड़ दिया। उनके इस निर्भीक व्यवहार से शिवाजी पूरे मराठा क्षेत्र के नायक हो गए।

इस सफलता के बाद शिवाजी ने पन्हाला के दुर्ग एवं दक्षिण कोंकण और कोल्हापुर ज़िले के बड़े भाग पर अधिकार कर लिया। इसके परिणामस्वरूप बीजापुर के सुल्तान ने अपने हारे गए क्षेत्र को दुबारा हासिल करने के लिए स्वयं कूच किया ताकि उसे अन्य घटनाएं वापस लौटने पर मजबूर न कर दें।

नौ सैनिक शक्ति का महत्त्व समझते हुए शिवाजी ने छोटे जहाजों का एक बेड़ा बनाया। इसका उद्देश्य मुख्यतः जंजीरा के सीदियों को चुनौती देना और उन्हें रोकना था। सीदी लोग अबीसीनियाई मुसलमान थे जिनका कई बंदरगाहों पर नियंत्रण था और विशाल नौ सेना थी। किंतु शिवाजी अप्रभावी तोपखाना होने के कारण उन्हें पराजित नहीं कर सके थे। उन्हें पुर्तगालियों के साथ सम्पर्क बनाए रखना भी आवश्यक था क्योंकि उनका बीजापुर तथा मुगलों के साथ युद्ध चल रहा था।

शाइस्ता खाँ

मराठों के बढ़ते प्रभाव ने औरंगज़ेब को उत्तेजित कर दिया और उसने दक्कन के मुगल राज्यपाल शाइस्ता खाँ को शिवाजी के राज्यक्षेत्र पर आक्रमण करने के निर्देश दिए। 1660 में शाइस्ता खाँ ने पूना पर कब्ज़ा कर दिया और चार महीने के बाद मराठों के बहादुरी से मुकाबला करने के बावजूद, चाकन पर कब्ज़ा कर लिया। आक्रमण का दबाव बनाए रखने के बजाय शाइस्ता खाँ ने संभवतः इस कठिन काम को ध्यान में रखकर देहाती इलाकों को उजाड़ने के लिए अपनी अश्वारोही सेना का इस्तेमाल किया।

अप्रैल 1663 में शिवाजी ने एक ऐसा साहसिक काम किया कि वे मराठों में एक अनुश्रुति कहे जाने लगे। उन्होंने चार सौ के लगभग सैनिकों के साथ मुगल राज्यपाल के खेमे पर साहसिक धावा बोल

दिया। शाइस्ता खाँ जख्मी हो गया किंतु मारा नहीं गया यद्यपि उसका पुत्र, उसके परिवार के कई सदस्य और अनुचर मारे गए। मुगल सेना की इस शर्मनाक हार ने औरंगज़ेब को अपने राज्यपाल को वापस बुलाने पर बाध्य कर दिया और उसके स्थान पर अपने बेटे मुअज़्ज़म को नियुक्त करना पड़ा।

सूरत की लूट

इससे प्रोत्साहित होकर 1664 में शिवाजी ने मुगलों के बंदरगाह नगर सूरत पर धावा बोल दिया। इससे मुगलों की प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का पहुँचा और वे इस चुनौती को अनदेखी नहीं कर सकते थे। सूरत मुगल साम्राज्य का मुख्य बंदरगाह था। मुगल बादशाह और उनके सामंत वहाँ से जाने वाले मालवाहक जहाजों में आम तौर से पूँजी निवेश करते थे। मक्का जाने वाले यात्री सूरत से प्रस्थान करते थे। इस अभियान से मराठों को एक करोड़ रुपए से अधिक राशि का माल तथा बहुमूल्य वस्तुएँ प्राप्त हुईं। उन्होंने दक्कन में मुगलों की राजधानी औरंगाबाद के बाहरी क्षेत्र पर भी हमला किया। बीजापुर की सेना उन्हें रोकने में असफल रही और उन्हें बार-बार उनकी मार सहनी पड़ी।

अब औरंगज़ेब को ऐसा प्रतीत हुआ कि इस स्थिति से मज़बूती से निपटना आवश्यक हो गया है। राजा जय सिंह को जो मुगल साम्राज्य के सबसे अनुभवी सेनापतियों में से एक थे, शिवाजी से निपटने तथा बीजापुर को कब्जे में लेने के लिए संपूर्ण सैनिक अधिकार दिए। जय सिंह ने शिवाजी को अकेला करने के लिए पहले उनके प्रमुख सेनापतियों को प्रलोभन दिया। उसने शिवाजी को कमजोर करने के लिए उनकी पूना की जागीर के आसपास के गाँवों को तहस-नहस कर दिया। यूरोप की व्यापारी कंपनियों को भी मराठा नौ सेना की किसीं भी कार्रवाई को रोकने के निर्देश दे दिए गए। अंततः जय सिंह ने 1665 में पुरंदर के दुर्ग की घेराबंदी कर दी जिसके कारण मराठों को झुकना पड़ा।

पुरंदर की संधि

पुरंदर की संधि के अनुसार शिवाजी को पैंतीस में से तेईस किले तथा इनसे संलग्न क्षेत्र छोड़ने पड़े जिनसे चार लाख हुन वार्षिक आमदनी प्राप्त होती थी। उन्हें बाकी बारह दुर्ग तथा राजधानी रायगढ़ अपने पास रखने दिया गया जिनसे कुल मिलाकर वार्षिक आय एक लाख हुन थी। बीजापुर कोंकण क्षेत्र भी उनके अधिकार में रहने दिया गया, जहाँ से चार लाख हुन प्रति वर्ष की आय थी। इसके अतिरिक्त शिवाजी को बीजापुर के विरुद्ध मुगल फौज में शामिल होना था जिसके बदले में उन्हें बीजापुर राज्य के बालाघाट क्षेत्र पर विजय प्राप्त करने की इजाज़त दी गई, जिसका मूल्य पाँच लाख हुन प्रति वर्ष था। इसके बदले में शिवाजी को मुगल बादशाह को चालीस लाख हुन किस्तों में देने थे। शिवाजी को व्यक्तिगत सेवा करने से छूट दे दी गई किंतु उनके नाबालिग पुत्र शंभाजी को 5000 *ज़ात* का मनसब प्रदान किया गया।

शिवाजी और जय सिंह के बीच संधिवार्ता के दौरान *चौथ* और *सरदेशमुखी* के बारे में भी बातचीत हुई। किसी एक क्षेत्र को बरबाद न करने के बदले दी जाने वाली रकम को *चौथ* कहा गया है। शिवाजी यह कर प्रति वर्ष बीजापुर तथा मुगल राजक्षेत्र से वसूल करते थे। सरदेशमुखी का हक का दावा करके शिवाजी स्वयं को सर्वश्रेष्ठ देशमुख प्रस्तुत करना चाहते थे।

मुगल दरबार में जाना

इस बीच बीजापुर के विरुद्ध मुगल-मराठा अभियान से कुछ भी लाभ नहीं मिला, जिसके कारण स्पष्ट नहीं हैं। जय सिंह ने अब शिवाजी को शाही दरबार में जाने के लिए राज़ी कर लिया। तदनुसार, शिवाजी और उनके पुत्र शंभाजी तथा उनके अनुयाइयों का एक छोटा जत्था आगरा के लिए प्रस्थान किया। शिवाजी की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी स्वयं जय सिंह और उनके पुत्र राम सिंह ने ली जो मुगल दरबार में उनका प्रतिनिधित्व करते थे।

मई 1666 में बादशाह के जन्म दिवस पर शिवाजी मुगल दरबार में उपस्थित हुए। किंतु अपने प्रति औरंगज़ेब का बर्ताव उन्हें अपमानजनक लगा और वे नाराज़ होकर दरबार से चले गए। उन्हें मार डालने का आदेश जय सिंह के हस्तक्षेप के कारण रद्द करना पड़ा। किंतु शिवाजी को एक प्रकार से उनके ठहरने के स्थान पर बंदी बना कर रखा गया और राम सिंह के निवास के बाहर शाही पहरेदार तैनात कर दिए गए।

कुछ सप्ताहों के अंदर शिवाजी भाग निकलने में सफल हो गए। पकड़े जाने से बचने के लिए उन्होंने मालवा के पूर्व में जनजाति क्षेत्र से यात्रा की। उनके बगैर बताए निकलने से हैरान, शाही अंगरक्षकों ने सम्राट को सूचना दी कि शिवाजी अचानक गायब हो गए हैं और वे या तो आकाश में उड़ गए हैं या जादू से धरती में समा गए हैं। क्रुद्ध सम्राट ने राम सिंह के गुप्त सहयोग से नाराज़ होकर उसके पिता, जय सिंह को दक्कन से हटा दिया और उसके स्थान पर राजकुमार मुअज़्ज़म को नियुक्त कर दिया। मनूची के अनुसार, औरंगजेब ने सज़ास्वरूप राम सिंह को असम भेज दिया जो एक दलदली भूमि के रूप में अपने खराब मौसम के लिए जाना जाता था।

दक्कन वापस लौटकर शिवाजी ने अगले तीन वर्षों तक मुगलों पर हमला नहीं किया और अपनी शक्ति कोंकण को सुदृढ़ करने में लगा दी। मुगलों से शांति 1669 में भंग हो गई। शिवाजी ने पुरंदर की संधि को हँसी में उड़ा दिया जिसके कारण उसने मुगलों से तेईस गढ़ हारे थे जबकि उसे बीजापुर के विरुद्ध संयुक्त अभियान से कोई अतिरिक्त भूमि या आय नहीं प्राप्त हुई। उसने एक के बाद एक तुरंत ही सिंहगढ़, पुरंदर, रोहिदा, लौहगढ़ और माहुली के गढ़ों पर कब्ज़ा कर लिया।

राज्याभिषेक और योगदान

सन् 1674 में शिवाजी ने स्वयं को एक स्वतंत्र हिंदू राजा के रूप में गंगाभट्ट, जो मूल रूप से महाराष्ट्र का एक अत्यंत सम्मानित ब्राह्मण था और लंबे समय से वाराणसी में रह रहा था, के हाथों राज्याभिषेक करवाया। शिवाजी के राज्याभिषेक को सत्रहवीं शताब्दी की सबसे महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटना माना गया है। इससे न केवल मराठा नेताओं के ऊपर उसका वर्चस्व कायम हुआ बल्कि उसका शासक के रूप में पद ऊंचा हुआ और इसने मुगलों के विरोध में हिंदू राजतंत्र की खुलकर घोषणा की। समारोह से पहले शिवाजी ने कई महीनों तक मंदिरों में पूजा की जिसमें चिपलुण में परसराम मंदिर और प्रतापगढ़ में भवानी मंदिर शामिल हैं।

अपने राज्याभिषेक के बाद शिवाजी ने एक और निर्भीक कदम उठाया। सन् 1677 में उसने सबसे समृद्ध दक्कनी राज्य, गोलकोंडा के साथ मुगल-विरोधी, बीजापुर-विरोधी संधि की। गोलकोंडा पर अबुल हसन कुतुब शाह का शासन था जिसका शासनकाल राज्य के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था। अबुल हसन ने दो तेलुगु ब्राह्मण भाइयों,

मदन्न पंडित को मुख्यमंत्री और अक्कन को सेनापति नियुक्त किया जिससे राज्य की नीति में स्पष्ट बदलाव हुआ।

मुगलों के विरुद्ध शिवाजी के अभियानों के लिए गोलकोंडा कुछ रकम देने और बीजापुर कर्नाटक, जो तब शिवाजी के सौतेले भाई सहित बीजापुर के सुल्तान के सहायकों के अधीन था, भी संघर्ष के लिए तैयार हो गया। शिवाजी ने श्री शैल के शिव मंदिर में दस दिन तक पूजा की। एक साल के अंदर शिवाजी ने जिंजी और वेल्लोर पर कब्ज़ा कर लिया जो बीजापुर कर्नाटक के दो महत्त्वपूर्ण गढ़ थे। लेकिन उसने गोलकोंडा के साथ अपनी जीत बांटने से इनकार कर दिया। बाद में जिंजी ने राजाराम को शरण दी और मुगलों को इस पर कब्ज़ा करने में लगभग नौ वर्ष लगे।

सन् 1679 में शिवाजी ने दूसरी बार मुगल सूरत पर हमला किया। इस बार पैंसठ लाख रुपए मूल्य की वस्तुओं पर कब्ज़ा किया। उसने बरार, खानदेश और बगलान में मुगल इलाकों को तहस-नहस कर दिया। फिर शिवाजी ने कनारा में बीजापुर इलाके पर हमला कर पन्हाला के किले पर कब्ज़ा कर लिया जो बीजापुर क्षेत्र और सतारा में सबसे शक्तिशाली था।

सन् 1680 में 53 वर्ष की उम्र में शिवाजी की मृत्यु हो गई। विद्वानों के अनुसार उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी कि उसने एक राज्य का निर्माण किया और बीजापुर और मुगलों की शक्तिशाली सेना का मुकाबला किया। एक कुशल रणनीतिज्ञ की भांति शिवाजी ने किलों का महत्त्व समझा और मुगलों के विरुद्ध अपनी लड़ाई में उनका सही इस्तेमाल किया। शिवाजी जानता था कि वह अपने विरोधियों का खुलकर युद्ध में सामना नहीं कर सकता था इसलिए उसने छापामार युद्ध की तकनीक अपनाई। उसने शत्रु सेनाओं की आपूर्ति में विघ्न डाला और उनके शिविरों के आसपास के देहात को नष्ट कर उन्हें भोजन और अन्य आवश्यक वस्तुओं से वंचित कर दिया।

शिवाजी ने अपने राज्य में प्रशासन के प्राचीन आदर्शों को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। अपने पत्रों में वह स्वयं को "गायों और ब्राह्मणों का रक्षक" (गोब्रह्मन के प्रतिपालक) और "धर्म की मर्यादा बनाए रखने वाला" (धर्म परायण)के रूप में वर्णन करता है। अपने राज्याभिषेक के समय उसने एक शाही चिह्न बनाया और अपनी विशिष्ट स्थिति के अनुसार छत्रपति जैसी पदवी अपनाई। उसके राज्याभिषेक के दिन से एक नए युग, राज्याभिषेक शक की शुरुआत हुई।

प्राचीन समय के अनेक प्रशासनिक नाम लिए गए और आधिकारिक कार्यों के लिए संस्कृत के नाम प्रयोग किए गए। आठ सदस्यों की समिति (अष्ट प्रधान) में पेशवा (प्रधानमंत्री), अमात्य (राजस्व मंत्री), सचिव (वित्तमंत्री), मंत्री (गृहमंत्री), सेनापति, सुमंत (विदेशी मामलों के मंत्री), न्यायाधीश, और पंडितराव (धर्म मंत्री) शामिल थे। शिवाजी ने दरबार में फारसी के स्थान पर मराठी का भाषा के रूप में प्रयोग किया और एक संस्कृत शब्दकोश, राज-व्यवहार कोश के संकलन का भी आदेश दिया। वह संत रामदास का अभिन्न भक्त था।

प्राप्त दस्तावेज़ बताते हैं कि शिवाजी ने अपने राज्य का चार प्रांतों में विभाजन किया जोकि आगे जाकर चार परगनों में विभक्त किया। उसने अपनी सेना पर विशेष ध्यान दिया जिसमें उसकी मृत्यु के समय 45,000 पग (राज्य पदाति), 60,000 सिलहदार

घुड़सवार, एक लाख पैदल सेना और बड़ी संख्या में घोड़े और हाथी शामिल थे।

कहा जाता है कि शुरू से ही शिवाजी ने अपने लोगों के कल्याण और समृद्धि की परिकल्पना की। अपने शासन के अपेक्षाकृत शांतिपूर्ण अंतिम दशक में उसने महाराष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए कार्य किया। उसने खेती करने वालों को विकास के लिए ऋण दिए और नष्ट हो गए क्षेत्रों में फिर से लोगों को बसाने का प्रयास किया। कर एकत्र करने के लिए उसने कृषि भूमि को नापने का आदेश दिया जो कि देश क्षेत्र न कि कोंकण में किया गया।

शिवाजी के मराठा भूमि संपन्न परिवारों, देशमुख से संबंध गहन अकादमिक चर्चा का कारण रहे हैं। प्राप्त प्रमाण बताते हैं कि शिवाजी के शासनकाल में वे एक प्रमुख शक्ति रहे हालांकि उसने उनके अधिकार क्षेत्र को सीमित करने का प्रयास किया। देशमुखों पर अपनी शक्ति का विस्तार करने के लिए शिवाजी ने राज्य की भूमि का विस्तार कर प्रशासन का विकास किया और अनेक देशस्थ ब्राह्मणों को अपनी नौकरशाही को नियंत्रित करने के लिए नियुक्त किया। अन्य देशमुखों की अपेक्षा उसने अपनी व्यक्तिगत सेना का भी अत्यधिक विस्तार किया। उसकी वसीयत से पता चलता है कि उसके पास अपने व्यक्तिगत तीस हज़ार घोड़े थे। इसके अतिरिक्त उसके पास बंदूकें भी थीं और उसका महाराष्ट्र के महत्त्वपूर्ण किलों पर नियत्रंण भी था।

राजकुमार अकबर का आगमन

शिवाजी का उत्तराधिकारी बना उसका ज्येष्ठ पुत्र, संभाजी। वहीं मराठा दरबार में विद्रोही राजकुमार अकबर के आगमन से दक्कन में घटनाओं ने असंभावित मोड़ लिया। औरंगज़ेब की हिंदू विरोधी नीतियों और दक्कन में उसके समझौता करने की अनिच्छा ने विद्रोही राजकुमार का मुगल शिविर में भी आकर्षण बढ़ा दिया।

दक्षिण में शक्तियों का संबंध भी राजकुमार अकबर के लिए लाभप्रद सिद्ध हुआ। दोनों तेलुगु ब्राह्मण मंत्रियों का गोलकोंडा में वर्चस्व था जबकि मराठों ने स्वयं को औरंगज़ेब के शत्रुओं के रूप में प्रस्तुत किया। नाराज़ राजकुमार, मराठा, गोलकोंडा के बीच समझौते और मारवाड़ और मेवाड़ के विद्रोही राजपूतों के संबंध स्थापित होने की संभावना से औरंगज़ेब परेशान हो गया।

सन् 1681 में राजकुमार अकबर ने स्वयं को सम्राट घोषित कर दिया जबकि संभाजी ने खानदेश में मुगल क्षेत्र पर हमला कर उसे लूट लिया। इस दोहरी चुनौती से घिरे औरंगज़ेब ने स्वयं पूरी केंद्रीय सेना और तीन शाही राजकुमारों और मनसबदारों के साथ दक्षिण की ओर कूच किया।

अगले चार वर्षों में औरंगज़ेब ने मराठा राज्य के विरुद्ध लगातार अभियान भेजे जिसमें से प्रत्येक ने क्षेत्र को नष्ट तो कर दिया लेकिन पहाड़ पर स्थित किलों पर कब्ज़ा नहीं कर पाए। मुगल संभाजी से भी खुलकर युद्ध करने में असफल रहे।

बीजापुर और गोलकोंडा

मराठों पर निर्णायक विजय हासिल करने में असफल होने के कारण औरंगज़ेब ने बीजापुर और गोलकोंडा पर अंतिम कब्ज़ा करने का निर्णय किया। सन् 1685 में अस्सी हज़ार सैनिकों वाली शक्तिशाली मुगल सेना ने बीजापुर को घेर लिया। पंद्रह महीने तक संघर्ष करने के बाद सुल्तान ने समर्पण कर दिया और बीजापुर मुगल साम्राज्य का एक प्रांत बन गया। सुल्तान को कैद में ले लिया गया और उसके प्रमुख सामंत शाही सेवा में शामिल कर लिए गए।

इसके बाद गोलकोंडा की बारी थी। सकी मुस्तैद खाँ ने राज्य के विरुद्ध औरंगज़ेब की नाराज़गी का विस्तृत वर्णन किया है। वह लिखता है: "अबुल हसन....ने....हिंदुओं को राज्य के मामलों का प्रबंध क और प्रशासक बना दिया है....इस्लाम और उसे मानने वालों का कोई सम्मान नहीं है ...जबकि मूर्ति-मंदिर फल-फूल रहे हैं; .... नरक समान संभा (संभाजी, मराठा राजा) ने असली ईश्वर को पूजने वालों को जो विभिन्न प्रकार की चोट पहुंचाई है, उसमें अबुल हसन उसका सहायक और मददगार बना।"

अबुल हसन के गुनाहों में सुन्नी इस्लाम के बदले हिंदू और शिया धर्म के प्रति पक्षपात और मुगल क्षेत्रों पर संभाजी के हमलों के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करना शामिल था। औरंगज़ेब को शांत करने के लिए मुस्लिम सामंतों के एक वर्ग ने मदन्न और अक्कन को मार डाला जिसके बाद गोलकोंडा किले के हिंदू हिस्से में ब्राह्मणों और उनके परिवारों का नरसंहार किया गया। लेकिन इसको भी मुगलों के हमले से बचाया नहीं जा सका।

लगभग पचास हज़ार पैदल सेना, उतनी ही शक्तिशाली घुड़सवार फौज और सौ से भी अधिक विशाल तोपों से लैस औरंगज़ेब ने गोलकोंडा के किले को घेर लिया; यह घेराबंदी आठ महीने से भी अधिक समय तक चली। मुगलों के हाथ राजकोष के 6 करोड़ से भी अधिक रुपए और भारी मात्रा में खज़ाना आया। खफी खाँ के अनुसार गोलकोंडा के किले की घेराबंदी के दौरान औरंगज़ेब ने आदेश दिया कि अबुल हसन ने काफिरों के जिन रीति-रिवाजों की अनदेखी की थी उन्हें त्याग दिया जाए और मंदिरों को नष्ट कर उनके स्थान पर मस्जिदें बना दी जाएँ।

आधुनिक इतिहासकारों ने औरंगज़ेब द्वारा दक्कनी राजनीतिक विशिष्ट वर्ग के प्रति असमान व्यवहार पर विशेष रूप से लिखा है। उनका कहना है कि गोलकोंडा के सामंतों को मुगल साम्राज्य में समान पद दिए गए। बीजापुरी मुसलमान सामंतों को भी मनसबदारी व्यवस्था में शामिल किया गया। लेकिन दोनों राज्यों के ब्राह्मण और तेलुगु अधिकारियों को लगभग पूरी तरह से सेवा से बर्खास्त कर दिया गया।

औरंगज़ेब ने जल्दी ही गोलकोंडा और हैदराबाद कर्नाटक को मुगल साम्राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था में शामिल कर लिया। इस पारगमन को सरल बनाने के लिए मुगल अधिकारियों को प्रमुख विभागों की ज़िम्मेदारी सौंपी गई। हिंदू जनसंख्या पर जज़िया लागू किया गया जिससे दस लाख रुपए की वार्षिक आय हुई। बीजापुर को भी शीघ्र ही मुगल साम्राज्य में मिलाने के लिए उसे मुगल अधिकारियों के नियंत्रण में रखा गया।

मराठों का पुनरागमन

बीजापुर और गोलकोंडा पर कब्ज़ा करने के बाद सम्राट को मराठों के मामले में भी कुछ समय के लिए सफलता मिली। संभाजी द्वारा राजकुमार अकबर को सहायता देने में असफलता ने राजकुमार को फारस में सफाविद दरबार में शरण लेने पर विवश कर दिया। इसके अलावा सन् 1689 में मुगल टुकड़ी ने संभाजी और उसके परामर्शदाता, विवादास्पद ब्राह्मण, कवि कलश को रत्नागिरी के निकट संगमेश्वर में कैद कर लिया। संभाजी को विदूषक के रूप में सजाकर सम्राट के समक्ष पेश किया। उलेमाओं ने उन पर अच्छे मुसलमानों को मारने का आरोप लगाकर उन्हें मृत्युदंड दिया और उनका शव कुत्तों के आगे फेंक दिया गया।

अब ऐसा लगा मानो औरंगज़ेब दक्कन का स्वामी बन गया हो। लेकिन मराठा भी कमज़ोर नहीं थे। उन्होंने तुरंत ही संभाजी के छोटे भाई राजाराम को सिंहासन पर बिठा दिया। जब मुगल सेना ने पहुँचकर राजधानी पर घेरा डाल दिया तो राजाराम और उसके कुछ सहयोगी पैदल ही आठ सौ किलोमीटर दूर जिंजी भाग गए। मुगलों ने संभाजी की पत्नी, उसके नौ वर्षीय बेटे साहूजी और अन्य परिवारजनों को कैद में ले लिया। औरंगज़ेब ने साहू को अपने ही परिवार में पालने का निश्चय किया ताकि मुगल परंपराओं में उसका उत्संस्करण हो सके।

जिंजी में नौ वर्ष तक मुगल-मराठा संघर्ष चला। राजाराम को अपने भाई साहजी द्वितीय, तंजावुर के राजा और धनजी जाधव और संताजी घोरपड़े जैसे मराठा सैनिकों से, जो नियमित रूप से मुगल आपूर्ति लाइनों को काटकर शाही कैंप में संकट खड़ा कर देते थे, से अत्यधिक समर्थन प्राप्त हुआ। राजाराम ने जिंजी पर कब्जा होने से पहले ही 1698 में उसे छोड़ दिया हालांकि उसके परिवार के कुछ सदस्यों को मुगलों ने कैद कर लिया।

अब मराठा आंदोलन का और विकेंद्रीकरण हो गया और मुगलों को और हानि पहुँची। व्यक्तिगत मराठा कमांडर जैसे राम चंद्र बावडेकर, शंकरजी मल्हार, परशुराम त्रिंबक और प्रह्लाद निरजी ने अपनी सेनाएं खड़ी कर जब तब मुगल सेनाओं पर हमला करना शुरू कर दिया। उन्होंने गुजरात और पश्चिमी दक्कन में भी *चौथ* एकत्रित करना शुरू कर दिया। हालांकि वे मुगलों की तरह भली-भांति लैस नहीं थे, लेकिन मराठा सेनाएं जोश और गतिशीलता में बढ़कर थीं और छुपकर हमले करती थीं। वे अक्सर मुगल सामंतों को कैद कर लेते थे और उन्हें छोड़ने के लिए फिरौती की भारी रकम लेते थे।

अब औरंगज़ेब ने मराठों के विरुद्ध जिहाद छेड़ दिया और महाराष्ट्र के पहाड़ी किलों पर हमला करने लगा। जब सन् 1700 में राजाराम की मृत्यु हुई तो उसकी विधवा तारा बाई ने उसके चार-वर्षीय बेटे शिवाजी द्वितीय को राजा और स्वयं को प्रतिशासक घोषित कर दिया।

अब औरंगज़ेब ने संभाजी के बेटे साहूजी का इस्तेमाल करने की सोची जो अब भी उसकी कैद में था। उसने साहूजी को इस्लाम अपनाने पर मुक्त करने का वायदा किया लेकिन साहूजी ने इनकार कर दिया। तब औरंगज़ेब ने मराठा समस्या का हल निकालने के लिए साहूजी को छोड़ने का प्रस्ताव रखा लेकिन यह भी असफल रहा। तारा बाई ने मुगल सेनाओं पर दबाव बनाए रखा और क्षेत्र में *चौथ* और *सरदेशमुखी* एकत्रित करने के लिए प्रतिनिधि रखे। सन् 1700 में मराठा सेनाओं ने नर्मदा नदी पार कर गुजरात और मालवा पर हमला कर दिया।

बढ़ती हुई राजनीतिक उथल-पुथल का लाभ उठाते हुए यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों ने बंबई और मद्रास जैसे स्थानों पर अपने पैर जमाने शुरू कर दिए। औरंगज़ेब, मराठों में इतना लवलीन था कि वह इस समस्या का पूरी तरह सामना नहीं कर पाया हालांकि कई अवसरों पर उसने अपने अधिकारियों को कंपनियों के विरुद्ध कार्रवाई करने का निर्देश दिया। दक्कन में तीन दशक के अभियान के बाद, 1707 में औरंगज़ेब की औरंगाबाद में मृत्यु हो गई और मराठा अविजित रहे।

औरंगज़ेब के बाद मराठा

औरंगज़ेब की मृत्यु के तुरंत बाद साहूजी मुक्त कर दिए गए जिससे उसके और तारा बाई के बीच मराठों के नेतृत्व को लेकर संघर्ष छिड़ गया। लेकिन मुगल इस अवसर का लाभ दक्कन में अपनी स्थिति

को सुदृढ़ करने में नहीं उठा पाए। साहू द्वारा सन् 1713 में बालाज़ी विश्वनाथ नामक एक चितपावन ब्राह्मण की पेशवा के रूप में नियुक्ति से मराठा इतिहास में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। अब मराठा और ब्राह्मणों के अनेक नए दलों का राजनीतिक उदय हुआ जिसने मराठों के प्रयासों में नई जान फूंकी।

भारतीय परिदृश्य में मराठा विशाल बनकर उभरे; यहाँ तक कि राजसिंहासन पर एक कठपुतली बिठाने में सैयद भाइयों की मदद के लिए पेशवा ने दिल्ली तक की यात्रा की। सन् 1719 में वह साहू के पक्ष में अत्यंत अनुकूल मुगलों द्वारा एक संधि का अनुसमर्थन कराकर दक्कन लौटा, इससे मुगलों ने मराठों के दक्कन के छः सूबों में *चौथ* और *सरदेशमुखी* और मालवा और गुजरात में चौथ के दावों को स्वीकार कर लिया।

बालाजी विश्वनाथ का पेशवा के रूप में उत्तराधिकारी उसका बेटा, बाजी राव प्रथम (1720-1740) बना जो तब बीस वर्ष का नौजवान था, शिवाजी के बाद मराठा इतिहास में उसे सबसे करिश्माई नेता बताया गया है। इस बात से आश्वस्त कि कमज़ोर मुगल साम्राज्य उत्तर की ओर मराठों का जाना नहीं रोक पाएगा, उसने एक महत्त्वाकांक्षी विस्तार कार्यक्रम की शुरुआत की। दभादे, गायकवाड़, बांदे, पवार, शिंदे, होल्कर और भोंसले जैसे मराठा नेता कभी पेशवा के साथ तो कभी उसके बिना गुजरात एवं मालवा में फैल गए और वहाँ प्रभावशाली जीत हासिल की। इनमें से कई मराठा नेता तो अवयस्क थे जिनकी क्षमताओं को साहू और पेशवा ने स्वीकार किया। इन दशकों के दौरान मराठों ने दिल्ली पर भी हमला किया (जहाँ उन्होंने कुछ समय के लिए सम्राट को बंधक बना कर रखा) और राजपूताना पर भी। पहले की तरह मुगल उनका सामना करने के लिए एक युद्धनीति बनाने में असफल रहे।

बाजी राव के शासनकाल के दौरान अन्य महत्त्वपूर्ण घटनाओं में पालखेड़ की संधि (1728) थी जिसके द्वारा हैदराबाद के निज़ाम को दक्कन में मराठों के *चौथ* और *सरदेशमुखी* के दावे और साहू को एकमात्र मराठा शासक के रूप में स्वीकार करना पड़ा। इसके अलावा वारना की संधि (1731) के अनुसार अंततः तारा बाई को कोल्हापुर में एक राज्य देकर उसके दावे स्वीकार कर लिए। मराठों का पुर्तगालियों पर हमला भी महत्त्वपूर्ण था जिसने पुर्तगालियों को कोंकण छोड़ने और गोवा और दमन तक सीमित रहने पर विवश कर दिया। सालसेट, बसाई और चौल, सभी पर मराठों ने कब्ज़ा कर लिया। तटीय महाराष्ट्र पर कब्ज़ा करने के लिए अब केवल मराठा और अंग्रेजों में संघर्ष होना था। निज़ाम के साथ भोपाल की संधि (1739) भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं थी जिसके द्वारा संपूर्ण मालवा पर मराठों का कब्जा हो गया और नर्मदा और चंबल नदियों के बीच के क्षेत्र में उनकी प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली गई।

चालीस वर्ष की उम्र में बाजी राव की मृत्यु हो गई और उनका उत्तराधिकारी बना उनका उन्नीस वर्षीय पुत्र, बालाजी बाजी राव (जो नाना साहेब के नाम से भी जाना गया)। मराठा सरदारों ने राजस्थान, दिल्ली के आसपास के क्षेत्र और आगे जाकर पंजाब में घुसना जारी रखा। मराठा सेनाओं ने बुंदेलखंड, उत्तर प्रदेश की सीमाओं, उड़ीसा, बंगाल और बिहार पर भी हमला किया। दक्षिण में उन्होंने कर्नाटक पार कर लिया और भाल्के की संधि

(1751) द्वारा खानदेश के विशाल हिस्सों पर कब्ज़ा किया। लेकिन मराठों को अफगान हमलावर, अहमद शाह अब्दाली के हाथों 1761 में पानीपत में करारी हार झेलनी पड़ी।

अभ्यास

1. मराठा शब्द की क्या परिभाषा है? दक्षिणी राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था में मराठों का कितना प्रतिनिधित्व था?
2. पुरंदर की संधि तक शिवाजी के कार्यकाल का वर्णन कीजिए।
3. पुरंदर की संधि के नियम और शर्तें क्या थीं? यह संधि क्यों असफल रही?
4. शिवाजी के कार्यकाल के महत्त्व और मुगल साम्राज्य के पतन में उसकी भूमिका का आकलन कीजिए।
5. औरंगजेब के गोलकोंडा में कार्य और राज्य में मुगल राजनीतिक विशिष्ट वर्ग के प्रति उसके बर्ताव का वर्णन कीजिए।
6. शिवाजी की मृत्यु के बाद मराठा आंदोलन के स्वरूप का संक्षिप्त विवरण कीजिए।
7. भारत के मानचित्र पर 1707 में दक्कन में मुगल साम्राज्य की सीमा दिखाइए।
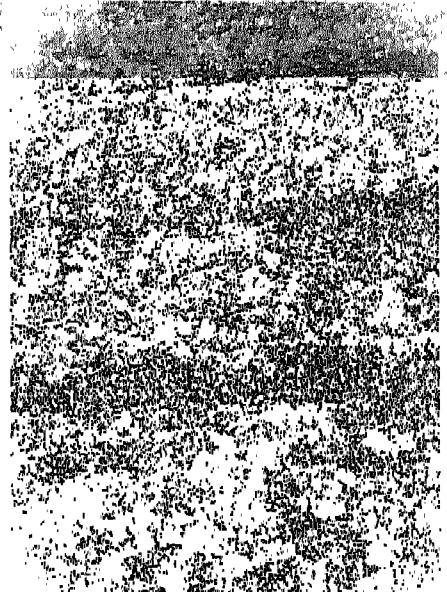
सोलहवीं शताब्दी के बाद भारी संख्या में मिले लिखित दस्तावेज़ों से इतिहासकारों को मुगल काल में अर्थव्यवस्था की स्थिति को विस्तारपूर्वक समझने में सहायता मिली है। अबुल फ़ज़ल द्वारा अत्यंत सावधानी से तैयार *आईन-ए-अकबरी* विभिन्न विषयों पर सांख्यिकीय जानकारी प्रदान करता है जो *दस्तूर-उल-अमल-ए-आलमगीरी, मदद-ए-माश* जैसे आधिकारिक दस्तावेज़ों और अन्य राजस्व रिकॉर्डों के अलावा अनगिनत सरकारी फरमानों द्वारा संपूरित की जाती है। राजस्थान की जानकारी का एक अत्यंत बहुमूल्य स्रोत है मुनहता नैनसी का *मारवाड़ रा परगना री विगत*।

कृषि उत्पादन व्यवस्था

किसान भूमि को लकड़ी के हलों से जोतते थे। हल में केवल एक लोहे का कांटा होता था और कभी-कभी तो वह भी नहीं क्योंकि भारत की हल्की मिट्टी के लिए भारी हल की आवश्यकता नहीं थी। भारतीय किसान कपास जैसी कुछ फसल बोने में बीज-वपित्र का भी प्रयोग करते थे।

वर्षा के पानी के अतिरिक्त खेतिहर कृत्रिम सिंचाई का सहारा लेते थे विशेषकर कुओं और तालाबों का। कुओं से पानी विभिन्न तरह से खींचा जाता था – धेंकली, चमड़े की बाल्टी और कभी-कभी रहट। मध्य भारत में, दक्कन और दक्षिण में, तालाब और हौज सिंचाई के प्रमुख स्रोत थे। उत्तर के मैदानों में नदियों से अनेक नहरें निकाली गईं।

भारतीय किसान अनेक प्रकार के खाद्य और फसलें उगाते थे। विद्वानों ने हिसाब लगाया है कि आगरा प्रांत के राजस्व क्षेत्र में कम से कम इकतालीस प्रकार की फसलें उगाई जाती थीं। *आईन-ए-अकबरी* में दिल्ली सूबे में उगाई जाने वाली सत्रह रबी और छब्बीस खरीफ़ फसलों का उल्लेख है। पूर्वी राजस्थान के एक गाँव में वर्ष 1796 के राजस्व रिकॉर्ड बताते हैं कि खरीफ़ के मौसम में अड़तीस में से नौ किसानों में से प्रत्येक पाँच से अधिक फसलें उगाते हैं। साम्राज्य के अन्य हिस्सों में स्थिति कोई खास अच्छी नहीं थी।

सत्रहवीं शताब्दी में तंबाकू और मक्के जैसी कुछ अन्य स्थानिक फसलें भारत में नई दुनिया से लाई गईं। सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में पश्चिमी तट पर तंबाकू की खेती शुरू की गई लेकिन पचास वर्षों के अंदर यह मुगल साम्राज्य के अन्य हिस्सों में फैल गई। बंगाल में रेशम उत्पादन के विकास का भी यही नमूना रहा। पंद्रहवीं शताब्दी से पहले अपरिचित इसका सत्रहवीं शताब्दी तक इतनी तेज़ी से विस्तार हुआ कि बंगाल एक प्रमुख रेशम उत्पादक क्षेत्र बन गया।

बागवानी में भी अनेक महत्त्वपूर्ण विकास हुए। फलों की गुणवत्ता सुधारने के लिए उपरोपण की तकनीक का प्रयोग किया जाने लगा। इस तरीके से हापुस किस्म के प्रसिद्ध आमों का उत्पादन किया

गया। जिन नए फलों की खेती की गई उनमें अनन्नास, पपीता और काजू शामिल थे जो नई दुनिया की उपज थे।

विद्वानों के अनुसार मुगल भारत में कृषि उत्पादन को लगातार सूखे और जागीदारों द्वारा किसानों के शोषण के कारण बार-बार रुकावटें झेलनी पड़ीं। इसके फलस्वरूप वे निश्चयपूर्वक कहते हैं कि खेती में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई। हालांकि पूर्वी बंगाल और तराई क्षेत्र में बंजर और वन भूमि के विशाल भागों पर खेती शुरू की गई लेकिन साथ ही साथ राज्य के अत्याचारों के कारण अन्य क्षेत्रों को छोड़कर लोग जाने लगे। विद्वानों के अनुसार जनसंख्या भी वर्ष 1600-1800 के बीच 0.14 प्रतिशत की निम्न औसत वार्षिक दर पर बढ़ी।

दक्षिण भारत

दक्कन में खेती श्रमिक प्रधान थी। क्षेत्र की अकृष्ट काली मिट्टी को खेती के लिए तैयार करने से पहले उस पर अनेक बार हल चलाना पड़ता था। अकृष्ट लाल मिट्टी पर भी इतनी ही मेहनत करनी पड़ती थी।

बरसाती क्षेत्र की मुख्य फसल धान थी और चावल की खेती के दो मौसम होते थे। दक्षिण में सूखी खेती काफी प्रचलित थी। जिन उपकरणों का प्रयोग किया जाता था उनमें लकड़ी के बने अनेक प्रकार के हल जिनका लोहे का फाल होता था और लकड़ी और लोहे के दांत वाले विभिन्न प्रकार के पटरे और बीज वपित्र, कुदाली और हंसिया शामिल थे।

भूमि अधिकारों का स्वरूप

किसान (रैया) तीन प्रकार के थे: खुदकाश्त, पहीकाश्त और मुकरारी रैया। खुदकाश्त किसान मालिक था जिसकी भूमि और घर एक ही गांव में होते थे। वह अपनी भूमि पर अपने परिवारजनों की सहायता से खेती करता था और उसे शिकमी पर नहीं देता था। उसकी भूमि पैतृक थी और उसके पास उसे अंतरित करने, गिरवी रखने या बेचने का भी अधिकार था। उसे तब तक अपनी भूमि से नहीं हटाया जा सकता था जब तक कि वह राज्य को राजस्व का हिस्सा अदा करता।

पहीकाश्त भी उस भूमि का मालिक था जिस पर वह खेती करता था लेकिन वह उस गांव में नहीं होती जहां उसका घर था। उसके भूमि पर खुदकाश्त के समान ही अधिकार थे। मुकरारी रैया के भी भूमि पर पैतृक अधिकार थे और वह उसे बेच, अंतरित या गिरवी रख सकता था। वह अन्य रैया से इस मामले में भिन्न था कि वह अपने किराएदारों जो मुज़ारिया के नाम से जाने जाते थे, को अतिरिक्त भूमि किराए पर दे सकता था। इन किराएदारों को भी भूमि पर इस शर्त पर पैतृक अधिकार थे कि वे मुकरारी रैया को किराया अदा करेंगे।

हालांकि किसानों के भूमि पर अधिकार को मान्यता प्राप्त थी लेकिन वे भूमि को छोड़कर नहीं जा सकते थे और न ही उस पर खेती करने से इनकार कर सकते थे। ऐसा इसलिए था क्योंकि भूमि राजस्व सरकारी आय का मुख्य स्रोत था और राज्य अपने संसाधनों में किसी प्रकार की कमी बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं था।

साम्राज्य में खेती योग्य सारी भूमि को दो श्रेणियों में विभक्त किया गया, खालिसा और जागीर। खालिसा भूमि वह थी जिसका भू-राजस्व सीधे केंद्रीय कोषागार में जाता जबकि जागीर भूमि मनसबदारों को रकम आय के बदले दी जाने वाली भूमि होती थी। मनसबदारों को केवल राज्य के राजस्व का हिस्सा एकत्रित करने का अधिकार था और वे जागीर के मालिक नहीं थे।

ग्राम समुदाय

गाँव के निवासियों में जहाँ एक ओर जमींदार, साहूकार, अनाज व्यापारी और समृद्ध किसान थे वहीं दूसरी ओर साधारण खेतिहर और भूमिहीन थे। अधिकांश किसान न केवल एक जाति से थे बल्कि जाति के समान प्रविभाजन से भी थे और उनमें गहरा भाईचारा था।

एक मुख्य विशेषता थी किसानों द्वारा व्यक्तिगत खेती। गाँव की ज़मीन के संयुक्त स्वामित्व का कोई प्रमाण नहीं है। प्रत्येक किसान को अपनी ज़मीन और फसल के अनुसार व्यक्तिगत रूप से कर देना होता था। हालांकि गाँवों के लोगों को उत्पादन शहरों से नहीं के बराबर प्राप्त होता था लेकिन उनकी उपज का एक बड़ा हिस्सा शहरी बाज़ार पहुँचता था और इस प्रकार गांव बाज़ारी शक्तियों के प्रभाव में आ सकता था।

इस दौरान गाँव और जाति पंचायतों सहित ग्राम समुदाय कार्य करने वाली इकाई थे। समान हित वाले मामलों में गाँव के लोग एक समूह के रूप में कार्य करते थे। जैसा कि विद्वान कहते हैं, वे राज्य को भू-राजस्व देने में सामूहिक रूप से निष्ठावान या निष्ठाहीन थे। उनका समान वित्तीय कोष भी था जिससे वे गाँव के खर्च का भार उठाते। उदाहरण के लिए, गाँव के लेखों का रखरखाव करने के लिए वे मिलकर पटवारी को रखते, नहरें बनाने और गांव वालों को धार्मिक लाभ और मनोरंजन प्रदान करने के लिए मिलकर कार्य करते थे।

ज़मींदारों की स्थिति

मुगल काल में प्रयुक्त ज़मींदार शब्द में विभिन्न वंशानुगत समूह शामिल थे जो राज्य की भू-राजस्व एकत्रित करने में सहायता करते थे। अपने कार्य के बदले उन्हें विभिन्न प्राधिकार प्राप्त थे; जैसे-कृषि उत्पाद और कर मुक्त भूमि में हिस्सा।

विद्वानों ने मुगल साम्राज्य में ज़मींदारों को तीन विस्तृत श्रेणियों में विभाजित किया है: (i) स्वतंत्र मुखिया (ii) मध्यस्थ ज़मींदार और (iii) मुख्य ज़मींदार। ये श्रेणियां विशिष्ट न होकर परस्पर थीं। ज़मींदार राज्य के हर हिस्से में थे और शायद ही ऐसा कोई क्षेत्र था जिसमें किसी प्रकार के ज़मींदार न हों।

विद्वानों का अनुमान है कि उत्तर भारत में ज़मींदारों का राजस्व में हिस्सा पंद्रह से बीस प्रतिशत से कम नहीं था जबकि गुजरात में यही हिस्सा तीस से पैंतीस प्रतिशत था। ज़मींदार, हथियारों से लैस, अपने क्षेत्र में मुगलों का सामना करने के लिए तैयार रहते थे। केवल अकबर के शासनकाल में ही ज़मींदारी विद्रोह के एक सौ चौवालीस मामले दर्ज किए गए हैं। मध्यकालीन दस्तावेज़ों में *ज़मींदारां-ए-ज़ोर-तलब* का उल्लेख है, वे ज़मींदार जो केवल तभी राजस्व अदा करते थे जब उनसे ज़बरदस्ती मांगा जाता था।

आईन-ए-अकबरी के अनुसार ज़मींदार की कर रक्षक टुकड़ियों की संख्या चौवालीस लाख से अधिक थी। उनकी सैन्य शक्ति का विभाजन इस प्रकार था: 3,84,588 घुड़सवार, 42,77,057 पैदल सेना, 1,863 हाथी, 4,260 बंदूकें और 4,500 नौकाएं। अधिकांश ज़मींदार गढ़ों में रहते थे जो कि न केवल उनके पद का सूचक थे बल्कि आवश्यकता पड़ने पर प्रतिरोधी केंद्रों के रूप में भी कार्य करते थे।

ज़मींदारों की स्थिति को और मज़बूत बनाती थीं ज़मीन में उनकी गहरी जड़ें जो कई पीढ़ियों से उनके परिवार के कब्ज़े में थीं। एक क्षेत्र के ज़मींदारों और उनके अधिकार-क्षेत्र में रहने वाले

किसानों के बीच जातिगत संबंध थे। विद्वानों का कहना है कि ज़मींदारी सेनाओं में अधिकांश पैदल सैनिक होते थे जो कि उनके द्वारा अपने क्षेत्र के बचाव और दूर के क्षेत्रों में कार्य करने के प्रति उनकी अरुचि का सूचक है। औसतन, ज़मींदारों के पास मुश्किल से दस पैदल सैनिकों के लिए एक घुड़सवार था जबकि शाहजहाँ के शासनकाल में शाही सेना में प्रत्येक पैदल सैनिक के लिए एक घुड़सवार था।

हथियारबंद किसान

मुगलकाल में किसानों के पास हथियार होने लगे थे। मनूची ने मथुरा क्षेत्र के गाँववालों ने किस प्रकार अकबर के समय में मुगल राजस्व अधिकारियों से स्वयं को बचाया, इसका उल्लेख किया है। "महिलाएँ भाले और तीर लेकर अपने पतियों के पीछे खड़ी हो गईं। जब पति अपनी तोड़ेदार बंदूक दागता तो पत्नी उसे बल्लम पकड़ा देती और वह खुद बंदूक में गोली भरने लगती।"

पीटर मंडी ने 1632 में वर्तमान कानपुर ज़िले में देखा "बंदूक, तलवार और छोटी ढाल बगल में रखे खेती करते हुए मज़दूर ...।" सन् 1650 के आसपास आगरा क्षेत्र के भदौरिया राजपूतों के बारे में कहा जाता है "वे अत्यंत कर्मठ और बहादुर लोग हैं। प्रत्येक गाँव में एक छोटा किला है। वे कभी भी बिना लड़े हकीम (जागीरदार) को राजस्व नहीं देते। किसान (रैया) जो हल चलाते हैं, अपनी गरदन से बंदूक लटकाकर और कमर में बारूद का पाउडर बांधकर रखते हैं।"

इन उल्लेखों के फलस्वरूप विद्वानों ने मुगल भारत में "विद्रोह और कृषि विरोध की आम परंपरा" पर टिप्पणी की है। वे कहते हैं कि किसी न किसी प्रकार लाखों हथियारबंद आदमी, खेतिहर व अन्य जिन पर सरकार को शासन करना था, उसके शत्रु थे न कि प्रजा।"

मुगल अपने पूरे शासनकाल में मिट्टी के गढ़, जंगलों, बीहड़ और हथियारों से संरक्षित किसानों से राजस्व एकत्रित करने की समस्या से ग्रस्त रहे। अपनी प्रभुसत्ता को इस निरंतर चुनौती के चलते मुगलों ने किसानों को मिटाने की लगभग नीति अपना ली। हज़ारों किसानों को दास बनाकर अन्य स्थानों पर भेज दिया गया, अनेक को तो भारत के पश्चिम में स्थित देशों में बेच दिया गया। सन् 1400 से पहले मुल्तान एक प्रमुख दास बाज़ार था लेकिन बाद में काबुल इस व्यापार का केंद्र बन गया। अनेक किसानों को जिन्हें अन्यत्र नहीं भेजा गया, को तुरंत मार दिया गया।

दास व्यापार

सन् 1562 में अकबर ने उस समय अपनी टुकड़ियों द्वारा विद्रोहियों की पत्नियों और बच्चों को बेचने की प्रथा पर रोक लगा दी। लेकिन इस रोक को लागू करना असंभव था। अकबर की जीत से दास व्यापार में निरंतर आपूर्ति होती रही । उस समय प्रचलित एक लोकप्रिय कहावत थी "भारत से दास, पार्थिया से घोड़े।" जहाँगीर का व्यापार में हिस्सा था। 1608 से 1611 के बीच भारत की यात्रा करने वाला विलियम फ़िन्च कहता है, नवंबर से मार्च के अंत तक सम्राट ने आगरा के आसपास ढूंढ़ा और फिर कब्ज़ा किए गए आदमियों को घोड़ों के बदले में काबुल भेज दिया।

जहाँगीर के शासनकाल के वर्ष 1619-20 में एक उज़बेक प्रवासी अब्दुलाह खाँ फ़िरोज़ जंग ने काल्पी-कन्नौज के चौहानों को जीता। फ़िरोज़ जंग के आदेशों पर किसानों की पत्नियों और बच्चों को फारस भेजकर वहाँ बेच दिया गया।

पीटर मंडी ने 1632 में आगरा से पटना यात्रा करते हुए अमीर के एक और शोषण का उल्लेख

किया। इस क्षेत्र से गुजरते हुए चार दिनों में उसने 200 मीनार या खंभे देखे जिन पर गारे से लगभग सात हज़ार सिर लगे हुए थे। चार महीने बाद वापस लौटते हुए वह लिखता है कि साठ और मीनारें बनाई गईं और नई मीनारें भी बनाई जा रही थीं। एक यात्री द्वारा पूछे जाने पर कि उसने कितने काफिरों का सिर काटने का आदेश दिया था, उसने उत्तर दिया, "दो लाख सिर होंगे ताकि आगरा से लेकर पटना तक मीनारों की दो पंक्तियां हों।" विद्वानों का मानना है कि यह उल्लेख हालांकि अतिश्योक्ति हो सकता है लेकिन इसमें सच का भी कुछ अंश हो सकता है।

मुगलों ने विद्रोही क्षेत्रों में अफ़गानों को बसाने की नीति भी अपनाई। उदाहरण के लिए, दिलज़ाक अफ़गान भारत में भर्ती किए जाने के कारण अपनी स्थानीय भूमि से बिल्कुल गायब हो गए। जहाँगीर ने उन्हें देश भर में भेजा। शाहजहाँ के शासनकाल में नौ हज़ार अफ़गानों को शाहजहाँपुर के नवस्थापित शहर में बसाया गया। इसी तरह अफरीदी अफ़गानों को औरंगज़ेब ने मुज़फ्फ़रनगर में बसने और क्षेत्र के राजपूतों को नियंत्रित करने के लिए आमंत्रित किया।

आंतरिक व्यापार

भारतीय व्यापारों के मुख्यत: आत्मनिर्भर स्वरूप के बावजूद इतिहासकारों ने पाया कि अर्थव्यवस्था के प्रत्येक स्तर पर वस्तुओं का प्रभावशाली स्तर पर आदान-प्रदान किया गया। अत: स्थानीय व्यापार ग्रामीण बाज़ार की प्रमुख भूमिका थी और बड़ी संख्या में खाद्य वस्तुएँ तुरंत विक्रय के लिए उपलब्ध थीं। नगरों और शहरों में अंतरस्थानीय व्यापार से विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ प्राप्त होती थीं और यह अधिक जटिल भी था। अंतरक्षेत्रीय व्यापार अंतरस्थानीय व्यापार का अल्पदूरी परिवर्ती था। शहरी बाज़ार न केवल अपने ग्राहकों की आवश्यकताओं को पूरा करते थे बल्कि अन्य क्षेत्र के व्यापारियों को आपूर्ति प्राप्त करने का केंद्र भी थे।

अंतरक्षेत्रीय व्यापार की सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तुएं थीं खाद्य पदार्थ और वस्त्र। यातायात के लिए जलमार्ग को अधिक पसंद किया जाता था जबकि भू-मार्गों से भी व्यापार होता था। भारत के लगभग सभी हिस्से इस व्यापार में भागीदार थे। देश में वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान भेजना संभव हो पाता था। थोकदारों, व्यापारियों, गुमाश्ता और दलालों के तंत्र के कारण एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में हुंडी द्वारा आसानी से धन भेजने के कारण भी आंतरिक व्यापार सरल हो गया। हुंडियाँ आदान-प्रदान का विपत्र थीं जो एक अवधि के बाद छूट सहित अदायगी का आश्वासन देती थीं। दो प्रकार की हुंडियाँ होती थीं, दर्शनी और मिटी। बड़े सौदों पर हुंडियाँ ही अदायगी का मानक तरीका थीं। सर्राफ़ नामक व्यावसायिकों की एक श्रेणी हुंडियों द्वारा सौदा करने में विशेषज्ञ थी।

भारत में व्यापारिक समुदाय विशाल और विस्तृत था। प्रमुख व्यापारियों में, गुजरात के जैन और बोहरा मुसलमान; राजस्थान में ओसवाल, माहेश्वरी और अग्रवाल; कोरोमंडल तट पर चेट्टी और मालाबार में मुसलमान व्यापारी थे। मध्य एशिया में स्थलमार्ग से व्यापार पर मुख्यत: मुल्तानियों और अफ़गानों का नियंत्रण था। थोक में सामान लाने और ले जाने में बंजारों को विशेषज्ञता प्राप्त थी।

गैर-कृषि उत्पादन

इस दौरान देश के सभी भागों में स्थानीय इस्तेमाल और निर्यात के लिए उत्पादित सूती वस्त्र प्रमुख

गैर-कृषि उत्पाद थे। अंग्रेज़ी कारखानों के रिकॉर्ड में कम से कम डेढ़ सौ प्रकार के सूती कपड़े दर्ज़ हैं। गुजरात के गाँवों में कते खुरदरे सफेद धारीदार और चारखाना वाले सूती कपड़े मध्य पूर्व में बड़ी संख्या में लोग पहनते थे। दक्षिण भारत और बंगाल में कते उच्च स्तर के सूती वस्त्र का मध्य पूर्व, दक्षिण पूर्व एशिया, सुदूर पूर्व और सोलहवीं शताब्दी के बाद, यूरोप में वर्चस्व था जिसने भारत को विश्व का बजाज ही बना दिया।

कोरोमंडल और बंगाल में कुछ ही गाँव थे जिनमें कम से कम कुछ जुलाहे परिवार नहीं थे। प्रारंभिक अठारहवीं शताब्दी तक बंगाल की प्रांतीय राजधानी, ढाका में आब-ए-खाँ (बहता पानी) नाम से अत्यंत महीन सूती कपड़े का उत्पादन किया जाता था। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के यूरोपीय कारखानों के दस्तावेज़ इस बात की पुष्टि करते हैं कि भारत और चीन का रेशम और सूती वस्त्र में अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में वर्चस्व था।

सिलाने के वस्त्र के अलावा सूती वस्त्र उत्पादों में सूती कालीन, चादरें, तकिए के गिलाफ़, पाल के लिए कपड़ा, गद्दे, रज़ाई और तंबू शामिल थे। सूती तागे का भारी मात्रा में भरूच, बालासोर और कासिमबाज़ार में उत्पादन होता था। बंगाल रेशम का एक प्रमुख निर्यातक था। गुजरात भी अपने कते हुए रेशम, विशेषकर पटोला के लिए प्रसिद्ध था। देश में उत्पादित रेशम की अन्य किस्में थीं तसर और मूगा। आज की तरह पहले भी कश्मीर अपने शालों के लिए प्रसिद्ध था।

इसके अलावा अनेक ऐसे केंद्र उभरे जो कपड़े के विरंजन, रँगाई, छपाई और चित्रण के लिए प्रसिद्ध थे। रँगाई के लिए जो दो मुख्य उत्पाद थे वे थे चे (लाल रंग) और नील (आगरा के निकट बयाना में उगाया जाने वाला) जिसमें से नीले रंग के एक विशाल हिस्से का यूरोप निर्यात किया जाता था। सन और आलात जैसे अन्य वस्त्र उत्पाद स्थानीय जहाज़ों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे।

चीनी का मुख्य रूप से बंगाल, आगरा, मुल्तान और उड़ीसा में उत्पादन होता था। व्यापारिक कंपनियाँ बंगाल की चीनी का यूरोप और फारस निर्यात करती थीं। अन्य उत्पादों में तेल, तंबाकू, गांजा और केसर शामिल थे।

भारत लोहे में आत्मनिर्भर था जिसका उत्पादन मुख्यत: बंगाल, इलाहाबाद, आगरा, बरार, गुजरात और दिल्ली में होता था। भारतीय धातु शिल्पकार अपने कौशल के लिए विश्व के सुदूर इलाकों में प्रसिद्ध थे। भारतीय दमिश्की तलवारें इतनी बहुमूल्य थीं कि अब्बासी खलीफा, मुतवक्कील ने बसरा पहुँचने वाले एक हथियार के लिए भारी रकम अदा की।

पटना को शोरा का सर्वश्रेष्ठ स्रोत माना जाता था जिसे बारूद बनाने में इस्तेमाल किया जाता था। बीजापुर और गोलकोंडा अपनी हीरे की खदानों के लिए प्रसिद्ध थे। नमक मुख्यत: पंजाब की पहाड़ियों और साँभर झील से खोदकर निकाला जाता था। सोने और चाँदी की कम मात्रा में खुदाई होती थी।

मुगलों के पूर्व काल में फल-फूल रहा जहाज़ निर्माण उद्योग मुगल काल में भी प्रगति करता रहा। आंतरिक यातायात को सुगम बनाने के लिए विभिन्न प्रकार की नौकाओं का निर्माण किया गया। सत्रहवीं शताब्दी के शुरुआत में भारत में उन सभी जहाज़ों का निर्माण किया गया जिनकी उसे हिंद महासागर में व्यापार करने के लिए आवश्यकता थी।

यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों का उद्भव

सन् 1498 में वास्को डि गामा के कालीकट में आगमन से यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों द्वारा गहन

वाणिज्यिक गतिविधि के युग की शुरुआत हुई। सबसे पहले आने वाले पुर्तगालियों ने मसालों के व्यापार में अपना वर्चस्व कायम किया। वे भारत में कोचीन में 1503 में किला बनाने वाले पहले विदेशी थे। इस प्रारंभिक सफलता के बाद उन्होंने गोवा पर कब्ज़ा किया और अन्य किलेनुमा बस्तियां और व्यापारिक केंद्र स्थापित किए जैसे कि कोरोमंडल तट पर और बंगाल में हुगली और चिटगांव में। उनका समुद्री साम्राज्य बाद में एस्टाडो डा इंडिया कहलाया।

सत्रहवीं शताब्दी तक हॉलैंड और अंग्रेज व्यापारिक कंपनियां अपने जहाज़ों को इंडोनेशियाई द्वीपसमूह और स्पाइस द्वीपों की ओर मोड़ने लगीं। ऐसा करते हुए उन्होंने पुर्तगालियों के काली मिर्च के व्यापार पर वर्चस्व को ज़्यादा महत्त्व नहीं दिया । गुजरात और कोरोमंडल में उत्पादित सूती कपड़े को उन्होंने जहाज़ द्वारा इंडोनेशिया भेज दिया और इससे हुए लाभ से मसालों का मूल्य अदा किया। सन् 1621 में अनुमानित 70 लाख पाउंड काली मिर्च का प्रति वर्ष यूरोप निर्यात किया जाता था। इसमें से पुर्तगाली 14 लाख हॉलैंडवासी और अंग्रेज 56 लाख लाते थे। सन् 1670 तक हॉलैंड और ब्रिटेन का आयात कुल मिलाकर 135 लाख पाउंड हो गया।

विदेश में बेची जाने वाली अन्य भारतीय वस्तुओं में नील शामिल था जो उन्नीसवीं शताब्दी तक निर्यात का एक प्रमुख उत्पाद रहा। सन् 1650 के बाद बंगाल से अपरिष्कृत रेशम इटली और फ्रांस के रेशम कताई उद्योग को आपूर्ति का एक प्रमुख स्रोत बन गया। यूरोपीय हथियार उद्योगों में शोरा मांग में था।

भारतीय सूती कपड़े का भी यूरोप निर्यात किया जाने लगा। सन् 1620 तक अंग्रेज़ी ईस्ट इंडिया कंपनी 2.5 लाख भारतीय कपड़े लंदन निर्यात करने लगी। सादा सूती कपड़ा और छींट जैसे ज़्यादा महंगे सूती कपड़े और भारतीय रेशम भी विदेशी खरीदारों को आकृष्ट करने लगा। सन् 1684 में कंपनी ने 26.9 लाख वर्ग मीटर सूती कपड़े का भारत से आयात किया। इस दौरान हॉलैंड से आयात में भी वृद्धि हुई। प्रारंभिक 1680 के दशक में वे प्रति वर्ष चालीस से पचास लाख गज़ सादा सूती कपड़ा खरीदते थे।

क्योंकि भारत की आयात आवश्यकताएँ कम थीं और मुख्यत: कुछ धातुओं जैसे टिन, सीसे और तांबे और घोड़ों तक ही सीमित थीं इसलिए व्यापारिक कंपनियों को नई दुनिया से भारी मात्रा में बहुमूल्य धातुएँ जहाज़ों द्वारा लानी पड़ती थीं ताकि वे यहां की वस्तुओं का मूल्य चुका सकें। प्राप्त आकड़े बताते हैं कि 1660 के बाद की शताब्दी में हॉलैंड और अंग्रेज़ी कंपनियां प्रतिवर्ष 34 टन से भी अधिक चांदी और लगभग आधा टन सोना भारत लाईं। फ्रांसीसी यात्री बरनियर ने इस भारी अंतर्वाह को देखते हुए लिखा, "सोना और चांदी, दुनिया के हर हिस्से में घूमकर अंतत: भारत में समा गया जो सोने और चांदी का कुंड है।"

यूरोपीय कंपनियाँ और नए व्यापारिक केंद्र

सन् 1606 में हॉलैंडवासी गोलकोंडा के सुल्तान से फरमान हासिल करने में सफल रहे, जिसमें उन्हें मसूलीपट्टम में कारखाना स्थापित करने और कम शुल्क दर की अनुमति दी गई। मसूलीपट्टम क्षेत्र अपनी महीन छींट के लिए प्रसिद्ध था जिसकी दक्षिण पूर्व एशिया में अत्यधिक मांग थी। सन् 1610 में हॉलैंडवासियों को पुलिकट में भी वाणिज्यिक रियायतें मिलीं जो कि 1690 तक कोरोमंडल में उनके व्यापार का मुख्य केंद्र रहा।

सन 1612 में अंग्रेज़ों ने सूरत में अपना कारखाना स्थापित किया। उन्होंने थॉमस रो के नेतृत्व में जहांगीर के दरबार में राजदूतों का एक वर्ग भेजा। इसके फलस्वरूप अंग्रेजी कंपनी को आगरा, बुरहानपुर, पटना व अन्य महत्त्वपूर्ण शहरों में व्यापारिक केंद्र स्थापित करने की अनुमति मिल गई। अनेक यूरोपीय व्यापारिक केंद्र आगे जाकर लगभग स्वायत्त्त गढ़नुमा, इलाके बन गए।

चार प्रमुख तटीय क्षेत्र जो आयात के लिए कपड़े का विशाल मात्रा में उत्पादन करते थे, वे थे सूरत के आसपास का क्षेत्र; उत्तर कोरोमंडल में मसूलीपट्टम से लगी कृष्णा और गोदावरी के बीच की भूमि; दक्षिणी कोरोमंडल में पुलीकट और मद्रास के बीच का क्षेत्र; और गंगा डेल्टा जो कि बंगाल में हुगली के बंदरगाह के लिए भीतरी प्रदेश था।

व्यापारिक कंपनियों की गतिविधियों से भारतीय अर्थव्यवस्था में तेज़ी आई। उदाहरण के लिए, 1707 तक हॉलैंडवासियों ने 32 लाख फ्लोरिन के मूल्य के खज़ाने का आयात किया जिससे वे खरीदी गई वस्तुओं; जैसे -- शोरा, गांजा, अपरिष्कृत रेशम, कता हुआ सूती कपड़ा और रेशम के वस्त्रों का मूल्य चुका सके। अंग्रेज़ और हॉलैंडवासियों की कपड़े की मांग से बंगाल के वस्त्र उद्योग में लगभग दस प्रतिशत कारीगरों को कार्य मिलता था। रेशम की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए बंगाल में अनेक कारीगरों ने शहतूत की खेती शुरू कर दी।

यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों की बढ़ती संख्या का अर्थ भारतीय व्यापारियों का खात्मा नहीं था जिन्होंने इस क्षेत्र में अपना वर्चस्व बनाए रखा।

शहरी केंद्रों का विकास

विद्वानों ने उत्तरी भारत के शहरी केंद्रों को चार श्रेणियों में विभाजित किया है। पहले थे आगरा, दिल्ली और लाहौर जैसे मुख्यत: प्रशासनिक शहर। दूसरी श्रेणी थी मुख्यत: वाणिज्यिक और उत्पादन केंद्रों की, जैसे पटना और अहमदाबाद। बनारस और मथुरा जैसे तीर्थ केंद्र तीसरी श्रेणी में आते थे जबकि चौथी श्रेणी उन केंद्रों की थी जिन्हें किसी विशेष निर्माण प्रक्रिया में विशेषज्ञता प्राप्त थी। उदाहरण के लिए, बयाना अपनी नील के लिए प्रसिद्ध था जबकि अवध में खैराबाद और दरियाबाद अपने वस्त्र के लिए प्रसिद्ध थे। जिन कारणों से तेज़ी से शहरीकरण हुआ उनमें शामिल थे फलता-फूलता आंतरिक और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, और कपड़े के उत्पादन और विपणन का अत्यधिक विस्तार।

कुछ विद्वानों के अनुसार, लाहौर, दिल्ली, आगरा, इलाहाबाद और अहमदाबाद जैसे विशाल और समृद्ध शहरों का "अंशत: इस्लामिक स्वरूप" उनके रूप, विन्यास और गैर-आवासीय स्थान के वितरण में दिखाई पड़ता था।

इन शहरों की विशेषताओं में शामिल थे रक्षित महल-गढ़ जो क्षेत्रीय प्रशासन केंद्रों के रूप में भी कार्य करते थे और सैन्य परेडों के लिए खुले मैदान जैसी सैन्य विशेषताएँ। इनमें मस्जिद, मजार और मदरसों जैसी धार्मिक इमारतें, और ईरान और तुर्किस्तान की शैलियों में बने बाज़ार और सराय जैसी इमारतें भी शामिल हैं। भारत के पुराने शहरों की तुलना में शहर विशाल दीवारों और द्वारों द्वारा संरक्षित होते थे।

बड़े शहरों के अलावा अनेक छोटे शहर (कस्बे) भी थे जो राजकीय राजस्व की मांग को पूरा करने के लिए अन्न के विक्रय के लिए प्रमुख बाज़ार थे। उन्होंने बढ़ते हुए कुलीन वर्ग जिसमें जागीरदारों के एजेंट, साहूकार, अन्न व्यापारी, ज़मींदार, कनिष्ठ अधिकारी और धार्मिक व्यक्ति शामिल थे, वहां

अपने निवास स्थापित किए। अकबर के शासनकाल में 3200 कस्बे थे।

तकनीकी प्रगति

अनेक यूरोपीय निरीक्षकों ने भारत में तकनीक और कुशल औज़ारों के स्थान पर हस्त कौशल पर टिप्पणी की है। तकनीकी परिवर्तन के मार्ग को अवरुद्ध करने का एक कारण यह था कि व्यापारी और सामंत उत्पादन प्रक्रिया में शामिल नहीं थे। अतः मशीनीकरण के सारे खतरे और निवेश कारीगरों को ही झेलने पड़ते थे। इसके अलावा कारीगरों की कम आय और खपत के निम्न स्तर ने मूल्य वृद्धि पर रोक लगा कर रखी थी जिसके कारण स्वचलन को बढ़ावा नहीं मिला।

तोप निर्माण और हाथ की बंदूकों का निर्माण करने वाले कुछ उद्योग तकनीकी रूप से काफी उन्नत थे। भारतीय पोतशिल्पियों ने जहाजों का निर्माण करते समय मूल यूरोपीय नमूनों में सुधार किया। जल और वायु की शक्ति से भी लोग अनजान नहीं थे। हज़ारा जिले में जल शक्ति का अभिनव प्रयोग धान के पोषण के लिए किया गया। सोलहवीं शताब्दी में फारसी आप्रवासियों ने आंध्र में कालीन बनाने के लिए खड़े करघे का प्रयोग किया। बंगाल में यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों ने रेशम को चरखी पर लपेटने की तकनीक को परिष्कृत किया।

जनसंख्या

आधुनिक इतिहासकारों के मुगल भारत में जनसंख्या के आकार पर विभिन्न विचार हैं। शुरुआत में एक हज़ार लाख की संख्या पर सभी सहमत थे। लेकिन आंकड़ों के पुनः निरीक्षण से इस संख्या में अधिक बढ़ोतरी हुई। अब यह अनुमान लगाया गया है कि भारत की जनसंख्या कुल मिलाकर 14000 लाख से 15000 लाख थी जिसमें से 10700 लाख से 11500 लाख अकबर के शासनकाल में मुगल क्षेत्र में ही थे।

वर्ष 1600 में कुल जनसंख्या का लगभग 85 प्रतिशत ग्रामीण था और बाकी 15 प्रतिशत यानी 160 से 170 लाख, शहरी। *तबकात-ए-अकबरी* के लेखक के अनुसार अकबर के साम्राज्य में 120 बड़े शहर और 3200 छोटे शहर (कस्बे) थे जिनमें प्रत्येक में 100 से 1000 गांव थे।

मूल्य

मुगल भारत में राज्य की आय का नौ बटा दसवां भाग भू-राजस्व से प्राप्त होता था और बाकी का एक बटा दसवां भाग शहरी चुंगी से। राज्य द्वारा राजस्व की मांग अकबर के शासनकाल के अंतिम वर्ष से औरंगज़ेब के शासन के अंत तक दुगनी से ज़्यादा हो गई। इस वृद्धि का एक कारण साम्राज्य में जीत द्वारा नई भूमि जुड़ना और बाकी का बढ़ती हुई कर की मांग था।

विद्वानों के अनुसार, राज्य के राजस्व में वृद्धि का आकलन सत्रहवीं शताब्दी में मूल्यों के दीर्घकालीन रुझान के परिदृश्य में करना चाहिए। मूल्यों में एक वृद्धि 1610 और मध्य 1630 के बीच हुई जब मूल्य स्तर 1595 की तुलना में डेढ़ से दो गुना बढ़ा। यह वृद्धि विशेषकर आगरा में कृषि उत्पाद के मूल्यों, गुजरात में चीनी और बयाना और सरखेज में नील में दिखाई पड़ी जबकि सोना, ताँबा और चीनी में कम दिखाई पड़ी।

इस दौरान (1592-1639) प्रचलित चाँदी की मुद्रा में तीन गुना वृद्धि हुई। सन 1660 के प्रारंभ में मूल्यों में फिर वृद्धि हुई जो कि सोना, तांबा और बयाना नील में सबसे अधिक थी। इसके बाद

अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ तक मूल्य स्तर में कुछ वृद्धि बनाए रखी गई जो कि मुद्रा आपूर्ति से संबंधित थी।

वेतन

कहा जाता है कि अकुशल मजदूरों के वेतन में 1595 से 1637-38 तक 67 से 100 प्रतिशत और आम मज़दूरों के वेतन में 38 से 53 प्रतिशत की वृद्धि हुई। हालांकि इस दौरान अनाज के मूल्यों में सौ प्रतिशत से भी अधिक की वृद्धि हुई, लेकिन निम्न आय पाने वाले कामगारों की आय में वास्तविक गिरावट हुई।

मुद्रा

मुगल साम्राज्य की मुद्रा तीन धातुओं से बनी थी जिसमें उच्च स्तर की एकरूपता और शुद्धता थी। यह अपने समय की सबसे बेहतरीन मुद्रा थी। शेर शाह को खोट रहित सिक्कों को प्रचलित करने के प्रयास का श्रेय दिया जा सकता है। लेकिन अकबर के शासनकाल में मुद्रा प्रणाली पूरी तरह परिपक्व हुई।

अकबर के शासनकाल में आम सिक्का, रुपया का वज़न 178 ग्रेन ट्रॉय था जिसमें मिश्रधातु चार प्रतिशत तक सीमित थी। वाणिज्यिक आदान-प्रदान के लिए यह मुख्य मुद्रा बन गई; तांबे के सिक्कों का प्रयोग केवल छोटे विनिमयों के लिए किया गया। सोने के सिक्के संभवतः केवल जमा करने के लिए थे।

मुगल सिक्के साम्राज्य में स्थित अनेक शाही टकसालों से जारी किए जाते थे। सन् 1595 में कम से कम 42 टकसालें तांबे के सिक्के, 14 रुपया और चार सोने की मुहरें जारी कर रहीं थीं। प्रत्येक सिक्के पर उसके निर्माण की तारीख और जिस टकसाल से वह जारी किया गया उसका नाम अंकित होता था। नए जारी सिक्कों का मूल्य भूतपूर्व शासनकालों में जारी सिक्कों से ज्यादा होता था।

अभ्यास

1. मुगलकाल में सिंचाई के मुख्य तरीके क्या थे और कुओं से किस प्रकार पानी खींचा जाता था।
2. सोलहवीं शताब्दी में भारत में कौन-सी नई फसलें लाई गईं और उन्हें किन क्षेत्रों में उगाया गया।
3. क्या मुगल भारत में खेती में कुल मिलाकर कोई विशेष वृद्धि हुई? यदि नहीं तो क्यों?
4. ग्राम समुदाय की मुख्य विशेषताओं का विवरण दीजिए।
5. मुगल भारत में जमींदारों की विभिन्न श्रेणियों का वर्णन कीजिए।
6. जमींदारों की सैन्य शक्ति का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
7. क्या आप इन विचारों से सहमत हैं कि मुगलकाल में किसान हथियारों से लैस थे? उदाहरण दीजिए।

8. मुगल काल में दास व्यापार पर टिप्पणी कीजिए।
9. मुगल भारत में उत्पादित प्रमुख गैर-कृषि वस्तुएँ क्या थीं?
10. हुंडियाँ क्या थीं? उनसे आंतरिक व्यापार किस प्रकार सरल हुआ?
11. यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों द्वारा भारत से किन वस्तुओं का निर्यात किया गया?
12. मुगल भारत में किस प्रकार के शहरी केंद्रों का विकास हुआ?
13. मुगल भारत में कितनी जनसंख्या थी?
14. संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए:

    (क) खुदकाश्त

    (ख) पहीकाश्त

    (ग) जागीर

    (घ) खालिसा

अध्याय 19

सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्श

सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्श
सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्श
सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्श
सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्श
सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्श
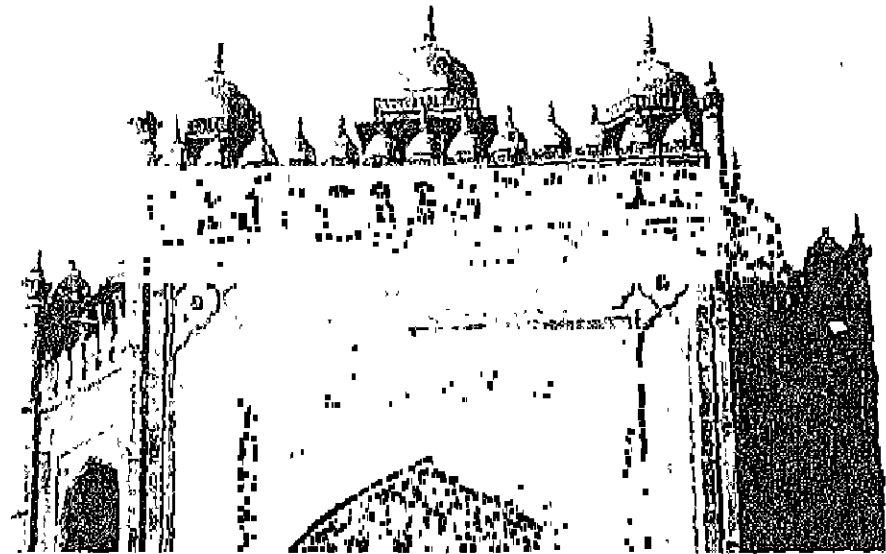
सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्श
सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्श
सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्श
सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्श
सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्श

मुगल काल सांस्कृतिक वैभव का युग था, वास्तुकला, चित्रकला, साहित्य और संगीत जैसे विस्तृत क्षेत्रों में उत्कृष्टता का युग। सौंदर्यपरक उपलब्धियाँ शासक के उच्च पद, उनकी आर्थिक समृद्धि और उनके शासन के स्थायित्व की अभिव्यक्ति थीं। कुल मिलाकर संस्कृति और राजनीतिक शक्ति प्रत्येक एक दूसरे को प्रबलित और सुदृढ़ बनाते हुए साथ-साथ आगे बढ़ी।

वास्तुकला

हालांकि बाबर ने अनेक स्मारकों के निर्माण का आदेश दिया लेकिन वह बागों को ज्यादा पसंद करता था। अपने उथल-पुथल भरे कार्यकाल के बावजूद उसने नए बाग लगाने और पुरानों को सुधारने का समय निकाल ही लिया। बागों में पानी की आपूर्ति फारसी पनचक्कियों और बावलियों द्वारा की जाती थी। बाबर ने आदेश दिए कि उसके राज्य के सभी बड़े शहरों में बाग और फलोद्यान लगाए जाएँ। कई बार उसने वहाँ उगाए जाने वाले फलों के पेड़ों और फूलों के बारे में खुद निर्णय लिया। इनमें से कई बागों ने उसकी सेना के लिए शिविरों का भी कार्य किया।

केवल एक मस्जिद जिसका श्रेय हुमायूँ को दिया जा सकता है, आज भी आगरा में खड़ी है हालांकि उसकी इमारतों के सामयिक उल्लेख हैं। हुमायूँ ने दीवारों से घिरे एक शहर और शाही महल, दीन पनाह का इंद्रप्रस्थ एक प्राचीन भारतीय शहर जिसका महाभारत में अनेक स्थानों पर उल्लेख है,
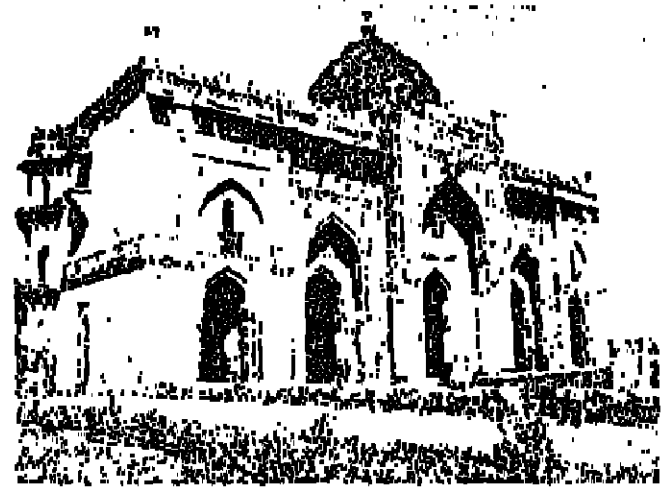
दिल्ली, पुराना किला, किला-ए-कुहना मस्जिद

का निर्माण शुरू किया। यह स्थान जिसे पुराना किला के नाम से जाना जाता है, सूफी संत निजामुद्दीन औलिया की मजार के बहुत निकट था और सूफी संप्रदाय के साथ मुगलों के संबंध पर बल देने के लिए इसकी संरचना की गई लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि शेरशाह के सिंहासन ग्रहण करने से पहले कितना कार्य किया गया।

शेरशाह ने संभवतः गढ़ पूरा किया और उसके परिसर में *किला-ए-कुहना* मस्जिद बनाई। शेरशाह को बिहार में सासाराम में अपने पिता के विशाल मकबरे के निर्माण का श्रेय दिया जाता है जिसे उसके द्वारा स्वयं के लिए उत्थापित वंशावली बनाने के प्रयास के रूप में देखा जाता है। शेरशाह ने स्वयं अपना मकबरा सासाराम में बनवाया जो तब भारत का सबसे बड़ा मकबरा था।
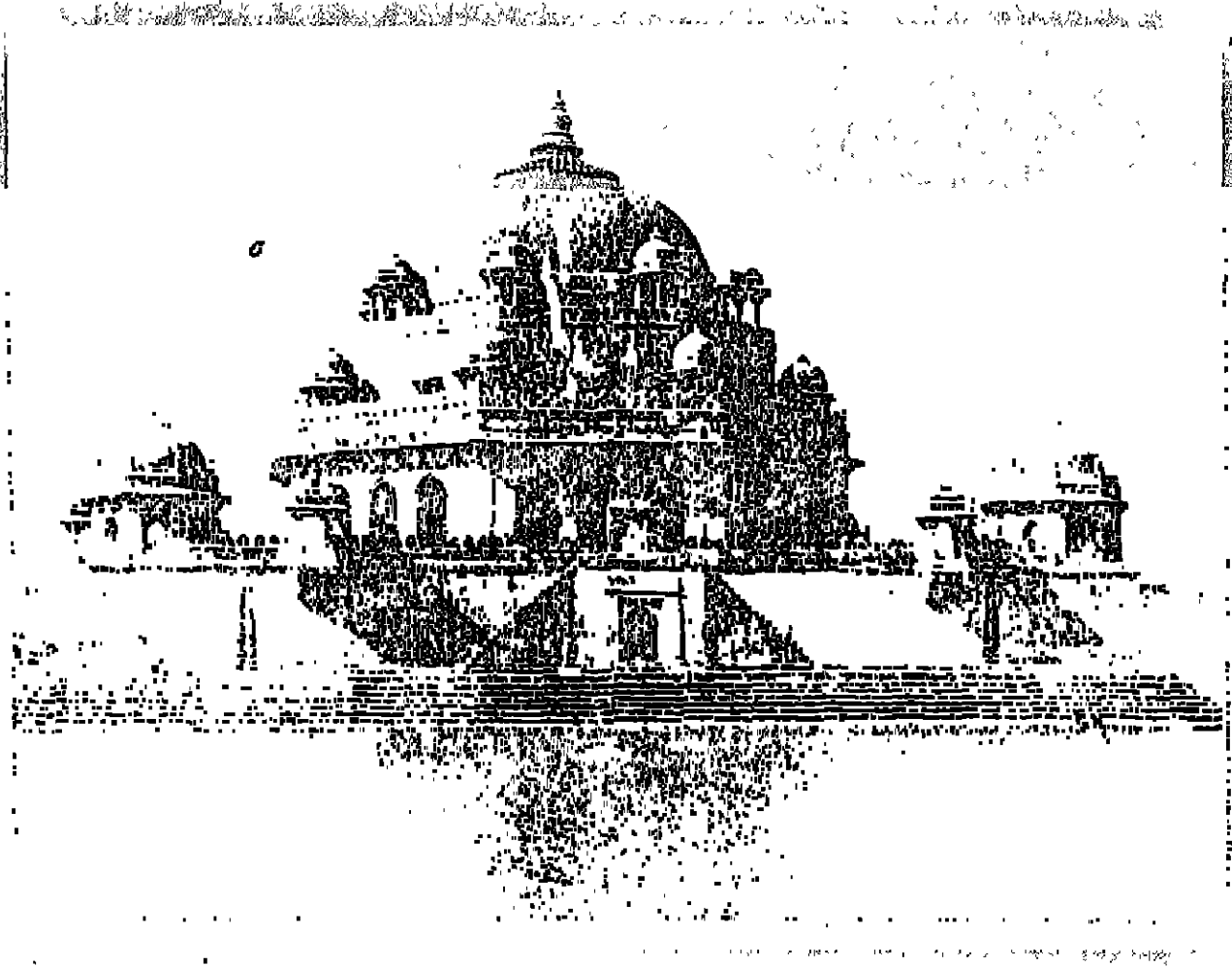
सासाराम, शेरशाह का मकबरा

अकबरी इमारतें

दिल्ली में अकबर का सबसे प्रमुख निर्माण उसके पिता हुमायूँ का मकबरा था जो कि दीन पनाह की तरह निज़ामुद्दीन चिश्ती की दरगाह के निकट स्थित था। यह मकबरा चार बाग के बीचोंबीच स्थित, एक ऐसा वास्तुकला का नमूना था जो सभी मुगल शाही मकबरों के लिए मानक बन गया। लाल पत्थर से निर्मित इसके शिखर पर संगमरमर का गोल गुंबद है, इस मकबरे का निर्माण पूरा होने में आठ वर्ष से अधिक का समय लगा और कुछ विशेषज्ञों के अनुसार तैमूरी प्रथा के अनुसार यह मुगल राजवंशीय मकबरा होना था।

जब तक मकबरे का निर्माण चल रहा था अकबर ने उत्तर भारत में महत्त्वपूर्ण स्थानों पर अनेक किलेनुमा महलों के निर्माण का आदेश दिया। इनमें पहला आगरे का किला था जिसका निर्माण 1571 में पूरा हुआ। ऐसी अन्य इमारतों में अजमेर, लाहौर और इलाहाबाद में किलेनुमा महल शामिल थे जो सभी राजनीतिक महत्त्व के स्थान थे। अजमेर, राजस्थान का द्वार था। लाहौर उत्तर-पश्चिम का रक्षक जबकि इलाहाबाद पूर्वी भारत में लगातार उथल-पुथल का प्रत्युत्तर था।

अबुल फ़ज़ल के अनुसार, आगरा के किले में पाँच सौ से भी अधिक पत्थर की इमारतें थीं। इसके मुख्य प्रवेश द्वार पर विशाल दिल्ली दरवाज़ा था

जिस पर सफ़ेद संगमरमर से जड़ाऊ काम किया गया था। किले के अंदर बनी अधिकांश इमारतों को बाद में शाहजहाँ ने नष्ट कर उनके स्थान पर संगमरमर की इमारतें बनवाईं। जो इमारतें बची रहीं उनमें प्रमुख था जहाँगीरी महल। इस इमारत की एक खास विशेषता थी इसके बारीक काम वाले दीवारगीर।

हुमायूँ का मकबरा, दिल्ली

सन् 1569 में राजकुमार सलीम का सीकरी में जन्म हुआ जो अकबर के आध्यात्मिक गुरु शेख सलीम चिश्ती का मुख्यालय (खानकाह) था जिन्होंने शाही उत्तराधिकारी के जन्म की भविष्यवाणी की थी, अब अकबर ने सलीम चिश्ती के खानकाह के निकट एक शाही महल और दीवारों से घिरा शहर बनाने का निश्चय किया। अकबर पंद्रह वर्ष तक फतेहपुर सीकरी में
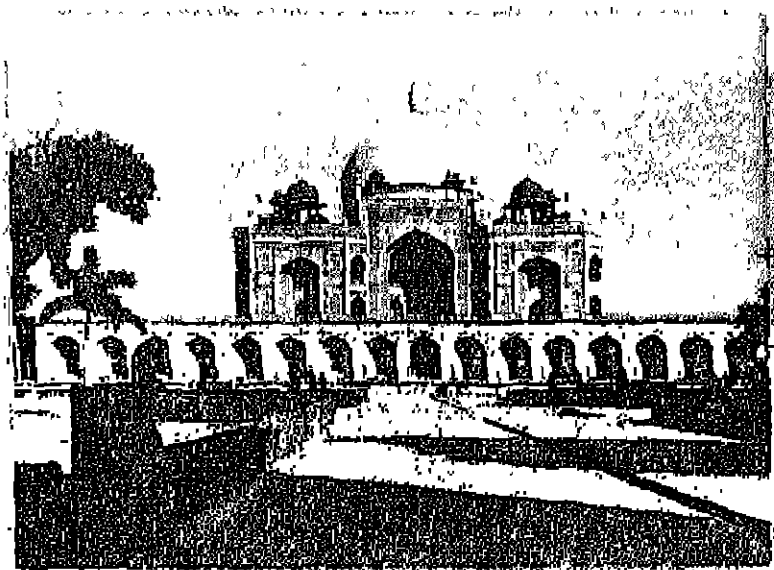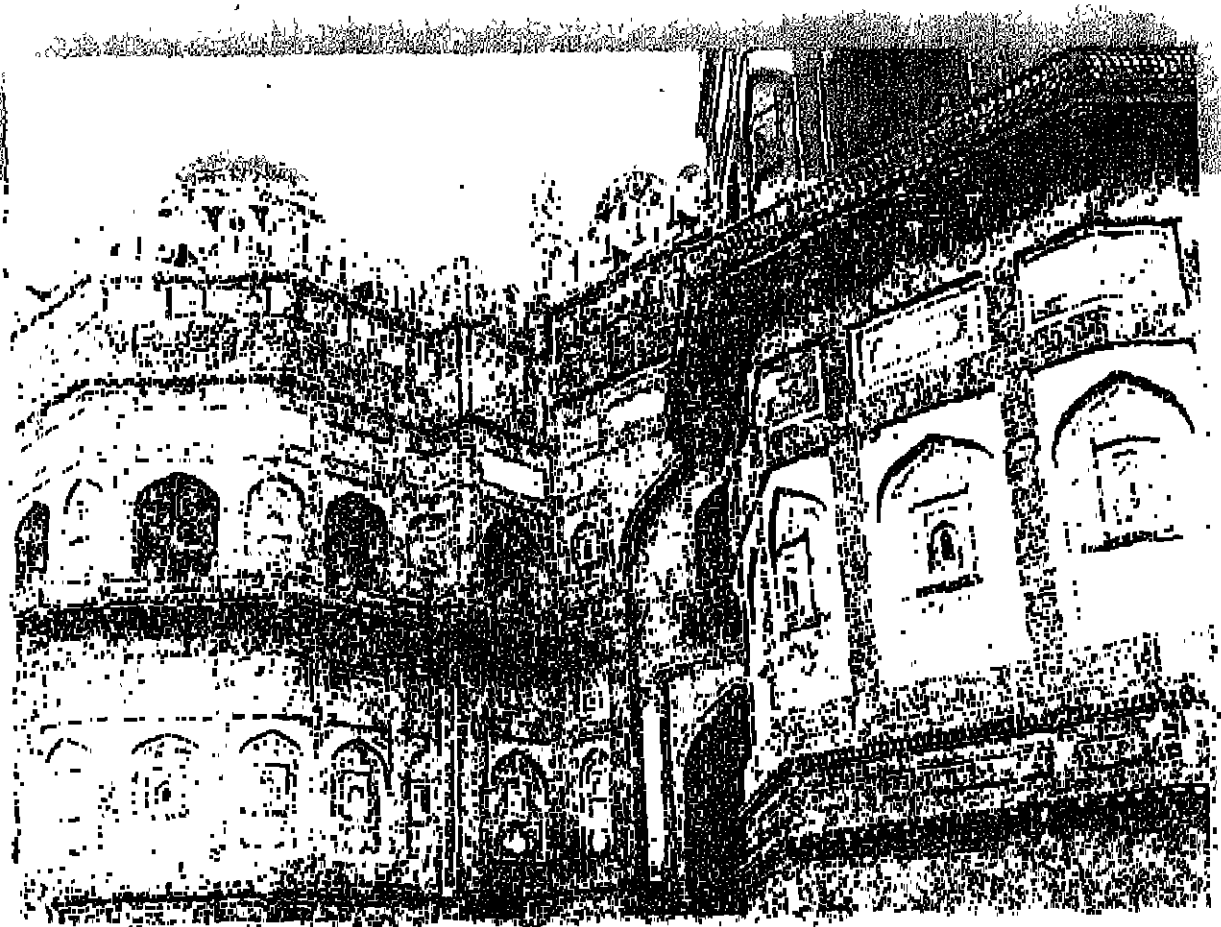
आगरा, लाल किला, दिल्ली द्वार
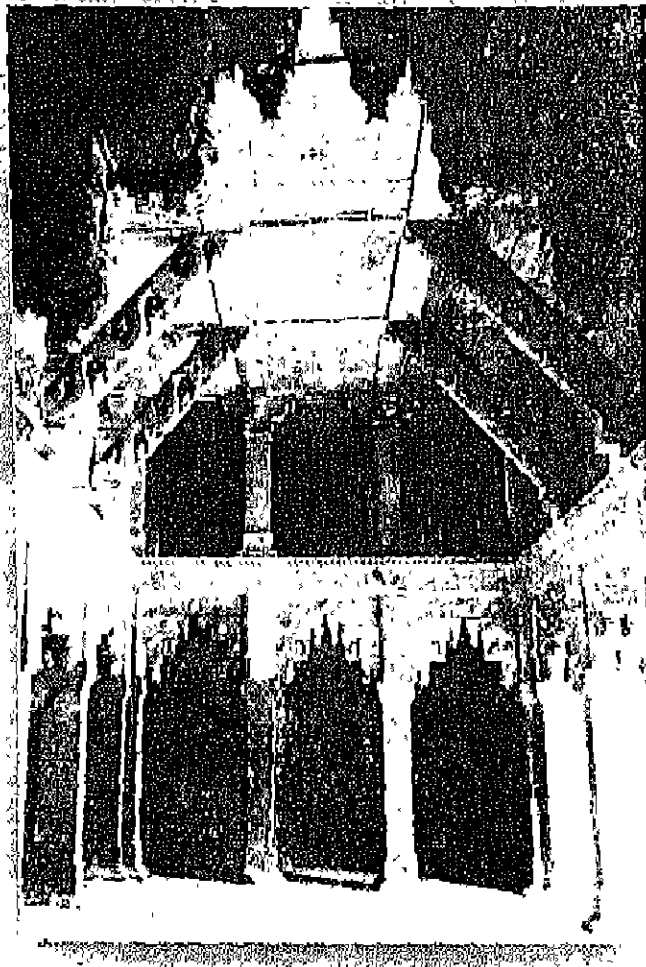
आगरा, लालकिला, जहाँगीरी महल
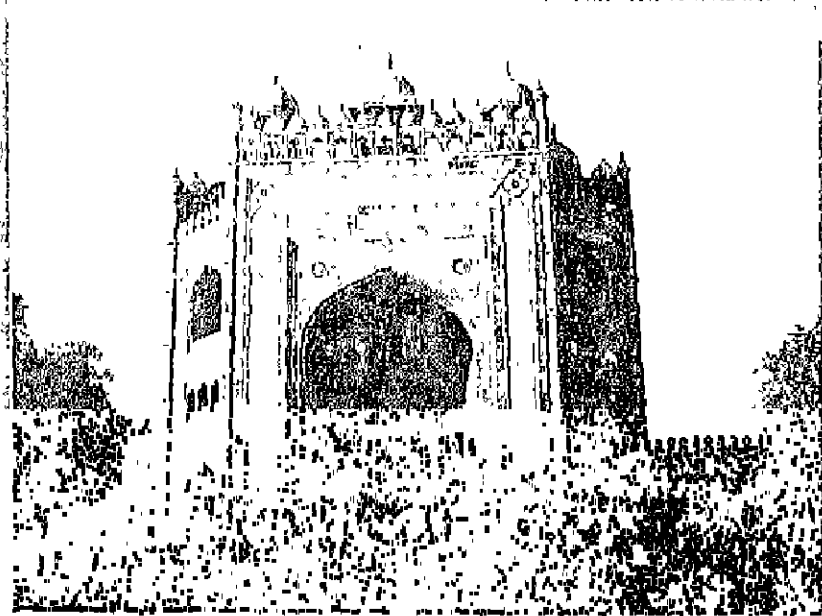
रहा और उसके बाद वह लाहौर चला गया। सन् 1579 तक वह चिश्ती मत में काफी गहन रूप से सक्रिय रहा। उसने पैदल ही चौदह बार दूसरे महान चिश्ती केंद्र, अजमेर में मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह की यात्रा की।

फतेहपुर सीकरी की विशिष्टता विशाल जामी मस्जिद थी जो तब मुगल भारत में सबसे विशाल मस्जिद थी। जब शेख सलीम की मृत्यु हुई तो उन्हें यहां दफ़नाया गया। सफ़ेद संगमरमर से बना उनका मकबरा अपनी बारीक जालियों और नक्काशीदार दीवारगीरों के लिए प्रसिद्ध है जो विशेष रूप से गुजरात में प्रशिक्षित कारीगरों का कार्य है। सन् 1573 में अपने सफल गुजरात अभियान की खुशी में अकबर ने जामी परिसर पर विशाल द्वार, बुलंद दरवाज़ा, का निर्माण किया।

अकबर का महल परिसर मस्जिद के दक्षिण पूर्व में स्थित था। इस परिसर की प्रमुख इमारतों में जनता दर्शन के लिए कक्ष; अनूप तलाओं, गहरी नक्काशीदार तुर्की सुल्तान का घर; ख्वाबगाह या अकबर के शयन कक्ष; दफ़्तर खाना या रिकॉर्ड कार्यालय और दीवान-ए-खास या निजी दर्शन कक्ष शामिल थे। इन सार्वजनिक इमारतों के अलावा अनेक छोटे बहुमंज़िले महल थे जो संभवत: सम्राट के परिवार के और सामंतों के आवास थे। इनमें सबसे प्रमुख थे पाँच-मंज़िला पंच महल; जोधाबाई का महल जिसमें गुजराती प्रभाव स्पष्ट था और राजा बीरबल का महल जो संभवत: एक प्रशासनिक अथवा औपचारिक इमारत थी।

फतेहपुर सीकरी, बुलंद दरवाजा

अकबर के सामंत इस शाही वास्तुशिल्प शैली को साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में ले गए और स्वयं इनसे मिलती-जुलती इमारतें बनाईं जो बढ़ती हुई मुगल शक्ति की शक्तिशाली अभिव्यक्ति थीं।

फतेहपुर सीकरी, दीवान-ए-खास

जहाँगीर का योगदान

जहाँगीर ने वास्तुशिल्प से ज्यादा चित्रकला को प्रश्रय दिया। उसके शासनकाल की सबसे प्रमुख इमारत है आगरा के निकट, सिकंदरा में उसके द्वारा अपने पिता के लिए बनवाया गया मकबरा जिसे फ़तेहपुर सीकरी के पंच महल से मिलता-जुलता बताया जाता है।

जहाँगीर द्वारा आगरा के किले में बनाई गई इमारतों को बाद में शाहजहाँ ने गिरा दिया। लेकिन हम जानते हैं कि जिस झरोखे से वह जनता को दर्शन देता था उसके नीचे उसने मेवाड़ के पराजित राणा, अमर सिंह और उसके बेटे करण की आदमकद संगमरमर की मूर्तियाँ लगवाईं जैसे कि अकबर ने राजपूत नायक जयमल और फत्ता की मूर्तियाँ आगरा के किले के बाहर लगवाई थीं।

जहाँगीर की बागों में गहरी रुचि थी; उससे संबंधित सबसे प्रसिद्ध बाग श्रीनगर में है। उसकी रानी नूरजहाँ की सबसे प्रसिद्ध वास्तुकला परियोजना उसके द्वारा अपने पिता, एतमादुद्दौला के लिए आगरा के निकट निर्मित सफेद संगमरमर का मकबरा है। खूबसूरत नक्काशीदार इस इमारत में संगमरमर में बहुमूल्य पत्थर जड़े हैं; इस तकनीक को *पिएत्रा दयूरा* के नाम से जाना जाता है। इसकी छत में गहरी नक्काशी की गई है और इसकी संगमरमर की जालियों पर भी बारीक काम है।
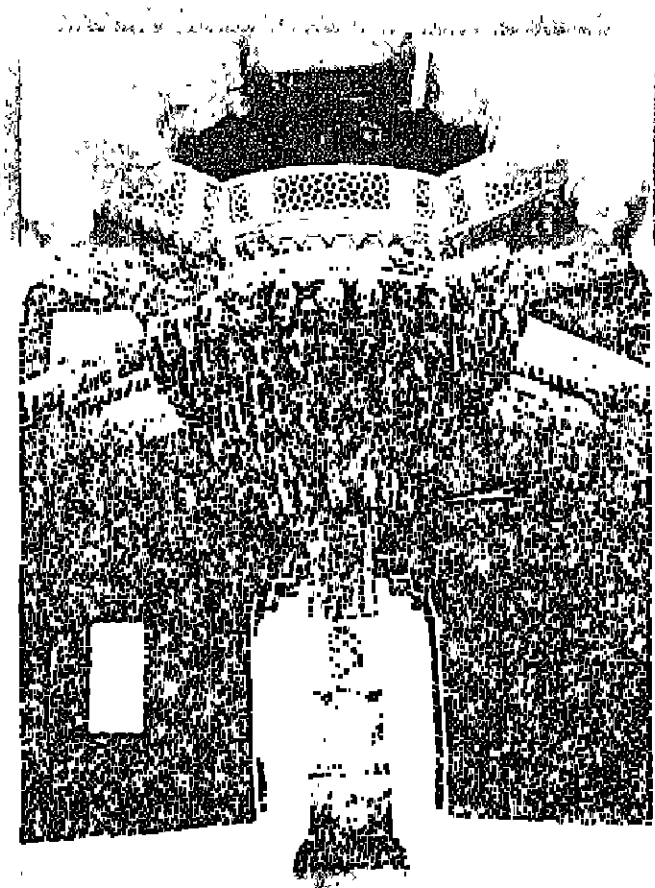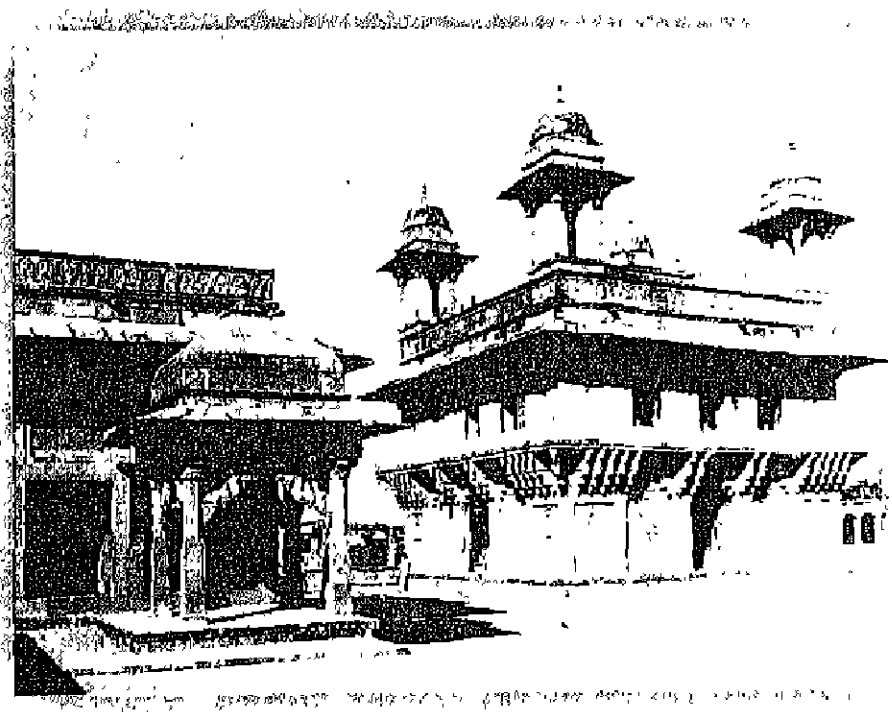
फतेहपुर सीकरी महल, दौलतखाना

शाहजहाँ के शासनकाल में चरमोत्कर्ष

शाहजहाँ के शासनकाल में मुगल वास्तुकला अपने चरम पर पहुँची। उसके शासनकाल में मुगल वास्तुकला को सर्वाधिक प्रश्रय प्राप्त हुआ। शाहजहाँ ने अजमेर में सूफी संत, मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह के परिसर में जामी मस्जिद के निर्माण का आदेश दिया। वह अपने शासन काल के अंत तक वहाँ नियमित रूप से जाता था। उसने लाहौर में अपने पिता का मकबरा बनवाया और लाहौर और आगरा के किलों में नए निर्माण कार्य का आदेश दिया।

सन् 1639 में शाहजहाँ ने दिल्ली में यमुना के तट पर दीवार से घिरे एक शहर और शाही राजधानी का निर्माण शुरू किया। दो भव्य द्वार, अकबराबाद गेट (दिल्ली गेट) और लाहौर गेट से नए शहर शाहजहाँनाबाद के प्रमुख क्षेत्रों में जाया जा सकता था। अन्य किलों की भांति नदी के तट पर बनी इमारतें केवल सम्राट और उसके परिवार के लिए थीं। सभी इमारतें अत्यंत अलंकृत थीं। किले में शाही कारखाने भी थे जहाँ दरबार के लिए आवश्यक वस्तुएँ बनती थीं। एक अनुमान के अनुसार किला परिसर में लगभग 57000 लोग रहते थे जो सम्राट और उसके परिवार की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे।

आगरा, एतमादुद्दौला का मकबरा

शाहजहाँ ने शहर में दो मस्जिदें बनवाईं, ईदगाह जिसमें ईद की नमाज़ के लिए एकत्रित विशाल भीड़ समा सके और जामा मस्जिद, जो उस समय देश की
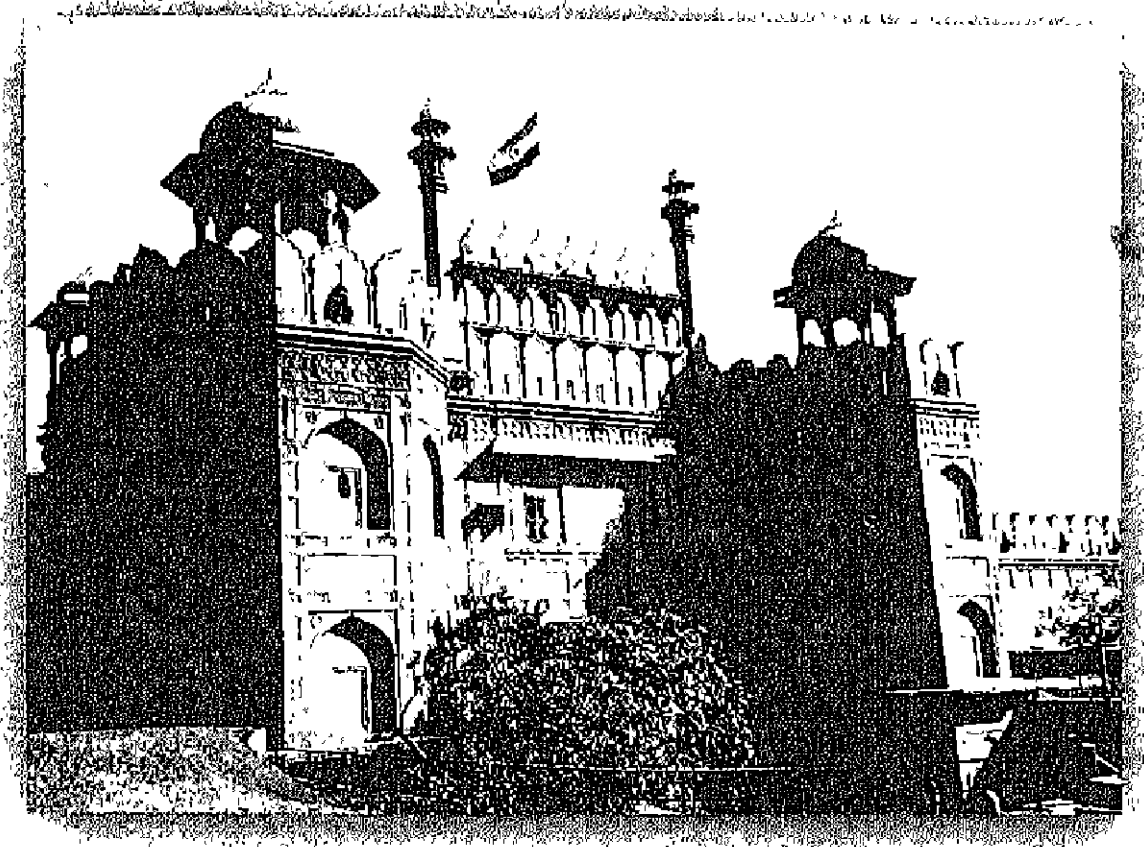
लाहौर द्वार, लाल किला, दिल्ली

सबसे बड़ी मस्जिद थी। शाही परिवार ने और भी अनेक धार्मिक इमारतें बनवाईं।

शाहजहाँ को भी बागों का शौक था और उसने अनेक बाग बनाने का आदेश दिया जिनमें सबसे प्रसिद्ध है कश्मीर में शालीमार बाग।

लेकिन जिस इमारत के लिए उसे आज भी याद किया जाता है वह है ताजमहल, जो उसने अपनी पत्नी मुमताज़ महल की याद में बनवाया। जन्नत के बागों की तरह खूबसूरत चार बाग के बीचोंबीच स्थित इस संगमरमर की इमारत का ज्यामितीय ग्रिडों की शृंखला के अनुसार यथानुपात निर्माण किया गया था जिसके कारण इसमें बिल्कुल सही संतुलन और सममिति है।

शाहजहाँ ने हिंदू मंदिरों के निर्माण पर रोक लगा दी और अनेक को नष्ट कर दिया जैसे कि ओरछा में बीर सिंह द्वारा निर्मित मंदिर।

दीवान-ए-आम में तख्ते ताउस दिल्ली, लाल किला

पतन

जामा मस्जिद, दिल्ली

औरंगज़ेब द्वारा पुरानी मस्जिदों की मरम्मत और नई के निर्माण के अनेक सामयिक उल्लेख हैं। कहा जाता है कि उसने किसी भी मुगल सम्राट की अपेक्षा ज़्यादा मस्जिदों की मरम्मत करवाई। औरंगज़ेब अक्सर मराठों से कब्ज़े में लिए गए किलों में मस्जिदों का निर्माण करता था। उसने शाहजहाँनाबाद किले के अंदर मोती मस्जिद के निर्माण का आदेश भी दिया। उसने
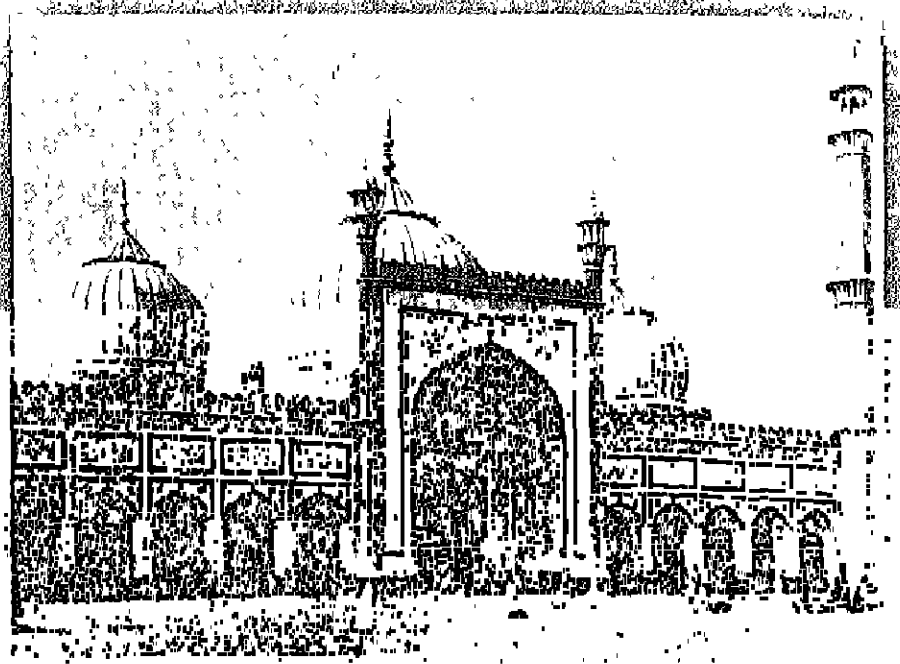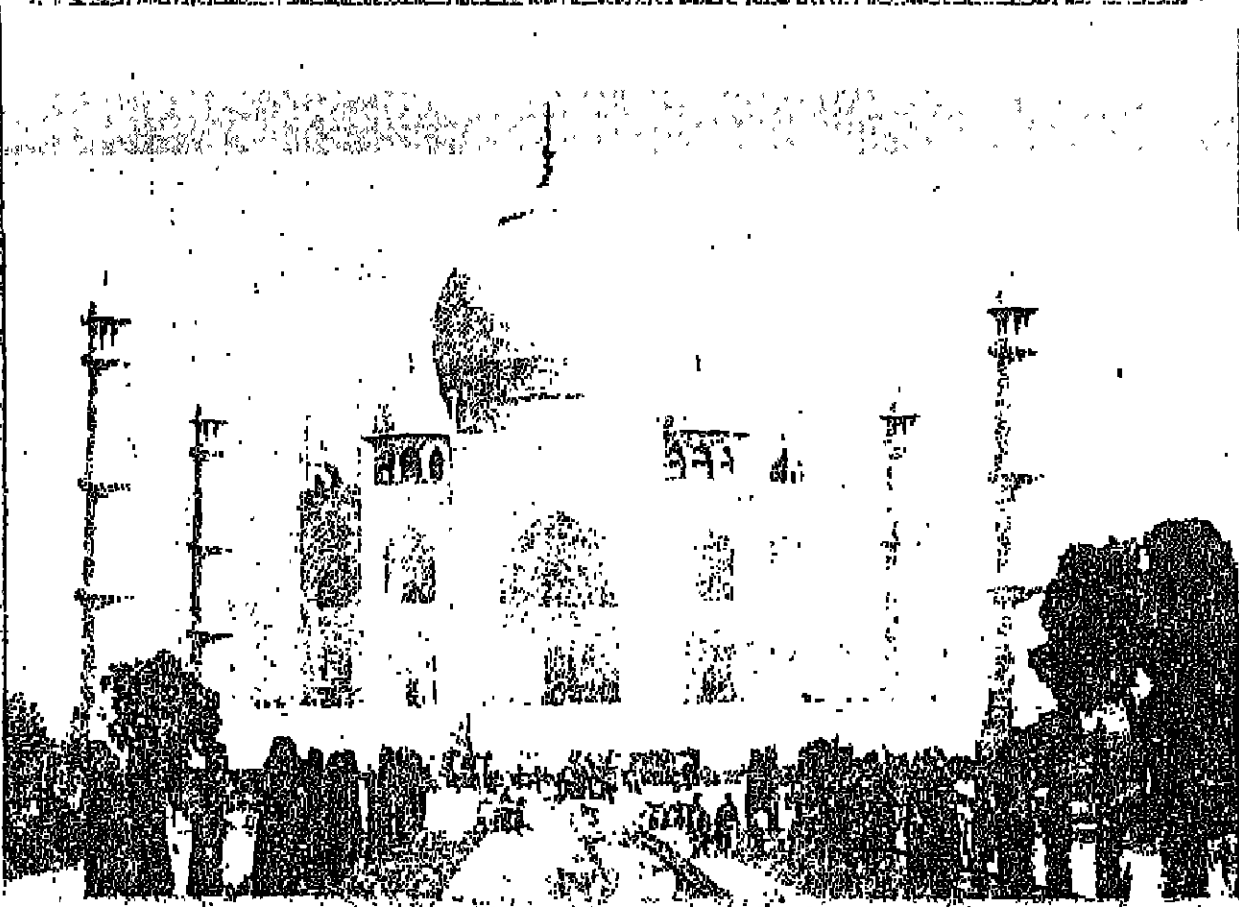
ताजमहल

लाहौर में बादशाही मस्जिद का निर्माण भी करवाया जो उपमहाद्वीप की सबसे बड़ी मस्जिद है।

औरंगज़ेब ने अनेक हिंदू मंदिरों जैसे मथुरा में राजा बीर सिंह द्वारा बनवाया गया केशव राय मंदिर, बनारस में राजा मान सिंह द्वारा बनवाया गया विश्वनाथ मंदिर और कूच बिहार, उदयपुर, जोधपुर और राजस्थान में अनेक स्थानों पर बने अनेक मंदिरों को नष्ट कर दिया । केशव राय मंदिर के स्थान पर औरंगज़ेब ने उसकी नींव पर ईदगाह बनाई। यहाँ यह बताना ज़रूरी है कि तब मथुरा गौण महत्त्व का शहर था और इसलिए उसे सम्राट का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट नहीं करना चाहिए था।

मध्यकालीन महल और इमारतें

मध्य काल में अनेक हिंदू राजकुमारों द्वारा बनाए गए अनेक भव्य महल आज भी मौजूद हैं। इनमें सबसे अनोखा ग्वालियर के किले के अंदर सोलहवीं शताब्दी में महाराजा मान सिंह द्वारा बनवाया गया महल है जिसे मान मंदिर के नाम से जाना जाता है। मुगल सम्राट बाबर उसे पहली बार देखकर उसकी खूबसूरती से आश्चर्यचकित रह गया। अपने संस्मरणों में वह लिखता है, "मैनें मान सिंह की इमारतें देखी हैं....ये खूबसूरत इमारतें हैं।"

इन शताब्दियों के दौरान मध्य भारत और राजपूताना में अनेक शाही महल बनवाए गए। बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर, उदयपुर और आंबेर में बने महल विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। बुंदेला राजकुमार, राजा बीर सिंह ने ओरछा और दतिया में भव्य महल बनवाए।

अठारहवीं शताब्दी में जाट शासकों ने भरतपुर और दीग में महल बनवाए जबकि महाराजा जय सिंह ने जयपुर शहर की स्थापना की। बनारस के सबसे पुराने घाटों में से एक मान मंदिर घाट को मूलत: आंबेर के राजा मान सिंह ने 1600 ई. में बनवाया।

दक्षिण में सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के चार मौजूदा महल हैं : हंपी में कमल महल, चंद्रगिरी गढ़ का महल, एक नायक शासक द्वारा मदुरै में बनवाया गया एक महल और तंजावुर किले के अंदर बना एक महल।

मुगल चित्रकला

मुगल चित्रकला स्कूल की स्थापना से पहले ही भारत में चित्रांकन कला की परंपरा थी। हिंदू, बौद्ध और जैन अपने धार्मिक स्थानों को उकेरी और चित्रित मूर्तियों और अत्यंत भव्य भित्ति चित्रों से
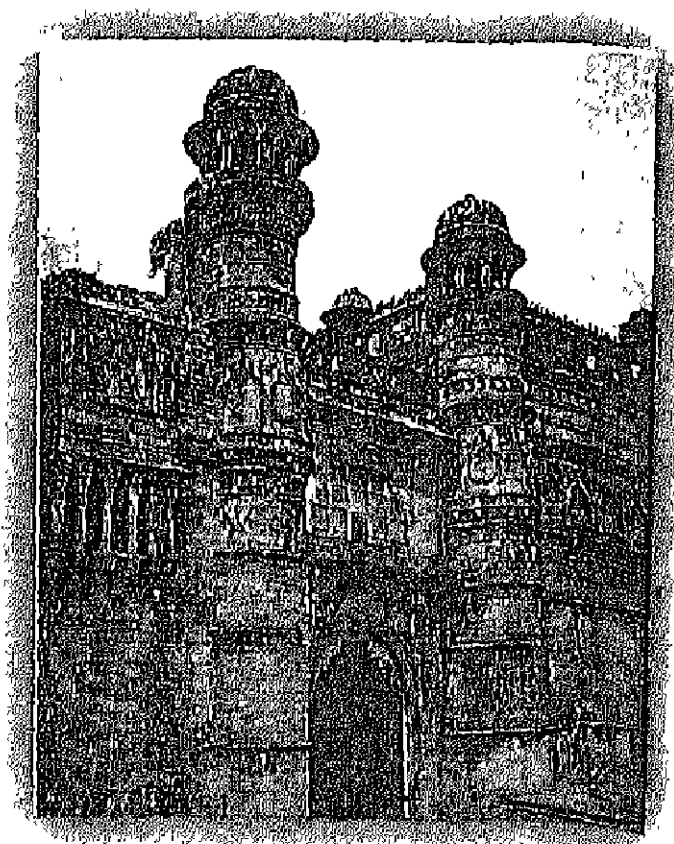
हुमायूँ के समय में मुगल चित्रकला शाखा की शुरुआत हुई। सफाविद दरबार में निर्वासन के दौरान हुमायूँ का फारसी कला से परिचय हुआ। वहाँ के शासक तहमास्प ने फारसी कला को अत्यधिक प्रश्रय दिया लेकिन वह धीरे-धीरे कट्टरवाद की ओर अग्रसर हुआ। अत: इसके बहुत से चित्रकार हिंदुस्तान लौटते हुए हुमायूँ के साथ हो लिए। इनमें सबसे प्रसिद्ध थे मीर सैयद अली, अब्दुस समद, मीर मुसव्विर और दुस्त मुहम्मद।

दतिया महल

अकबर के शासन काल के प्रारंभिक कार्यों में *हम्ज़ानामा* शामिल है जो अमीर हम्ज़ा की कहानी है। अमीर हम्ज़ा पैगंबर मुहम्मद का चाचा था जिसने दुनिया के सब लोगों को इस्लाम धर्म कबूल करवाने का प्रयास किया। पांडुलिपि के चौदह खंड थे जिसमें से प्रत्येक में सौ चित्र थे। कम से कम पचास चित्रकारों ने इस पर काम किया जो शाही कारखानों में कार्य करने वाले कलाकारों की संख्या का परिचायक है। क्षेत्रीय केंद्रों से अनेक कलाकार अकबर के दरबार की ओर आकृष्ट हुए जो अपने साथ चित्रकला की स्थानीय परंपरा लेकर आए और वहां आकर उन्होंने विकसित मुगल शैली के अनुसार अपनी कला को अनुकूल बनाया।

आंबेर महल का बाहरी भाग, मुख्य प्रवेश कक्ष

अकबर के दरबार के प्रमुख चित्रकारों में दसवंथ था जिसने *रज़्मनामा* (महाभारत का फारसी में अनुवाद) का चित्रांकन किया। रज़्मनामा के बाद अकबर की रुचि ऐतिहासिक कार्यों में हो गई। उसने जिन ऐतिहासिक कार्यों को तैयार करने का आदेश दिया उनमें शामिल थे : *तारीख-ए-अल्फ़ी* (इस्लाम के पहले हज़ार वर्षों का इतिहास) और *तैमूरनामा*, तैमूर के जीवन का चित्रांकित उल्लेख। अकबर के ऐतिहासिक कार्यों में सबसे महत्त्वपूर्ण *अकबरनामा* था,

पकड़े गए हाथी का निरीक्षण करते हुए अकबर, मुगल चित्र, अकबरनामा से

शाहजहाँ को सोने से तोला जाता हुआ, एक मुगल लघु चित्रकला

जो अबुल फ़ज़ल द्वारा लिखा गया उसके शासन का इतिहास है। सम्राट की ऐतिहासिक विषयों में बढ़ती रुचि को देखते हुए बसावन दरबार के प्रमुख कलाकारों में से एक बन गया।

जेसुइट धर्म-प्रचारकों ने अकबर को बाइबिल की चित्रयुक्त प्रतियाँ भेंट में दीं। अकबर ने अपने चित्रकारों से अनेक यूरोपीय चित्रों की प्रतिकृति बनवाई।

जहाँगीर के शासनकाल में मुगल चित्रकला नई ऊँचाइयों पर पहुँची। उसने व्यक्तियों के चित्र और प्रतिकृतियाँ बनवाई, जिसे उसने खूबसूरत एलबम में संग्रहित किया। इस काल में जिस सबसे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक पांडुलिपि को चित्रित किया गया वह थी *जहाँगीरनामा*। जहाँगीर के शासनकाल में चित्रकारों ने अपनी व्यक्तिगत शैलियाँ और सुविज्ञता के क्षेत्र विकसित किए। मंसूर ने पशुओं और फूलों के चित्रांकन में उत्कृष्टता प्राप्त की, अबुल हसन और बिशन दास ने शाही प्रतिकृतियों में, और गोवर्धन ने धार्मिक व्यक्तियों और संगीतज्ञों के चित्रांकन में।

जहाँगीर के विपरीत शाहजहाँ की वास्तुकला में ज्यादा रुचि थी, लेकिन अपने शासनकाल के आठवें वर्ष में उसने अपने शासन के आधिकारिक इतिहास, *पादशाहनामा* लिखने का आदेश दिया। मूल-पाठ के साथ दिए गए चित्र दरबारी समारोह और महत्त्वपूर्ण

घटनाएं चित्रित करते हैं। जहाँगीर की भांति शाहजहाँ ने भी एलबम बनाई जिनमें सबसे बेहतरीन मिन्टो एलबम के नाम से जाने जाते हैं।

औरंगज़ेब की चित्रकला में रुचि की कमी के कारण कलाकार स्थानीय शासकों के दरबार में चले गए जिससे चित्रकला की राजपूत और पहाड़ी शाखाओं का विकास हुआ। चित्रकला की राजपूत शाखा को मूलत: "भारत की प्राचीन स्थानीय कला" कहा गया है, अजंता के पुरातन भित्तिचित्र के प्रत्यक्ष वंशज। पहाड़ी शाखाओं में कांगड़ा, बसोली, चंबा और जम्मू का ज़िक्र किया जाना चाहिए। राजपूत और पहाड़ी शाखाओं के चित्रों में पौराणिक विषयों का अत्यधिक विकास हुआ

संगीत

आईन-ए-अकबरी में अकबर के दरबार के छत्तीस अत्यंत कुशल संगीतज्ञों का उल्लेख है। इनमें से सबसे प्रसिद्ध तानसेन था। जहाँगीर और शाहजहाँ के दरबार में भी अनेक संगीतज्ञ थे। औरंगज़ेब ने शाही दरबार से संबद्ध सभी संगीतज्ञों को बर्खास्त कर दिया।

साहित्यिक उपलब्धियाँ

अकबर के शासन काल में राजा टोडर मल ने भागवत पुराण का फारसी में अनुवाद किया। अबुल फ़ज़ल और उसके भाई फैजी ने अधिकांशत: हिंदू पंडितों की सहायता से संस्कृत रचनाओं का फ़ारसी में अनुवाद किया। अरबी, तुर्की और कश्मीरी रचनाओं का अनुवाद भी किया गया। हालांकि तुर्की मध्य एशियाई समृद्ध वर्ग की स्थानीय भाषा थी, फारसी मुगल दरबार की भाषा थी।

कुछ विद्वानों का मानना है कि अकबर के दरबार में समानांतर हिंदू और मुस्लिम बौद्धिक परंपराओं का विकास हुआ। उनका कहना है कि इस काल में फारसी साहित्य संस्कृत से अप्रभावित रहा जबकि संस्कृत और हिंदी फारसी सांस्कृतिक परंपराओं से निरापद रहीं, लेकिन अब्दुल रहीम ख़ानखाना और रसखान इस काल के दौरान हिंदी में लिखने वाले कवि थे।

जहाँगीर के शासनकाल में संस्कृत कार्यों का फारसी में अनुवाद जारी रहा। शाहजहाँ के दरबार में सुंदरदास, चिंतामणि, कवींद्राचार्य और जगन्नाथ पंडित जैसे हिंदू कवियों को प्रश्रय दिया गया। औरंगज़ेब के दरबार में हिंदू विद्वान और कवियों में इंद्रजीत त्रिपाठी और सामंत थे।

इतिहास लेखन की परंपरा मुगल काल में समृद्ध हुई। इस काल के महत्त्वपूर्ण इतिहासकारों में अबुल फ़ज़ल, निज़ामुद्दीन अहमद, बदायुँनी, अब्दुल हमीद लाहौरी, खफी खाँ और सकी मुस्तैद खाँ शामिल थे। इसके अलावा जहाँगीर जैसे शासकों और गुलबदन बेगम जैसी शाही परिवार की महिलाओं ने अपने काल के बारे में लिखा।

भक्ति आंदोलन की निरंतरता

दरबार के बाहर, संत परंपरा का विकास जारी रहा और सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में अनेक नए पंथों का उदय हुआ। उत्तर मध्यकाल के प्रसिद्ध संतों में संत मलूकदास (1573-1671) थे जो इलाहाबाद और लखनऊ के क्षेत्रों में सक्रिय थे; प्राणनाथ (1617-1693) बुंदेलखंड क्षेत्र के साधु नेता और प्रसिद्ध बुंदेला राजा छत्रसाल के आध्यात्मिक गुरु; बिहार में धरणीदास और दरिया साहब; जगजीवन दास (1669-1760) जिन्होंने उत्तर-पूर्वी उत्तर प्रदेश में सतनामी संप्रदाय को पुनर्जीवित किया; चरण दास (1702-1781)जिनके दिल्ली के आसपास और पूर्वी पंजाब में विशाल संख्या में अनुयायी थे, और अयोध्या में पल्टू सिंह।

अभ्यास

1. अकबर ने किन मुख्य गढ़ महल परिसरों का निर्माण करवाया? आगरा के किले का संक्षिप्त विवरण कीजिए।
2. फतेहपुर सीकरी के शाही शहर का विवरण कीजिए।
3. शाहजहाँ की वास्तुशिल्प उपलब्धियों पर विवेचन कीजिए।
4. अकबर के शासनकाल में चित्रकला के विकास का विवेचन कीजिए। जहाँगीर के शासनकाल में बने चित्रों से ये किस प्रकार अलग थे।
5. सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दियों के कुछ भक्ति संतों के नाम बताइए।

पारिभाषिक शब्दावली

अफ़की	अरब अथवा मध्य एशिया के (से आए) मुसलमान आप्रवासियों की पहली पीढ़ी
अहदी	मुगल बादशाह द्वारा सीधे नियुक्त किए गए अश्वारोही सैनिक
आमिल	राजस्व वसूली का प्रभारी एजेंट
अमीन	राजस्व वसूली के लिए नियुक्त राजस्व अधिकारी
आर्यावर्त	उत्तर भारत
बारगीर	अपने प्रमुख के घोड़े पर सवार अश्वारोही सैनिक, बाद में यह शब्द सामान्यतः अश्वारोही सेना के लिए प्रयुक्त होने लगा
भील	राजस्थान, मध्य प्रदेश एंव महाराष्ट्र के विस्तृत क्षेत्र में फैला आखेट एवं संग्रह जीवी समुदाय
बीघा	भूमि की इकाई
ख़लीफ़ा	समस्त इस्लामी जगत का प्रमुख
चौधरी	अनेक गाँवों अथवा परगनों का मुखिया
चौथ	राजस्व के चौथाई भाग की सरकार की माँग (दावेदारी)
दाग़	शाही चिह्न से घोड़ों को दाग़ना
दकनी	दक्षिण भारत में जन्मे मुसलमान
दाम	मुगल ताँबे का सिक्का जो एक रुपये के चालीसवें भाग के बराबर था
दरगाह	मुस्लिम संत का मकबरा
देशमुख	दक्कन के किसी एक परगना का मुखिया
धिम्मी	गैर-मुस्लिम लोग जो जज़िया के बदले में राज्य के संरक्षण के अधिकारी होते थे
दीन	धर्म
दीवान	मुगल प्रशासन का वित्तीय अथवा राजस्व अधिकारी
फरमान	मुगल बादशाह द्वारा औपचारिक रूप से जारी किया गया औपचारिक पत्र अथवा आदेश
फतहनामा	मुसलमान शासक द्वारा जारी की गई विजय घोषणा

फतवा	मुसलमान विधिवेत्ता द्वारा जारी किया गया सार्वजनिक निर्णय
फ़ौजदार	मुगल सैन्य एवं प्रशासनिक अधिकारी
गंज	अनाज की मंडी
गाज़ी	इस्लाम के लिए युद्धरत हथियारबंद योद्धा
गुमाश्ता	वाणिज्य प्रतिनिधि (आढ़ती)
हुन	सोने का सिक्का
हुण्डी	आदान-प्रदान का विपत्र
इबादतख़ाना	धार्मिक प्रवचन के लिए अकबर द्वारा बनवाया गया उपासना गृह
इनाम	अनुदान में मिली पुश्तैनी भूमि
इक्ता	वेतन के बदले में दिया गया राजस्व आबंटन
जागीर	वेतन के बदले में दिया गया भू-राजस्व आबंटन
जागीरदार	वेतन के बदले राजस्व प्राप्त होने वाली ज़मीन का धारक
जामा	सरकार को प्राप्त होने वाला निर्धारित अथवा अनुमानित राजस्व
जाति	एक सगोत्र अथवा सजातीय वर्ग, जाति की इकाई
जौहर	उन राजपूत योद्धाओं की पत्नियों द्वारा किया जाने वाला बलिदान जिनकी आसन्न पराजय हुई थी।
जिहाद	इस्लाम पर विश्वास न करने वालों के विरुद्ध युद्ध
जज़िया	गैर-मुसलमानों द्वारा अदा किया जाने वाला वार्षिक कर जिसके बदले में उन्हें शासन का संरक्षण मिलता था
कारखाना	शासक द्वारा आमतौर पर संपोषित कार्यशाला
खालसा	गुरु गोबिंद सिंह द्वारा प्रवर्तित सिख भ्रातृसंघ
खालिसा	केंद्रीय खज़ाने में सीधा जमा होने वाला भू-राजस्व
खानज़ादा	मुगलों की पुश्तैनी पारिवारिक सेवा का शेख़ी बाज़ अधिकारी
खानकाह	सूफी संत का प्रतिष्ठान
खुतबा	जुमे की मस्जिद में दिया जाने वाला प्रवचन
मदद-ए-माश	साधारणतया मुसलमान पुण्य व्यक्तियों को दिया गया करमुक्त भूमि अनुदान
मदरसा	इस्लामी विद्या की पाठशाला
मनसब	मुग़ल अधिकारी को दिया गया पद तथा पदवी
मनसबदार	मनसब का धारक (मनसबधारी)
मुहतसिब	मंडी तथा सार्वजनिक नैतिकता का प्रभारी
मुकद्दम	गाँव का मुखिया/प्रधान
नंकर	ज़मीदारों को उनकी सेवाओं के लिए दिया जाने वाला राजस्व का भाग

नायक	विजयनगर राज्य में सेवारत सशस्त्र विशिष्ट वर्ग
निर्गुण	ऐसे परमेश्वर की कल्पना जो गुणों से परे है
परगना	मुगलों के अंतर्गत सरकार का एक प्रशासनिक उप-संभाग
पटवारी	गाँव का लेखाकार/लेखपाल
क़ानूनगो	परगने में राजस्व अभिलेख रखने वाला
क़स्बा	नगर, अधीनस्थ राजस्व प्रशासन तथा कुलीन मुसलमानों का स्थान
काज़ी	शरियत के आधार पर/अनुसार निर्णय देने वाला न्यायाधीश
रैया	किसान/कृषक
सगुण	ईश्वर के गुणवाचक आविर्भाव अथवा अवतार
सरदेशमुखी	राजस्व के दसवें भाग की सरकार की माँग जो सरदेशमुख अर्थात् देशमुखों की स्थिति के आधार पर निर्धारित होती थी
सरकार	मुगलों के अंतर्गत प्रशासनिक प्रभाग जिसमें सामान्यत: कई परगने होते थे
सर्राफ़	मुद्रा परिवर्तित करने वाले
सवार	मनसबदार द्वारा संपोषित घुड़सवार फौज/अश्वारोही सेना की संख्या की ओर संकेत करता है।
शरियत	इस्लामी कानून
सूबा	मुगल साम्राज्य का प्रांत
सूफी	इस्लामी रहस्यवादी
उलेमा	शरियत के विद्वान धार्मिक वर्ग
उम्मा	मुसलमान आस्थावान समुदाय
वर्ण	हिंदू समाज का चतुर्वर्गीय विभाजन
वक्फ	मुसलमानों की धार्मिक संस्थाओं को दिया गया अनुदान
वतन जागीर	मनसबदारों की पुश्तैनी संपत्ति
ज़ब्त	ज़मीन की माप पर आधारित राजस्व निर्धारण प्रणाली
ज़मींदार	स्थानीय भूमिसंपन्न विशिष्ट लोगों का एक व्यापक वर्ग
ज़ात	मनसबदार का निजी/वैयक्तिक पद

ग्रंथसूची

स्कूल पाठ्यपुस्तक की रूपरेखा देखते हुए, जिन विद्वानों के शोध पर यह कार्य आधारित है, उन्हें पूरी तरह से मान्यता दे पाना संभव नहीं है। उसी के अनुसार इस चुनी गई ग्रंथसूची को आभारोक्ति माना जाए।

1. अहमद, अज़ीज, *स्टडीज़ इन इस्लामिक कल्चर इन दि इंडियन एनवायरनमेंट*, ऑक्सफोर्ड, क्लैरेंडन प्रेस, 1964
2. अली, एम. अथर, *दि मुगल नोबिलिटी अंडर औरंगज़ेब*, एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1970
3. एशर, कैथरीन बी., *दि न्यू कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया,* खंड I : 4 आर्किटेक्चर ऑफ मुगल इंडिया, 1992
4. बीच, माइलो, *मुगल एंड राजपूत पेंटिंग,* दि न्यू कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1992
5. भटनागर, वी. एस., *लाइफ एंड टाइम्स ऑफ सवाई जयसिंह, 1688–1743*, इंपेक्स इंडिया, 1974
6. ब्राउन, पर्सी, *इंडियन आर्किटेक्चर, इस्लामिक पीरियड*, तारापोरवाला, 1956
7. चंद्र, सतीश, *पार्टीज़ एंड पॉलिटिक्स एट दि मुगल कोर्ट*, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 1972
8. *मेडिवल इंडिया, ए हिस्ट्री टैक्स्टबुक फॉर क्लास XI*, एन.सी.ई.आर.टी., 2000
9. चट्टोपाध्याय, बी. डी., *दि मेकिंग ऑफ अर्ली मेडिवल इंडिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1994
10. चौधरी, के. एन., *एशिया बिफोर यूरोप*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1990
11. क्रोन, पैट्रीशिया, *मेक्कन ट्रेड एंड दि राइज़ ऑफ इस्लाम*, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987
12. करी, पी. एम., *दि श्राइन एंड कल्ट ऑफ मुईन अल-दीन चिश्ती*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1989
13. एटन, रिचर्ड एम., *सूफीज़ ऑफ बीजापुर 1300-1700*, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1978

14. –*दि राइज़ ऑफ इस्लाम एंड दि बंगाल फ्रंटियर, 1204–1760*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1994

15. –*एसेज़ ऑन इस्लाम एंड इंडियन हिस्ट्री*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2000

16. फ्राइडमन, वाइ., *शेख अहमद सरहिंदी. एन आउटलाइन ऑफ हिज़ थॉट एंड ए स्टडी ऑफ हिज़ इमेज इन दि आइज़ ऑफ पोस्टैरिटी*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2000

17. गॉर्डन, स्ट्यूवर्ट, *दि मराठाज़, 1600–1818*, दि न्यू कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1993

18. ग्रेवाल, जे. एस., *दि सिख्स ऑफ दि पंजाब*, दि न्यू कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1990

19. –*मुस्लिम रूल इन इंडिया, दि ऐस्सेसमेंट ऑफ ब्रिटिश हिस्टोरियन्स*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1970

20. गुप्ता, हरिराम, *हिस्ट्री ऑफ दि सिख्स*, खंड I, *दि सिख गुरुज़, 1469–1708*, मुंशीराम मनोहर लाल, 1984

21. हबीब, इरफान, "दि सोशल डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ लैंडेड प्रॉपर्टी इन प्री–ब्रिटिश इंडिया" इन आर. एस. शर्मा तथा वी. झा संपादक, *इंडियन सोसाइटी: हिस्टॉरिकल प्रोबिंग्स*, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 1974

22. – *दि अग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इंडिया, 1556–1707*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999

23. हबीब, मोहम्मद, *सुल्तान महमूद ऑफ़ गज़नी*, एस.चांद एंड कं. 1967

24. हबीब मोहम्मद तथा के.ए. निज़ामी (संपादक), *दि दिल्ली सल्तनत*, ए कांप्रीहेंसिव हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया का पाँचवाँ खंड, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 1970

25. हार्डी, पीटर, *दि मुस्लिम्स ऑफ़ ब्रिटिश इंडिया*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1972

26. हॉल्ट, पी.एम., एन के.एस. लैंबटन तथा बर्नार्ड ल्यूइस, संपादक, *दि कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इस्लाम*, खंड 1ए, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1978

27. हॉर्स्टमन, मोनिका, *इन फेवर ऑफ गोबिंददेवजी*, मनोहर, 1999

28. हूरानी, अल्बर्ट, *ए हिस्ट्री ऑफ दि अरब पीपुल्स*, फेबर एंड फेबर, 1991

29. ह्यूग्स, टी.पी., *डिक्शनरी ऑफ इस्लाम*, रूपा, 1988

30. जैक्सन, पीटर, *दि दिल्ली सल्तनत,* कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999

31. कॉल्फ, डर्क एच.ए. *नौकर, राजपूत एंड सेपॉय। दि एथनोहिस्ट्री ऑफ ए मिलिट्री लेबर मार्केट इन हिंदुस्तान, 1450-1850,* कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1990

32. कुल्के एच. तथा दिएतमार रॉथरमुंड, *ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया,* डॉर्सेट प्रेस, 1986

33. लाल. के एस., *हिस्ट्री ऑफ दि खिल्जीज़,* एशिया पब्लिशर्स, 1967

34. ल्यूइस, बर्नार्ड, *हिस्ट्री, रिमेम्बर्ड, रिडिस्कवर्ड. इन्वेंटेड,* प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1975

35. - *दि पोलिटिकल लेंगुएज ऑफ इस्लाम,* दि यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 1988

36. - *रेस एंड स्लेवरी इन दि मिडिल ईस्ट।* एन हिस्टॉरिकल इनक्वायरी, न्यूयॉर्क, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1990

37. मजूमदार, ए.के., *कन्साइज़ हिस्ट्री ऑफ एंशिएंट इंडिया,* खंड I, मुंशीराम मनोहरलाल, 1992

38. मजूमदार, आर.सी., *एंशिएंट इंडिया,* मोतीलाल बनारसीदास, 1974

39. मूसवी, शीरीन, *दि इकोनॉमी ऑफ दि मुगल एम्पायर लगभग 1595 : ए स्टेटिस्टिकल स्टडी,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1987

40. मोरलैंड डब्ल्यू. एच., *इंडिया एट दि डेथ ऑफ अकबर,* आत्माराम एंड संस, 1962

41. नेहरु, जवाहरलाल, *दि डिस्कवरी ऑफ इंडिया,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2001

42. रायचौधरी, तपन तथा इरफान हबीब, संपादक, *दि कैंब्रिज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया,* खंड 1, ओरिएंट लोंगमैन, 1982

43. रिचर्ड्स, जे.एफ., *मुगल एडमिनिस्ट्रेशन इन गोलकोंडा,* क्लेरेंडन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1975

44. -*दि मुगल एम्पायर,* दि न्यू कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1993

45. रिजवी, एस.ए.ए., *मुस्लिम रिवाइवलिस्ट मूवमेंट्स इन नॉरदर्न इंडिया इन दि सिक्सटीन्थ एंड सैवेंटीन्थ सैंचुरीज,* आगरा यूनिवर्सिटी, 1965

46. - *ए हिस्ट्री ऑफ सूफ़िज़्म इन इंडिया,* दो खंडों में, मुंशीराम मनोहरलाल, 1975-83

47. - *रिलीजियस एंड इंटेलेक्चुअल हिस्ट्री* ऑफ दि *मुस्लिम्स इन अकबर्स रेन,* मुंशीराम

48. रॉबिन्सन, फ्रांसिस, ''इस्लाम एंड मुस्लिम सेपरेटिज़्म'' डेविड टेलर तथा मैल्कम यैप्प, संपादक, *पोलिटिकल आइडेंटिटी इन साउथ एशिया,* कर्ज़न प्रेस, लंदन, 1979

49. राय, अतुल चंद्र, ''ट्रेंड्स इन मॉडर्न हिस्टोरियोग्रफी ऑन मेडिवल इंडिया'', इंस्टीट्यूट *ऑफ हिस्टॉरिकल स्टडीज़,* कलकत्ता, खंड III 1963-64, सं. 1-2, में

50. सरकार, जे एन., *शिवाजी एंड हिज़ टाइम्स,* चौथा संस्करण, 1948

51. स्कोमर, करीन तथा डब्ल्यू.एच.मैक्लिऑड, संपादक, *दि संत्स स्टडीज़ इन ए डिवोशनल ट्रेडिशन* ऑफ इंडिया, मोतीलाल बनारसीदास, 1987

52. शर्मा, कृष्णा, *भक्ति एंड दि भक्ति मूवमेंट,* मुंशीराम मनोहरलाल, 1987

53. सिद्दीकी, आइ.एच., *सम आस्पेक्ट्स ऑफ अफ़गान डेस्पोटिज्म इन इंडिया,* थ्री मैन पब्लिकेशन, 1969

54. सिंह, हरबंस, *ऐन्साइक्लोपीडिया ऑफ सिक्खिज़्म,* पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, 1997

55. सिंह, तरन, संपा., *सिख गुरुज़ एंड दि इंडियन स्प्रिचुअल थोट,* पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला, 1992

56. स्टाइन, बर्टन, *विजयनगर,* दि न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1989

57. स्ट्रयूसैंड, डगलस ई., *दि फॉर्मेशन ऑफ दि मुग़ल एम्पायर,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1989

58. विंक, आंद्रे, *अल-हिंद, दि मेकिंग ऑफ दि इंडो-इस्लामिक वर्ल्ड,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1990

59. *-अल-हिंद। दि स्लेव किंग्स एंड दि इस्लामिक कंक्वेस्ट,* खंड II, ब्रिल, लाइडन, 1999

60. ज़ीगलर, नोर्मन, ''सम नोट्स ऑन राजपूत लौएल्टीज ड्यूरिंग दि मुगल पीरियड'' जे. एफ. रिचर्ड्स द्वारा संपादित, *किंगशिप एंड अथोरिटी इन साउथ एशिया,* साउथ एशिया स्टडीज़, यूनिवर्सिटी ऑफ विस्कोन्सिन-मैडिसन पब्लिकेशन सीरीज़, संख्या 3, 1973